कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

नारायण चरितावली

लेखिका—

निर्मल जी

प्रकाशक—

शोभाकान्ति भार्गव

३१/A कचेहरी रोड,

इलाहाबाद

मुद्रक—

राजलक्ष्मी प्रेस,

१०५, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद

विषय-सूची

दो शब्द

प्रभु-चरणों का जन्म-जन्म का यह सेवक आज उनकी महान और अगाध अनुकम्पा से गुरुवर का जीवन-चरित्र लिखने का प्रयास करने चला है। आत्मा में श्वास लेने वाले, परम उदार, दयामूर्ति, जिनका आहार हरिनाम है, ऐसे परमात्मा में लीन का जीवन-चरित्र लिखने के लिये कहाँ से शब्द लाया जाय? किस बुद्धि को उसमें लगाया जाय? वह तो उनकी ही प्रेरणा और दया से लिखा जा सकता है। प्रभु अपने परमगूढ़ जीवन-रहस्य के विषय में विशेष रूप से मौन ही रहते हैं। अन्य भक्तों की वाणी के द्वारा जो कुछ भी चयन किया जा सकता था वही शब्दों की लड़ियों में उद्वृत किया गया है। प्रभु का व्यक्तित्व ही उनके जीवन के गूढ़तम गूढ़ रहस्यों का परिचय करा देता है। प्रभु स्वयं आप्त पुरुष हैं। जैसा गुरु द्वारा नारायण नाम रखा गया है वैसे ही नारायण जैसा आपका हृदय और कर्म है। मेरे गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु नाम जप की ओर लोगों को विशेष आकर्षित करते हैं, क्योंकि ज्ञान की मंजिल पर पहुँचने का यही एक सुगम माध्यम है। सद्कर्म की ओर भी जीवों को लगाते हैं। सद्कर्म वह मार्ग है जिस पर चल कर साधक शीघ्र ही ज्ञान की उच्चतम मंजिल पर पहुँच जाता है। सद्कर्म गुरु की आज्ञानुसार वेदोक्त विधान से होना चाहिए। सकाम हो अथवा निष्काम। आओ तो उस प्रीतम प्यारे के मार्ग पर, फिर तो उसकी लगन लग ही जायेगी।

प्रभु वाल्यावस्था से ही भगवान के निराले रूप को धारण करके पधारे थे। वचपन से भगवान के प्रेम के दिवाने वनकर आँसू की लड़ियाँ नेत्रों से झरा करती थीं। उनका हृदय परम पवित्र और निर्मल था, जिसमें भरी थी श्यामसुन्दर से मिलने की तड़पन। जिस तड़पन की आग को बुझाया भगवान केशवानन्द जी महाराज ने, जो पूर्ण ईश्वर के अवतार थे, जो महाप्रभु के लिए ही धरातल पर पधारे थे। उनका ज्ञान अलौकिक और दिव्य था जिसको महाप्रभु ने ही समझा। वह जगत में द्वैत को स्वीकार ही नहीं करते थे। उसी एक तत्व का वोध श्री नारायण महाप्रभु को कराया। उसी अमृत तत्व का पान वह औरों को कराना चाहते हैं। यही उनके चरित्र की महानता है और इसी के लिए उनका सारा प्रयास है क्योंकि जल में डूवते हुए लोगों के लिए दृढ़ नौका के समान इस संसार-सागर में गोते खाने वालों के लिए ब्रह्मवेत्ता, शान्तचित्त, तत्वज्ञ ही परम अवलम्बन है। हम जैसे विद्यार्थी अल्प आयु जीव को, जिसने संसार को जाना ही नहीं और न किसी को ईश्वर के अतिरिक्त अपने से वड़ा माना ही था, मेरे भगवान गुरुदेव नारायण महाप्रभु जीवन-मुक्त महापुरुष की ही ऐसी शक्ति है जो कि अपने चरणों का भँवरा वना लिया एवं चरणों के दर्शन मात्र से जगत असत्य, मिथ्या, सारहीन दिखाई पड़ने लगा तथा नाना आपदाओं का सामना करके भी उस ईश्वर की भक्ति गुरु की निष्ठा को ही जीवन के कल्याण का साधन और अपने प्राणों से भी अधिक प्राण समझा। यह उसी महापुरुष की महान शक्ति का फल है, जिसने अपने चरण के अनुराग रस का मकरन्द पान कराया। नाना अपमान व आपत्तियों को तथा अपने प्राण को भी कुछ न समझ कर जीवन की आहुति चढ़ाना सुगम नहीं, अति दुःसाध्य है, लेकिन यदि साक्षात् हरि की अनुकम्पा हो जाती है तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है। मेरे भगवान नारायण महाप्रभु की महती शक्ति से अपने जीवन को उनके चरणों में लय करने वाली तेरह ब्रह्मचारिणियाँ हैं,

जिन्होंने जीवन का सर्वस्व उनके चरणों में अर्पित कर दिया है। उन्हें अपने माता-पिता अथवा संसार से कोई भी प्रयोजन नहीं, केवल गुरु आज्ञा ही उनका जीवन है। उन ब्रह्मचारिणियों में दो तो विश्वविद्यालय की स्नातिका हैं।

श्री नारद जी का वचन है—

"मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता सनाथा चेयं भूर्भवति तीर्थो कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि।"

अर्थात्—वे माता पिता धन्य हैं जिनके कुल में ऐसे भगवतप्रेमी पुत्र उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे भगवतप्रेमी त्रैलोक्य पावन महात्माओं का दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ है, क्योंकि इस प्रकार के महात्मा को देख कर पितर देवता हर्षित होकर नृत्य करते हैं और पृथ्वी भी सनाथा हो जाती है। ऐसे भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सच्छास्त्र कर देते हैं।

चराचर जीव नित्यानन्द की उपासना करते हैं, लेकिन ठीक मार्ग का अनुसरण न करने से वह इन्द्रिय-सुख एवं मन के जाल में उलझ कर महान दुःख के गर्त में गिरते जा रहे हैं। अमर सुख उनको प्राप्त होता रहे, इसीलिये जीव नाना व्यापारों में लगा हुआ है। ऊँची नीची अट्टालिकाओं का निर्माण करके भी वह दुःखी है। इन्हीं सब साधनों के वीच में रहकर मानव कैसे नित्यानन्द को प्राप्त करे ? सत्य मार्ग को सिखाने के लिये महापुरुषों का अवतार होता है। वह सत्य तत्व का निर्देश करते हैं कि इस दवा को लेकर गरिष्ट भोजन करो तो भी सब पदार्थ पच जायेगा। ऐसे अवतारी महापुरुषों में निस्संदेह महाप्रभु की भी गणना है।

निर्मल जी

श्री नारायण आश्रम

चेतावनी

ऐसा ज्ञान दिया गुरु ने,
दिल का मैल धोय दिया,
पिला दी बूटी ऐसी,
प्रेम पुंज समाय गया ।।ऐसा।।

जीवन जग में फँसा करके,
मूल धन भी गँवाय दिया,
खा पोकर सोने में रहकर,
राम रूप भुलाय दिया ।।ऐसा।।

न किया तूने जप और तप को,
न कीन्हा सुकर्म और धर्म को,
गुरु ने कृपा करी ऐसी,
मन का मैला धोय दिया ।।ऐसा।।

मोह में जकड़े जग को पकड़े,
प्रेम किया विषयों से,
नाना साज सजाया जग का,
गुरु ने फन्दा तोड़ दिया ।।ऐसा।।

रैन दिना आराम में काटे,
मौत खड़ी पल-पल में जोहे,
नारायण गुरु चेत कराये,
काहे आत्मा भुलाय दिया ।।ऐसा।।

श्री नारायण महाप्रभु की वाणी

१—त्याग, समर्पण और वलिदान जीवन के सच्चे उद्देश्य को सरलता से प्राप्त करा देता है। दूसरों को सुखी वनाने के लिए स्वयं को कष्ट उठाना ही पड़ेगा।

२—जो ईश्वर में रहता, सहता और ईश्वरीय वर्ताव करता है, वह ईश्वर से भिन्न नहीं है।

३—भक्ति का फल एकात्मा को लखना है। जिसने एकात्मा को लखा उसने सव कुछ प्राप्त कर लिए, अष्ट सिद्धि नव निद्धि उसके चरणों के स्पर्श के लिए भटकती है।

४—हरि भजन और नित्य निरंतर स्मरण के विना आने जाने वाली सांस लोहार की फुँकनी की हवा के समान है।

५—गुरु नाम के परम पवित्र जाप से जीव माया के क्षुद्र वन्धन से शीघ्र छुटकारा पा जाता है।

६—जिस प्रकार एक राजकुमार विद्यार्थी-जीवन में साधारण वच्चों के साथ खेलते और पढ़ते समय में भी अपने को राजकुमार समझता रहता है उसी प्रकार हरएक मनुष्य को माया की लीला करते समय में भी अपने द्वारा व्रह्म से अलग होकर कृत नहीं करना चाहिये।

७—एकाग्रता से यह तात्पर्य नहीं कि एकान्त स्थान में बैठकर ध्यान जमा लो। एकाग्रता का सच्चा अर्थ है, देह वुद्धि इन्द्रिय सुख की भावना से ऊपर उठ जाना।

८—यह मायिक सम्पत्ति जीवन का खिलौना है, इसको फूट जाना है। खिलौने में लगे रहना मनुष्य का लक्ष्य नहीं। शरीर के किनारे को पार करके आगे वढ़ो।

९—ज्ञान की नौका पर चढ़कर सद्गुरु को खिवैया वनाकर न्याय और सत्यता का डांड़ लेकर माया नदी को पार करना ही जीवन का रहस्य है।

१०—काम और कोध से सदा वचने की कोशिश करो। गुरु के ज्ञान का सहारा लेकर बुद्धि का पहरा बैठाये रहो। यह महापेटू है, तुम्हारे आत्मधन को निगल जायेगा।

११—मानव के बुरे संस्कार ही पालतू कुत्ते के सदृश हैं। यह पालतू कुत्ते सद्कर्म रूपी रोटी को छीन लेते हैं। संस्कारानुसार मन असद् कर्म, विषयाशक्ति रूपी विष्ठा की ओर जाना चाहता है, इसलिये उस ओर के लगाव को सद्गुरु के चरण की ओर लगा दोगे तो कुसंस्कारों के पंजे से निकल जाओगे।

१२—यदि मन में लोभ का संस्कार उठे तो फौरन तुम उस वस्तु को त्यागने की चेष्टा करो। त्यागी पुरुषों की तथा त्याग की महिमा का स्मरण करना होगा। इस प्रकार लोभ का निराकरण हो जायेगा। जिस वस्तु के कारण क्रोध उत्पन्न हो तत्काल क्रोध के मूल कारण को त्यागने की चेष्टा करनी चाहिये।

१३—संस्कार को वनाने वाला मानव स्वयं है। वह जैसा कर्म वार-वार करता है वैसा ही उसका संस्कार वन जाता है। इसीलिए मन में अविचार आते ही या संसार की ओर विशेष आसक्ति होते ही उस ओर से मन की लगाम को खींचकर त्याग और संयम की ओर लगाओ। जैसा कर्म करने का अभ्यास करोगे वैसा ही संस्कार वन जायेगा।

१४—संसार में एक ब्रह्म व्याप्त है। एक से दूसरा कोई है ही नहीं, अतः नर-नारी का कोई भेद नहीं है। ॐ मन्त्र जपने तथा वेदों का पाठ करने का नारी को पूर्ण अधिकार है। प्राचीन काल में नारियाँ वेद प्रवचन में भाग लिया करती थीं। जिस प्रकार लड़कों की शिक्षा-

दीक्षा के लिये गुरुकुल होता था उसी प्रकार वालिकाओं के लिए भी गुरुकुल की व्यवस्था थी। वालिकाओं का उपनयन संस्कार होता था।

१५—जैसे मनुष्य फटे पुराने कपड़ों को त्याग कर अन्य नये कपड़े पहन लेता है वैसे ही यह शरीरी आत्मा भी जीर्ण शरीरों को छोड़कर अन्य नये शरीरों में प्रवेश कर जाता है।

१६—आत्मा, अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय है। नाश तो शरीर का होता है। इसीलिये सदैव कर्म की ओर सचेत रहो। जो जैसा कर्म करेगा वैसा फल मिलेगा। कर्म पर पहरेदारी नहीं रखेंगे तो पीछे हाथ पर हाथ रखकर रोना पड़ेगा।

१७—परोपकार जीवन का भूषण है। आपसे जो कुछ भी हो सकता है अपनी शक्ति के अनुसार परोपकार करते रहना चाहिये।

१८—जीवन को जुगनू के सदृश मत वनाओ। जुगनू का प्रकाश जुगनू के लिये ही है, उसके प्रकाश से अन्यों को कोई लाभ नहीं। जीवन सूर्यवत वनाओ। वह सम रूप से प्रकाशित होता है। भले-बुरे सवको प्रकाश देकर सुख पहुँचाता है। वह दूसरों को कर्म में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है।

१९—बुद्धिमान वही है जिसके पास पहुँच कर मूर्ख भी बुद्धिमान वन जाय। सुन्दर वह नहीं जिसके सामने दूसरे फीके पड़ जायँ। सच्चा सुन्दर तो वही है जिसके संसर्ग से कुरूप भी सुन्दर वन जाय।

२०—विद्वान वही है जो दूसरों को भी विद्वान वना दे। दानी वही है जो अपनी त्याग-वृत्ति के द्वारा दूसरों में भी त्याग की भावना जाग्रित कर दे।

२१—नम्रता का गुण अपने में सृजन करो। नम्र भाव ही आपको प्रभु-कृपा का अधिकारी वना देगा। वानरगण साधन रहित थे, पर भगवान श्री राम के समक्ष दैन्यता को धारण करे रहते थे, अतः भक्ति-रूपिणी सीता जो के कृपा-पात्र वन गये। रावण साधन सम्पन्न था,

परन्तु अहंकारी था और इस अहंकार के वशीभूत होकर भक्तिदेवी सीता जी का अन्यायपूर्वक हरण भी किया, लेकिन उनकी कृपा से दूर ही रहा।

२२—भगवान रस रूप हैं। वह एक होकर अनेक में व्याप्त हैं। जो उनको चाहते हैं उनको अपने में रस उत्पन्न करना होगा। माधुर्यता नहीं लाओगे तो भगवान कैसे रीझेंगे। अनेक में एक नहीं देखोगे तो उनको कैसे अपनाओगे।

२३—भगवान के मंगलमय चरणों के स्पर्श से अहिल्या की जड़ता दूर हो गई थी। आप ही अहिल्या हो। विषयों के संसर्ग से जिनकी बुद्धि में जड़ता आ गई है उनको ईश्वर के परम दयालु चरणों का आश्रय लेना चाहिये, जिनके स्पर्श मात्र से विवेक जाग्रित हो जायेगा।

२४—बुद्धि को भोगों की ओर मत प्रवृत्त करो। भोगों की उपभोगता बुद्धि को जड़ वना देगी। अहिल्या ने भ्रमवश यथार्थ गौतम के संसर्ग को छोड़कर इन्द्र रूपी गौतम का संसर्ग किया था। इसीलिये जड़ वन गई थी। भक्तों को सदैव सत्संग में लगे रहना चाहिये।

२५—इस जगत में सव अनित्य है। आत्म-स्वरूप की ही प्राप्ति नित्य है। सव ओर से मन मोड़कर आत्म-प्राप्ति को ओर लग जाना चाहिये।

२६—ज्ञान-मार्ग अत्याज्य और श्रेष्ठ है, लेकिन शुष्क है, केवल ज्ञान को लेकर भक्ति का खंडन करना भी अविवेक है, जड़ता है। भक्ति उच्च है, परम उच्च है, रस रूप और भाव प्रधान है। लेकिन केवल भाव से ही काम नहीं चल सकता। भाव नष्ट भी हो सकता है। ज्ञान अविनाशी है। इसीलिये ज्ञान और भक्ति का समन्वय करना ही सर्वश्रेष्ठ है। विना ज्ञान के भक्ति नहीं, विना भक्ति के ज्ञान नहीं, दोनों के मिलने से जीव सहज ही ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

२७—ईश्वर सर्वत्र है, लेकिन सर्वव्यापकता का आभास सद्‌गुरु के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

ब्रह्मानन्द की मस्ती में

नारायण चरितावली

ईश्वर की लीला बड़ी ही गूढ़ एवं रहस्यात्मक है। अभी तक इसके रहस्य का अन्वेषण कोई भी जीव पूर्ण रूप से नहीं कर सके। इने गिने जो इनके स्वरूप में मिले हुये अर्थात् उन्हीं की शक्ति एवं तत्व लेकर इस धराधाम में अवतीर्ण हुये हैं वही उनको समझ सके हैं।

इस पृथ्वी के रंगमंच पर अनेक नटवर वेष धारण करके वह नटवर लीला का अभिनय किया करता है जिसका थाह लगाना असंभव है। जितना ही थाह लगाने का प्रयत्न किया जाता है उतना ही अथाह प्रतीत होता है। पुरुष सच्चिदानन्द आनन्दघन घनश्याम है, प्रकृति उनकी महामाया आदि शक्ति श्री राधा रानी है।

स्थूल रूप से देखने में प्रकृति एवं पुरुष दो हैं किन्तु मूल रूप से दोनों एक ही हैं। श्याम ही श्यामा है, श्यामा ही श्याम है। दोनों में अभिन्नता है। दोनों में से एक के अभाव से लीला अधूरी ही रह जायेगी। दोनों की शक्ति बराबर है।

. पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु राम से जब महिषासुर नामक दैत्य काल का ग्रास न हो सका तब आदि शक्ति श्री महामाया सीतारानी ने दुर्गा का अवतार लेकर उसका वध किया।

इस प्रकार इतिहास के पन्ने पलटने से हमें ज्ञात होता है अनादि काल से पुरुष एवं प्रकृति के सहयोग से इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं संहार होता

आया है। है वस्तु दोनों एक ही, किन्तु नाम एवं रूप में विभिन्नता है।

महामाया श्री नारायण प्रभु का जन्म हिमालय की तराई में मूंगा नामक ग्राम में हुआ था। यह ग्राम आपके पूर्वजों का ही बसाया हुआ था। आपके पूर्वज अपने प्रान्त के इने गिने प्रतिष्ठित व्यक्तियों में अपनी गणना रखते थे। पिता जी एक उच्चपदाधिकारी शासक थे। नेपाल प्रान्त का एक हिस्सा आपके ही शासन में था। पिता जी का नाम श्री भक्त वहादुर थापा था। क्षत्री होते हुये भी आपके पूर्वज धर्मपरायण अग्निहोत्र ब्राह्मण के सदृश थे। आप लोग दार्जिलिंग से जलती हुई अग्नि को लेकर मूंगा नामक ग्राम में आये और इस ग्राम को स्वयं ही वसाया।

शिशिर ऋतु का प्रारम्भ था। गुलावी जाड़े की हल्की सी झलक पृथ्वी पर पड़ने लगी थी। वर्षा ऋतु का अंत हो चुका था। सरोवरों में निर्मल शांत जल भरा हुआ था। नीड़ों में श्वेत नील कमल अपनी सौन्दर्यता का प्रदर्शन कर रहे थे। क्वाँर का महीना था। सूर्य की प्रथम रश्मि ज्योंही पृथ्वी पर पड़ी महामाया श्री नारायण महाप्रभु ने धरातल पर प्रथम चरण रक्खा।

आपके अवतार की लीला भी बड़ी रहस्यात्मक एव गूढ़, गभीर है जिसको कोई विरला भक्त ही समझ सकता है। साधारण मानव अपनी मानवी बुद्धि से इसके अगम्य तत्व को क्या समझ सकेगा?

श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु का जन्म एवं कर्म गर्भ से ही रहस्यात्मक रहा। साधारण वालक माता के उदर से नौ मास पश्चात् ही जन्म ले लेते हैं परन्तु मेरे गुरुदेव ग्यारह मास तक माता के उदर में रहे। जब वालक किसी भी प्रकार गर्भ से वाहर नहीं आया तब अनेक प्रकार के पूजा-पाठ गृह में बैठा दिये गये। अनेक देवी देवताओं की मनौती होने लगी। नाना धार्मिक कृत्य आरम्भ हो गये। ग्राम के नर नारियों की भीड़ होने लगी। सब अपने-अपने पुण्य को अर्पण करने लग गये जिस प्रकार से जब महाकाली के अवतार के लिये सभी देवताओं ने अनेक प्रकार से वैकुंठ नाथ की स्तुति करी तथा अपने पुण्यों को महाशक्ति के अवतार के लिये अर्पित किया तब उन्ही लोगों के पुण्य के सग्रह से देवी का आविर्भाव हुआ एवं उन्होंने अधर्म का ह्रास करके जगत में

सुख शांति की स्थापना की। उसी प्रकार से मेरे गुरुदेव के अवतार के लिये भी सबों को पुण्य देना पड़ा।

माता जी सात दिन तक प्रसव पीड़ा से बेचैन रहीं लेकिन शुकदेव जी की तरह आप किसी भी प्रकार से गर्भ के बाहर नहीं आते थे। अनेक विद्वान पंडित संत महात्माओं की शुभ कामना, आशीर्वाद, रुद्री पाठ, स्तुति आदि होने के पश्चात् भी जब आपका आगमन नहीं हुआ तब आपके शरीर से सम्बंध रखने वाली दादी जी, जो उस नगर में महालक्ष्मी का अवतार समझी जाती थीं आपके पाँच पुत्र थे, किसी भी पुत्र के घर बालक जन्मने पर आप नहीं जाती थीं; सब नौकर नौकरानियाँ, ब्राह्मणियाँ, अन्य परिवार के लोग सम्हाला करते थे, आपका कार्य केवल पूजा पाठ करना और घर की सम्पत्ति को अपने आधीन रखना तथा दान पुण्य एवं परोपकार करना ही लक्ष्य था। लोगों ने जाकर यह संदेश सुनाया कि बालक किसी भी प्रकार से जन्म नहीं ले रहा है। बालक की माँ पीड़ा से व्याकुल है। सम्भव है आपके शुभ सुलक्षण हाथों के लगने से बालक की माँ का कष्ट मिट जाये इसलिये आप परोपकार के हेतु अवश्य चलिये। यद्यपि दादी जी का बहुत ही सम्मान था, उनके समक्ष कोई भी नहीं जाता था, लेकिन ऐसा समाचार सुनते ही आप तत्काल प्रसूत गृह में गईं।

आपके प्रवेश करते ही ज्योंही माता जी के ऊपर हाथ फेरा त्योंही शक्ति देवी धरातल पर आ गईं।

परिवार में एकदम प्रसन्नता की रश्मि फैल गई। कहाँ क्षण क्षण में प्राणों की रक्षा की जा रही थी, कहाँ अचानक महामाया का प्रादुर्भाव हो गया। जन्म महोत्सव के बधावे बजने लगे। चारों ओर प्रत्यक के हृदय में नवीन उल्लास छा गया। सबों के हर्ष का ठिकाना न रहा। ऐसा लगता था मानो किसी दम्पति के विवाह के बहुत वर्ष पश्चात् प्रथम पुत्र हुआ हो।

महामाया का रूप लावण्य विलक्षण था। दो तीन मास के बच्चे के सदृश आपका लम्बा चौड़ा मोटा शरीर था। श्वेत कोमल मक्खन के सदृश गौरवर्ण का रंग था। माथा चौड़ा एवं चांद पर एक भी बाल नहीं थे। चांद जैसा

मुखारविंद देखने में लड़के जैसा प्रतीत होता था ।

जब महाप्रभु दो मास के थे तभी उनकी अपनी निजी विचित्र विचित्र लीलायें होती थीं जिसको साधारण लोग नहीं समझ पाते थे । आपमें अद्भुत आकर्षण शक्ति विद्यमान थी । संयुक्त परिवार था । उस परिवार में लगभग सौ डेढ़ सौ व्यक्ति थे । आप सबके सर्वप्रिय थे । आपको पास पड़ोस के घर परिवार के सभी लोग स्वाभाविक रूप से ही अत्यन्त स्नेह करते थे । आप बड़े ही लाड़ प्यार से पाले गये । माता की सबसे छोटी सन्तान होने के कारण माता के हृदय का टुकड़ा थे । पिता जी भी सब बच्चों से अधिक इन्हीं को स्नेह करते थे ।

श्री नारायण महाप्रभु के चार ज्येष्ठ भ्राता थे । इनके ऐसे दुलार देखकर बड़े भ्राता कभी-कभी माता पिता पर बिगड़ भी जाते थे । वे कहते थे कि आप लोगों ने इसको पुत्रों से भी अधिक मान करके पाल रक्खा है, आगे जाकर यह क्या करेगी ?

श्री शक्ति देवी की विचित्र शक्ति थी । बाल सुलभ चंचलता में अद्भुत विशेषता थी । इनकी मनमोहक चंचलता को देखकर सब ही मुग्ध से हो जाते थे ।

गुरुदेव जी की बाल-लीला बड़ी ही हृदयग्राही होती थी । चंचलता एवं गम्भीरता का अद्भुत सामंजस्य था । गुड़िये, गुड्डे, खिलौने की ओर आपकी रुचि बिल्कुल नहीं थी । आप चैतन्य से खेलते थे । ज्यों-ज्यों जगत जननी माँ बड़ी होती गई त्यों-त्यों उनकी लीलाओं का प्रदर्शन होने लगा । उनकी लीला रहस्यमयी, अनुपम एवं रसिक थी । अहंकारी को तो अपने पास तक नहीं आने देते थे । आप स्वतंत्र प्रिय थे । आप नारियों में बहुत कम बैठते थे । पाँच छः वर्ष के जब आप हो गये उसी समय से जहाँ अपने खेल से जरा भी अवकाश मिलता शीघ्र ही पिता भाई के पास जाकर अच्छी-अच्छी बातों को सुनना पसन्द करते थे । धार्मिक चर्चा भगवान की कथा आप बड़े मन से सुनते थे । साधारण बच्चों की तरह खिलौनों से नहीं खेलते थे । बड़ों के पास जाकर बैठते थे ।

श्री गुरुदेव जी की बाल सुलभ झांकी का कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है उसी से पाठकगण कुछ न कुछ समझ ही जायेंगे कि वह एक साधारण बालक के सदृश नहीं अवतरित हुये बल्कि दिव्य स्वरूप एवं गुण लेकर ही अवतरित हुये।

बाल्यावस्था से ही आप परिश्रमी एवं निर्भीक प्रकृति के थे। वह अपने सन्मुख किसी बड़े से बड़े कार्य को कुछ भी नहीं समझते थे।

सत्यता के लिये बड़ों-बड़ों से आपका द्वंद हो जाता था। वह अपने को छोटे होने पर भी किसी से छोटा नहीं समझते थे। उनकी बुद्धि बड़ों-बड़ों को भी मात कर देती थी। बाल्यावस्था में विचित्र-विचित्र आपके कौतुक होते थे। मध्याह्न की वेला में जब समस्त परिवार गाढ़ निद्रा में सोता तब आपको माता जी के लाख प्रयत्न करने पर भी निद्रा नहीं आती थी। माता जी के थपथपाने पर आँखों को मींचकर निद्रा का बहाना करके करवट ले लेते, किन्तु ज्योंही माता जी प्रगाढ़ निद्रा में सो जातीं आप शीघ्र ही सबकी आँखों की ओर निहारते हुये धीरे-धीरे उठते एवं कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर निकल जाते थे। आप बाल्यावस्था से ही कर्मठशील थे। कुछ नवीन कर्म होना चाहिये इस प्रकार का भाव हृदय में रहता था।

मध्याह्न में नवीन-नवीन सब बच्चों को एकत्रित करके हास्यप्रद लीलायें किया करते थे। कभी-कभी ऐसा होता कि आप अकेले ही रह जाते और सब बालक अपनी-अपनी माता की गोद में सो जाते। उस समय नवीन खेल निकाल कर अकेले ही क्रीड़ा किया करते। आपको किसी वस्तु की अथवा व्यक्ति की कोई परवाह नहीं थी। आप बाल्यावस्था से ही अनासक्त परमहंस के सदृश थे। अकेलापन आपको प्रतीत ही नहीं होता था। प्रत्येक परिस्थिति में आनंद से रहते थे। उदास मुख तो कभी किसी ने नहीं देखा।

अकस्मात् कभी-कभी ऐसा होता था कि आप बच्चों के समूह में खेलते दिखाई पड़ते, एक क्षण में एकांत में जाकर बैठ जाते और किसी गहरे विचार में डूब जाते थे। आप अद्भुत थे, अकेले बैठे-बैठे ही आनन्दित हुआ करते थे। इनके ऐसे चरित्रों को देखकर परिवार के बच्चे आश्चर्य में पड़ जाते थे।

कभी-कभी भीड़ को जोड़कर लीला करते । कभी-कभी सबमें से मौका देखकर भाग जाते एवं अकेले बैठे-बैठे मनोविनोद करते । समाधिस्थ होने का बीज तो जन्मजात था जो मानवी लीलाओं में दिखाई पड़ता था ।

इसी प्रकार मध्याह्न में जब कभी आपको कोई बालक नहीं मिलता तब आप अकेले ही घर भर की परिक्रमा कर डालते एवं किसी न किसी नवीन खेल का अनुसंधान करके देखने वालों को भी आश्चर्य में डाल देते थे । कुछ नहीं मिलता तो बकरी ही पकड़ लेते, उसी को घोड़ा बनाकर उस पर बैठ जाते थे । उसी को चल घोड़े चल कहकर अपने नन्हें-नन्हें कोमल हाथों से आगे बढ़ाते । आगे बढाने पर जब मैं मैं करके आगे चलने लगती तो ताली बजाकर हँसते और फिर आगे बढ़ाते । मध्याह्न भर ऐसे ही करते रहते । उसी बकरी को घोड़ा मानकर उसकी पीठ पर आसीन होकर घर भर में दौड़तें थे । एक दिन आपने उस अनजान बकरी को ऊपर छत पर चढ़ा दिया एवं एक कुर्सी से उसके पैर को बाँधकर खूब दौड़ाना प्रारंभ कर दिया । बालवत स्वभाव । अनजान बालक ने कमरे का सब दरवाजा बन्द कर लिया । अकेले ही दोनों जने खूब दौड़ते रहे । पहाड़ी प्रदेशों में भूचाल के भय से प्राय: लकड़ी के घर बनाये जाते हैं ।

एक कुर्सी के साथ बकरी के दौड़ने पर जो पदध्वनि से आवाज होती थी उससे बकरी खूब डर गई । बकरी भय के कारण खूब चिल्लाने लगी एवं बाहर भागने की कोशिश करने लगी । उसकी घबराहट देखकर आप उसको खोलने का प्रयास करते । यह देखकर बकरी भयभीत होकर और भागने लगती एवं चिल्लाने लगती । वह उसके बन्धन को खोले तो कैसे खोले । दया से आपका हृदय भर गया । आपकी साथी बकरी और आप दोनों मिलकर जोर-जोर से रोने लगे । किसी प्रकार नीचे दोनों साथियों के रोने की आवाज पहुँची । लोगों ने सोचा इनको पता नहीं क्या हो गया । सब लोग दौड़कर आये किन्तु कहीं आपका पता नहीं लगता था कि आप हैं तो कहाँ हैं । अन्दर से तो दरवाजा बन्द करके खेल रहे थे । बहुत खोजबीन करने पर मुश्किल से पता लगाकर दरवाजा तुड़वाया गया । दरवाजा खुलने पर इनकी लीला का

अवलोकन कर सब खूब हँसे एवं बकरी अपनी जान लेकर भागी। जिन लीलाओं को आप लोगों ने कभी देखा और सुना न होगा वही लीलायें आपके चरित्र में मिलेंगी।

एक दिन किसी साथी ने इनसे गप मारते हुये कहा—"यदि बकरी से सलाम करने को कहा जाय तो वह बहुत ही अच्छा सलाम करती है।" अंधा क्या माँगे आँख। आपको तो ऐसी लीलायें अच्छी ही लगती थीं। संसार में जो कर्म कोई न कर सके उसी को करने में आपकी रुचि थी।

दूसरे दिन मध्याह्न भी नहीं हो पाया था कि आप शीघ्र ही बाहर आकर एक बकरी पकड़ लाये एवं उससे इस प्रकार बोलने लगे मानो वह इनकी दासी हो एवं इनकी सब बातों को समझती हो।

आपने उसको अपने सामने खड़ा कर लिया एवं आज्ञा दी कि तुम मुझको नमस्कार करो। बिचारी अनजान जीव डर के कारण थरथर काँपते हुये ऐसी ही खड़ी रही। उसको टाँग उठाते हुये न देखकर कहने लगे—शीघ्र ही मुझको सलाम करो। विचारी अनजान पशु इनकी भाषा को क्या समझे। जब उसने टांग नहीं उठाई तब आपने उसकी एक टाँग पकड़ कर उसके सिर में लगाते हुये कहा, 'इस प्रकार सलाम किया जाता है। तुमको हम सिखाते हैं। तुम्हें सीखना चाहिये।' उस समय आपकी अवस्था ६ वर्ष की थी। अबोध बालक आप और अबोध ही बकरी। किसी प्रकार से माता जी ने समझा बुझाकर बकरी को छुड़ाया। अर्थात् अनहोनी कर्म करने में रुचि थी।

इसी प्रकार आपने एक कुत्ता पाल रक्खा था। कुत्ता बड़ा ही ईमानदार एवं स्वामिभक्त था। वह गुरुदेव जी को बहुत ही प्यार करता था। जहाँ वह जाते थे पूँछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे भागता था। महाप्रभु जी बाल्यावस्था से ही शुद्धताप्रिय थे। वह अपने कुत्ते को नित्य स्नान करा कर उसको अपने साथ रखते थे। इधर उधर कहीं नहीं जाने देते थे। एक बार आपके दाँतों में बहुत अधिक पीड़ा हुई। आपने तीन दिन तक कुछ आहार नहीं किया एवं रोते रहते। वह ईमानदार पशु भी उसी प्रकार उनकी चारपाई के सहारे पड़ा रहता था एवं तीन दिन तक उसने भी कुछ नहीं खाया। जब

गुरुदेव जी ने अपने मुँह में अन्न डाला तब ही उस पशु ने डाला। कुत्ते की सच्चाई देखकर आप उसके सुख का और भी विचार करते थे। आप बाल्य-काल से ही सत्यप्रिय थे।

आपकी कौतुकपूर्ण प्रकृति से कोई भी अनभिज्ञ नहीं था। इनकी लीलाओं को अवलोकन करके सबको ही बड़ा आनन्द आता था एवं सभी इनकी लीलाओं से मनोरंजन करते थे और अद्भुत लीला देखने के लिये लालायित रहते थे।

एक दिन की बात है, यह उसी कुत्ते के साथ खेल रहे थे। इसी मध्य में किसी ने आपसे आकर कहा कि कुत्ते बड़े बुद्धिमान होते हैं, जो कुछ भी काम कराओ वे बड़ी कुशलता से करते हैं। आप तो एक धुनी थे ही, थोड़ी देर विचार करते रहे, तत्पश्चात् झट से उठे, कुत्ते के पास एक लालटेन जलाकर रख दिया। स्वयं दूर पर जाकर खड़े हो गये, कुत्ते को इशारा किया कि तुम उस लालटेन को लेकर मेरे पास आओ। कुत्ता उनकी बात को समझने में असमर्थ रहा। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं वह लालटेन उसके मुख में रख दी, स्वयं दूर पर जाकर खड़े हो गये और कुत्ते को अपने समीप आने के लिये इशारा किया। थोड़ी दूर तक तो वह अबोध पशु गया, तत्पश्चात लालटेन की ताप सह न सकने के कारण उसने लालटेन को वहीं भूमि पर धर दिया। कुशाग्र बुद्धि के तो थे ही, आपने सोचा कि लालटेन इसको गर्म लगती है, अब क्या वस्तु कुत्ते से मंगाई जाय। कमरे में से एक छड़ी उठा लाये एवं कुत्ते के मुख में उसको रखकर हुक्म दिया कि तुम इस छड़ी को लेकर मेरे पास आओ। अनेक बार सिखाने के बाद बेचारा कुत्ता अपने जबड़ों से छड़ी को दबाकर महाप्रभु जी के पास आने लगा। रास्ते में ही एक दरवाजे से बेचारा अटक गया, लाख प्रयत्न करने पर भी वह निकल नहीं पाया। किसी प्रकार उसको दरवाजे से निकाल कर आपने उसको अपने समीप तक पहुँचाया अर्थात् उनके मन में यह भावना रहती थी कि उद्योग करने से सब काम हो सकता है।

आपको बाल्यावस्था से ही पशु पक्षी आदि के प्रति स्नेह एवं सहानुभूति थी। प्रकृति के आप पुजारी थे। जंगल वन पहाड़ियाँ आपको रुचिकर थीं।

प्रातःकाल सूर्योदय की वेला में आप पहाड़ियों की चोटी पर चढ़ जाते थे। सूर्य की प्रथम रश्मि जब खेत की बर्फीली पहाड़ियों पर पड़ती थी उस समय की अद्वितीय शोभा को आप एकटक निहारा करते थे। जब आप ७-८ वर्ष के थे तब आपने लँगड़ी बंदरिया को पाला था। दैववश बन्दरिये के पुण्य से आप बंदरिये को देखते ही द्रवीभूत हो गये। आप अपने कर-कमलों से उसकी सेवा करते थे। उसको स्नान आदि कराते थे। उसके चोट पर दही चूड़े का लेपन करते। उसकी सारी सेवा अपने संरक्षण में करवाते थे या स्वयं ही करते थे। शनैः-शनैः उसको इन्होंने बिल्कुल ही स्वस्थ कर लिया। बंदरिये के स्वस्थ हो जाने पर आपने उसके शरीर के सारे बाल कैंची से साफ करके दर्जी से टोपी, फ्राक आदि सिलाया, पहनाया।

आप उससे बहुत ही स्नेह करते थे। आप कहते थे इसका कोई नहीं है, रैन दिवस उसको साथी के सदृश साथ रखते, कभी नृत्य सिखाते, कभी नमस्कार करना सिखाते। विविध प्रकार से अनेक शिक्षाओं में जब पूर्ण कर लिया तब एक दिन उस बंदरिये को पिता जी के पास ले गये एवं उसकी सारी कौशलता का प्रदर्शन कराया। इतनी नन्ही सी बालिका की कुशाग्र बुद्धि को देखकर प्रत्येक पारिवारिक जन आश्चर्य करते थे। सात-आठ वर्ष के बालक के हृदय में एक पशु के प्रति इतनी आत्मीयता, दयालुता! इस चरित्र को कोई न समझ सका। आपकी बाल्यावस्था से अहिंसात्मक वृत्ति थी।

जड़ चेतन के प्रति आपका ममत्व था। यद्यपि आत्मज्ञान की कोई भी जानकारी नहीं थी किन्तु काठ में छिपी अग्नि के सदृश ज्ञान विद्यमान होने के कारण आपके कार्य व्यवहार अपूर्व ही ढंग के होते थे।

आदिशक्ति की अनूठी-अनूठी लीलायें प्रायः मध्याह्न में ही हुआ करती थीं। आपके घर के पास बड़ा भारी उद्यान था, उसमें विभिन्न प्रकार के फल एवं पुष्प के वृक्ष थे। आप पहाड़ियों पर चढ़ जाया करते थे। अनेक साथियों को एकत्रित करते और उनकी प्रधान नायिका आप बन जाते थे। पहाड़ियों पर मिट्टी के छोटे-छोटे घरौंदे बनाकर काल्पनिक राम लक्ष्मण की मूर्ति बनाकर खेला करते थे। मूर्ति में चावल के दाँत बना देते थे। अपने सिर के बालों

को उखाड़ कर उसके बाल लगा देते थे एवं लाल पीले कंडैल के पुष्पों से कलापूर्ण ढंग से श्रृंगार करते, सब मिलकर उन मूर्तियों का पूजन करते थे। पूजन समाप्त हो जाने के पश्चात् उन घरौंदों एवं मूर्तियों को एक घड़ा पानी डालकर धो देते तब वहाँ से हटते। एक दिन किसी बालक ने प्रश्न किया कि आप ऐसा क्यों करते हैं। आपने प्रत्युत्तर में यही बताया कि यह भगवान की प्रतिमा हो गई एवं यह भगवान का पूजा हुआ स्थान हुआ अतः ऐसे पवित्र स्थान में कहीं किसी का पैर न लग जाय इसलिये हम उसके रूप को मिटा देते हैं।

कभी-कभी ऐसा होता था कि जब आप पूजन के लिये मंदिर का निर्माण करते थे तो उसके लिये कभी-कभी जल मिट्टी ईंट आदि की आवश्यकता पड़ जाती थी। आप इन सब कार्यों को छोटे-छोटे बच्चों से करवाते थे। यदि उनमें का कोई भी बालक इनसे उम्र में विशेष होता एवं इनसे किसी सामग्री को लाने की आज्ञा दे देता आप मुँह से कुछ भी न कहते थे किन्तु तत्काल ही आप कहीं एकांत स्थान में चले जाते एवं साफ सुथरी जगह खोजकर बैठ जाते और वृक्षों की कोमल-कोमल पत्तियों के स्पंदन को एवं पक्षियों को बैठे-बैठे निहारा करते। शनैः-शनैः उसी अवस्था में ध्यानावस्थित हो जाते। किसी सरिता के तट पर जाकर बैठ जाते एवं उनकी लहरों से बैठे-बैठे घंटो मनोविनोद करते रहते थे।

आपके घर के पास ही एक दालचीनी एवं बांस का वृक्ष था। मध्याह्न में छोटे-छोटे पक्षी अपने परिश्रम का क्लांत मिटाने के लिये वहाँ आते थे। आप चुपके से बिना किसी के कहे वहाँ चले जाते एवं दालचीनी के वृक्ष के तले बैठ जाते और एकाग्र चित्त से पक्षियों के कौतुकों को निहारते रहते। कभी-कभी इनको ऐसा लगता था कि हम भी इनसे खेलें, अतः उनको पकड़ने का उद्योग करते। जब पक्षियों की क्लांत मिट जाती और वह देखते कि चिड़ियाँ सब उड़ गईं तब आप तत्काल दौड़कर बाँस के वृक्ष के नीचे बैठ जाते थे एवं उस पर के पक्षियों से मनोविनोद करते रहते।

आपके कमरे में एक खिड़की थी। प्रातः उठकर उसी खिड़की पर बैठ जाते

एवं पहाड़ी दृश्यों को निहारा करते। वह नित्य देखते कि एक कौआ आता है एवं खिड़की के बाहर बैठा रहता है। एक दिन स्वतः ही इन्हें कौये से छेड़-खानी करने का मन लगा और उसको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु चालाक कौआ इनके हाथ बढ़ाते ही उड़ जाता था। आप नित्य-प्रति उसी को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। आपकी बाल्यावस्था से यह प्रकृति थी कि जिस बात के पीछे लगते उसे पूर्ण करके ही छोड़ते थे।

जैसे ही आप खिड़की पर जाकर बैठते वह कौआ भी खिड़की के सामने आकर बैठ जाता था एवं आपके दर्शन द्वारा अपना जीवन कृतार्थ करता था। आपकी प्रकृति बालगोपाल के सदृश थी। आप नित्य ही खिड़की पर जाकर दूध भात रख आते थे एवं छिपकर पकड़ने का प्रयास करते। कई दिन के अथक परिश्रम के बाद एक दिन सफलता समक्ष दृष्टिगोचर होने लगी। बेचारा स्वतन्त्र पक्षी एक दिन कर-कमलों में फँस ही गया। आपकी प्रसन्नता का वारापार न रहा। मुख-कमल खिल पड़ा मानो विश्व का साम्राज्य किसी ने पा लिया हो। आठ वर्षीय अवस्था, बाल-सुलभ चंचलता, भोला-भाला मुखड़ा बत्तीसों दाँत निकले हुये थे। अपूर्व शोभा देखते ही बनती थी।

शीघ्र ही आप कौये को लेकर दौड़ते हुये पानी की टंकी के पास पहुँच गये। उसको पवित्र करने के लिये खूब स्नान कराया। स्नान करते-करते बेचारा कौआ अधमरा हो गया, उसके प्राण-पखेरू उड़ने की तैयारी करने लगे। इतने में अपनी लड़की को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते माता जी टंकी के पास आ पहुँचीं। इनकी लीला को देखकर पहले तो उनको बड़ी जोर से हंसी आई, किन्तु जब कौये पर दृष्टि पड़ी तो वह एकदम से चिल्ला उठीं एवं कौये को इनके हाथ से छीनकर उड़ा दिया। अपने सहज स्वभाव से माता जी से पूछने लगे, "माता जी, सब पक्षियों को तो पाला जाता है फिर कौये को क्यों नहीं पाला जाता ? इस बेचारे ने क्या बिगाड़ा ?"

इनकी भोली-भाली मीठी-मीठी बातों को सुनकर माँ प्यार करके अपने कार्य से चली गईं।

आप बाल्यावस्था से ही बड़ी कुशाग्र बुद्धि के थे। कुशाग्र बुद्धि, चंचलता,

सौम्यता एवं भोलेपन का सुन्दर सामंजस्य था। आपके भोलेपन एवं कुशाग्रता पर अपरिचित व्यक्ति भी विमुग्ध सा हो जाया करता था। आकर्षण शक्ति का अद्भुत चमत्कार था। उस विशाल संयुक्त परिवार के अनेकों बच्चों में आप निराले ही प्रतीत होते थे। बोलचाल, रहन-सहन, खान-पान सब दूसरे ही ढंग से होता था। निर्भीकता विशेष स्थान रखती थी। किसी काम से पीछे हटना या डरना तो आपने सीखा ही नहीं था।

घर के पीछे एक विशाल संतरे का उद्यान था। बच्चे और बन्दर तो एक कहलाते हैं। परिवार में कम से कम ५० बच्चे थे। मनमौजी बच्चों का झुंड जिधर निकल पड़ता था उधर ही पर्वतीय मालाओं में मंगल मना लेता था। एक दिन की बात है, बच्चों का झुंड संतरे के बाग में घुस पड़ा। हरे-हरे वृक्ष पीले-पीले संतरों के गुच्छों से बोझिल होकर नीचे झुके हुये थे। मानो वह उन्हीं बच्चों की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। बच्चों ने उन संतरों के वृक्षों पर धावा बोल दिया। महाप्रभु नारायण की अवस्था उस समय केवल ९ वर्ष की थी। पेड़ इतने झुक गये थे कि माँ के नन्हें-नन्हें कोमल हाथ भी संतरों तक पहुँच गये। सब बच्चों ने खूब संतरे खाये। आधे तो फेंके गये आधे खाये गये।

उसी उद्यान में एक ऊँचा सा मचान बना हुआ था। कुछ बच्चे संतरे तोड़कर उसी मचान पर चढ़ गये एवं अपनी तोतली बोली में वार्तालाप करके संतरे का रसास्वादन करने लगे। किन्तु आपका उन बच्चों के समूह में कहीं पता नहीं था, उन्होंने चुपके से फ्राक भरकर संतरे तोड़ लिये एवं एक झाड़ी के अन्दर घुसकर लेट गये एवं धीरे-धीरे सब संतरे खाकर फ्रॉक से मुँह पोछ कर साथियों के झुंड में घुस गये। बुद्धि की तीव्रता तो आपमें अपूर्व थी ही। आपने ऐसा इसलिये किया कि यदि बाग का माली या अन्य कोई डाटने के लिये या फलस्वरूप सजा देने को आ जायेगा तो उस समय संतरे खाने का कोई प्रमाण मेरे पास नहीं पायेगा तो स्वयं ही लौटकर चला जायेगा क्योंकि वैसे भी हम तो केवल इन लोगों के साथ आ गये थे।

किन्तु दैव कृपा से वहाँ इन लोगों पर कुछ भी नहीं बीती। सही सलामत हंसते खेलते, पलटन की पलटन प्रवेश द्वार में ज्यों ही घुसने लगे, सबके संतरे

की खवाई सब निकल गई। लम्बे तगड़े गौर वर्ण के, प्रवृत्ति के कड़े, शासन के कठोर, पैरों में खड़ाऊँ पहने बड़े चाचा जी सामने खड़े थे। उन्होंने कड़क कर पूछा, "तुम लोगों की पलटन किधर से आ रही है? सबको अभी देखता हूँ।" वहाँ तो संतरे के रस से सबके कपड़े भीगे थे, किसी के मुँह में संतरे के रस का दाग लगा था तो किसी के हाथ से गंध आ रही थी। संतरे की चोरी का प्रमाण सबके साथ था। भय से सब बच्चे एक दूसरे की ओर इशाराबाजी करने लगे कि अब किस प्रकार इनके चंगुल से जान बचाई जाय। सबकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये थे। सब एक दूसरे को सनकियाते थे। किन्तु नारायण भगवान ने तो न इधर देखा न उधर। दूर से ही बड़े चाचा जी को देखकर झुंड छोड़कर छिपकर पीछे के प्रवेश-द्वार में घुस गये एवं नौकरानी से पानी लेकर हाथ मुंह धोकर कुल्ला करके फिर झुंड में शामिल हो गये।

बड़े चाचा जी ने सबकी तलाशी ली। सबके पास संतरे की चोरी का प्रमाण मिल गया एवं अभियोग में दंड मिला, किन्तु जब आपका नम्बर आया आप निर्भीकता से बड़े चाचा जी के पास चले गये। चाचा जी ने मुँह सूंघा, हाथ सूंघा, कपड़े देखे, कोई प्रमाण नहीं साबित हो सका जिसके बदले उनको चोरी का अभियोग लगाया जाय। आप हँसते हुये बाहर निकल आये एवं बड़े चाचा जी ने भी खूब शाबाशी दी ऐसे सुशील स्वभाव के लिये। इनकी बुद्धि की सराहना प्रत्येक व्यक्ति करते थे। स्वभाव अत्यन्त ही मिलनसार था। बड़ी जल्दी ही सबको अपना सुहृदय बना लेते। आप लड़कियों के मध्य की नायिका तो बने ही रहते थे। साथ में प्रिय भी बने रहते थे। जो गुण वर्तमान में दृष्टिगत होता है वह बचपन में ही था।

संयुक्त परिवार होने के कारण परिवार में ५०, ६० बच्चे थे। बच्चों की रसोई अलग बनती थी। सब बच्चों को एक कतार में बिठा दिया जाता था एवं ब्राह्मणी सबको भोजन परोसकर खिला देती थी। रसोई घर में केवल दाल, चावल, भाजी आदि ही दी जाती थी, घी आदि सब बच्चे अपनी-अपनी माता के पास से ले आते थे। महाप्रभु जी तो प्रारम्भ से ही बुद्धिमान थे, वह अपना घी माता जी से कटोरी में लेकर जाया करते थे। माता जी कभी-कभी

कहती थीं कि हाथ में ही ले जाओ क्योंकि शुद्ध घी मक्खन से भी कड़ा रहता था। सर्दी में तो यहाँ उत्तर प्रदेश में भी घी जम जाता है। किन्तु यह मचल जाते, लेकिन विना बर्तन के घी नहीं लेते थे।

आपके बराबर का ही एक चचेरा भाई था। वह वड़ा चंचल एवं उग्र प्रकृति का था। वह सदैव महाप्रभु जी से स्पर्धा रखता था। भोजन के समय में भी वह इन्हीं के वगल में इन्हीं की पंक्ति में बैठता था।

एक दिन भोजन वनने में कुछ विलम्ब हो गया। बालक नित्य के समय से आकर पाक-गृह में बैठ गये थे। वह हठी उग्र बालक हाथ में घी लिये हुये प्रभु के वगल में ही बैठा हुआ था। भात खाने में अधिक विलम्ब हो जाने से बालक के हाथ का घी हथेली की उष्णता पाकर नीचे से चूता जाता था। ८, ९ वर्षीय चिल्लविल्ला बालक, उसने घी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जब रसोई तैयार होकर आ गई तब सब बच्चों ने अपने-अपने भात में घी डाल लिया। उस बालक के घी को पहले ही पृथ्वी माता पी चुकी थीं। जब उसने अपने घी को नहीं देखा और प्रभु की थाल की ओर दृष्टि डाली तो आपके भात में घी तैरकर वह रहा था। बस अब क्या था? उस ईर्षालु उधमी बालक ने हल्ला मचाना प्रारम्भ कर दिया एवं माँ से झगड़ने लगा। उस बच्चे की माँ बच्चे का कोलाहल सुनकर रसोई घर में दौड़ कर आई। उन्होंने देखा बालक अपनी मूर्खता के कारण सबके साथ व्यर्थ में झगड़ा कर रहा है। उसकी माँ ने उसके ऊपर थप्पड़ की वर्षा करना प्रारम्भ कर दी। उपद्रवी बालक और भी मचल उठा। जोरों से हुंकार मारकर चीखने लगा। यह बात दादी जी के कान तक पहुँची। दादी जी अपने तख्ते को छोड़कर बच्चों के रसोई घर में पहुँचीं। वहाँ बच्चे की ऐसी दशा देखकर बच्चे को अपने 'वस्त्र' (राजशाही लहंगा) के अन्दर छिपा लिया।

उस दिन से प्रभु सदैव उस बालक से दूर बैठते थे। यदि वह उधमी पास में आकर बैठ भी जाता तो वह दूसरी जगह उठकर चले जाते थे। क्योंकि आपको लड़ाई झगड़ा व व्यर्थ का रोना गाना पसन्द नहीं था। किसी वस्तु के लिये फैल मचाना अपनी शान के विरुद्ध समझते थे।

आपके वाल-चापल्य में मधुरिमा थी, गम्भीरता थी, सरसता थी। उग्र प्रकृति के उधमी बालक के सदृश नहीं थे। इनके प्रत्येक कार्यों में मोहकता थी। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि आदि-शक्ति होकर अवतीर्ण हुये थे इसीलिये उनमें अद्‌भुत आकर्षण शक्ति थी और उसी प्रकार का कर्म होता था।

एक दिन की बात है, प्रभु को जरा सी भी निद्रा नहीं आ रही थी। माता जी ने फुसलाकर जबरदस्ती इनको सुला दिया। इनको नींद तो आई नहीं रही थी। इधर उधर से करवटें बदलते रहे। ज्योंही माता जी को झपकी लगी आप आहट न देकर धीरे से बाहर निकल गये। इधर उधर देखते रहे, सोचते रहें क्या करूँ, क्या न करूँ। इतने में उन्हें भंडार घर में खटखट की आवाज सुनाई पड़ी। आप उधर की ओर ही मुड़ गये। वहां जाकर देखते हैं कि भंडार घर में एक नाली का छेद है उसी में से छोटे-छोटे चूहे वार-वार बाहर निकलकर आते हैं एवं फिर भंडार घर में घुस जाते हैं।

आप उसी नाली के समीप बैठ गये एवं चूहों के कौतुक को बड़ी ही उत्कंठा से निहारते रहे। वहीं रसोई घर में एक नौकरानी बैठी हुई बर्तन मल रही थी। वह भी कुछ मसखरी सी थी और आपकी ओर उसका आकर्षण था। इनके भोले-भाले मुखड़े को ऐसे कौतुक से चूहे को देखते हुये देखकर हँस पड़ी और प्यार से बोली, चूहे को पकड़िये। उस दिन चूहा पकड़ में न आने के कारण अब आपका नित्य का यही कौतुक हो गया कि जहाँ माता जी को नींद आई, आप चुपके से श्रीचरणों को दबाते हुये धीरे से निकल कर पाकगृह में पहुँच कर चूहों के कौतुक को देखते रहते और उनको पकड़ने की चेष्टा करते रहते। एक दिन की बात है, आप चूहों को नित्य की तरह देख रहे थे। देखते-देखते आप नौकरानी से पूछने लगे कि क्या चूहे कम नहीं किये जा सकते ? देखो न यह कितने सारे चूहे हैं ? दिन भर यह ऐसे ही दौड़ते-दौड़ने थकते नहीं ?

नौकरानी ने कहा—कम क्यों नहीं किये जा सकते ? आप इन चूहों में से एक चूहे को पकड़ लीजिये तथा उसके गले में छोटी सी घंटी बांधकर लटका

दीजिये। जब चूहा भागेगा तब उसके साथ घंटी भी बजेगी। घंटी की आवाज से सब चूहे भाग जायेंगे।

उस समय आपकी ६ वर्ष की अवस्था थी। भोली-भाली सूरत थी। उन्होंने कहा—अच्छा! सच में।

अब उस दिन से आपको चूहे को पकड़ कर घंटी बाँधने की धुन चढ़ गई। दोपहर भर चूहे के गले में घंटी बाँधने की धुन में जुटे रहते थे। कभी चूहे की पूंछ पकड़ भी पाते तो गर्दन नहीं। चूहा हाथ में आ भी जाता तो गिलगिल लगने के कारण छूट जाता। कई दिन तक चूहे के गले में घंटी बांधने का अथक परिश्रम करने के बाद एक दिन सफलता मिल ही गई। चूहे के गले में घंटी-बांध ही दी। आपके नन्हें नन्हें हाथ। नन्हा सा चूहा। बड़ा ही लोगों को आश्चर्य हुआ। नौकरानी का खूब मनोरंजन हुआ।

जब माता जी आपको खोजते-खोजते आपके समीप पहुँचीं तो इस अद्भुत कौतुक और इनकी बुद्धि को देखकर उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। जो काम कोई भी न कर सके वह आपको करना अनिवार्य है। ऐसा कहकर चूहे के गले की घंटी खोलकर भगा दिया।

इसी प्रकार एक दिन आप अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। बहुत सारे छोटे बड़े बच्चे थे। कोई दौड़ता था कोई किसी को पकड़ता था। आपस में सब हिल-मिलकर मनोरंजन कर रहे थे। उसमें की एक बालिका इनसे अवस्था में कुछ बड़ी थी। उसने कहा, "हमने सुना है कि यदि बिल्ली को रात्रि में पकड़ कर किसी बर्तन में बन्द करके रख दिया जाय तो वह बुढ़िया बन जाती है।" पहले तो आपने विश्वास नहीं किया। जब उसने बहुत विश्वास दिलाया तब इन्होंने कहा, "अच्छा हम भी बन्द करके देखेंगे।"

अन्य खेलों से तो आपका मन बिल्कुल ही हट गया। आप दौड़कर घर में आ गये। कमरे में जाकर बैठ गये और बिल्ली की ही ताक में रहने लगे। कई दिन के निरंतर परिश्रम करने के पश्चात बिल्ली इनके हाथ में आ ही गई। कमरा आपने बन्द कर रक्खा था। बिल्ली ने बहुत दाँव-पेंच खेला, किन्तु इन्होंने तत्काल ही उसको टोकरी के अन्दर बन्द कर दिया एवं बड़ी जोर से

अपनी सफलता पर खिलखिला उठे मानो किसी राजा ने किसी राज्य को जीत लिया हो। ऐसे ही अपनी विजय पर मुस्कराते हुये माता जी के पास जाकर बैठ गये। माता जी इनके मुख-कमल को इतना खिला हुआ देखकर कुछ समझ नहीं सकीं। उन्होंने इन्हें खूब लाड़ पुचकार करके खेलने को भेज दिया। अब आपको कहाँ खेलना। वह तो बिल्ली की चौकीदारी करने लगे। बार-बार कमरे में दरवाजों के छेद से झांकते थे कि कहीं बिल्ली भाग तो नहीं गई।

रात्रि को भी आपको नींद नहीं आई। सारी रात्रि उसी बुढ़िया को देखने की जिज्ञासा में व्यतीत हो गयी। प्रातः सूर्योदय हो भी नहीं पाया था कि शीघ्र ही चारपाई से उठकर उसी कमरे में गये, जहाँ बिल्ली बन्द कर रखी थी। खुशी-खुशी से बिल्ली के ढकने वाली टोकरी को हटाया। बिल्ली डर के कारण सिकुड़ कर बैठी हुई थी। आपने तो सोचा था कि यह बुढ़िया होकर बैठी होगी।

इसी प्रकार इनकी अनेक हास्यप्रद लीलायें हैं जो बड़ी ही रोचक एवं बाल-सुलभ हैं। आपकी लीला दिव्य थी और उसको पढ़ने सुनने से पता लगता है कि यह कैसे पुरुषार्थी प्रवृत्ति के थे। उनकी सदा से यह धारणा रही कि जगत में क्या नहीं हो सकता? भोजन में दूध मक्खन आपको अत्यधिक प्रिय था। दाल, रोटी, भाजी आदि बहुत कम खाते थे। घी चीनी खूब खाते थे। डर तो कभी किसी से लगा ही नहीं।

एक दिन गाँव से एकदम ताजा बढ़िया घी नमूने के लिए आया था। मध्याह्न में एक साथी के साथ घूमते घामते आप भंडार घर में पहुँच गये। बढ़िया ताजा घी एक बर्तन में रखा देखा। अब आपको क्या था? करीब एक सेर घी को आपने खाकर समाप्त कर दिया। जब माता जी ने इनकी आश्चर्यजनक करतूत को देखा तब कहने लगीं कि आपने इतना घी कैसे खा लिया और यह कैसे पचेगा? कुछ जवाब न देकर आप बड़े जोरों से हंसकर भाग गये। ऐसे अनहोने कर्म करते थे। १० वर्ष के बालक ने १ किलो घी कैसे पचाया होगा। इनकी बाल-लीलाओं की कोई-कोई थोड़ी बातों का विवरण जो हमने प्रभु के श्रीमुख से सुना है उद्धृत कर दिया है जिससे सभी

भक्तजन भी हमारी ही तरह थोड़ी देर उनकी लीलाओं में मग्न होकर जीवन को सफल बना लें।

आपको पूजा, पाठ, साधू, ब्राह्मण बहुत अच्छे लगते थे। समझें चाहे न समझें जहाँ चार सज्जनों को परस्पर में वार्तालाप करते सुनते अथवा देखते आप भी खेलखाल सब कुछ छोड़कर बड़े समझदार ज्ञानी के सदृश आकर उस गोष्ठी में सम्मिलित हो जाते थे। कभी-कभी साथ की बालिकायें कह भी देती थीं कि आपको तो भाइयों, पिता जी, बड़े-बड़े विद्वान लोगों की ही गोष्ठी चाहिये मानो आप बड़ी भारी शास्त्र कीं ज्ञाता हों, किन्तु आप उन बातों को हंसकर टाल देते थे। वह अपने ईश्वर-तत्व का भेद किसको देते। उन लोगों को कुछ बतलाना और समझाना भी व्यर्थ था। भगवान कृष्ण पारब्रह्म थे। अपनी दिव्य लीलाओं को क्या नंद यशोदा को नहीं दिखलाया। लेकिन क्या वे उनको पहचाने ?

एक दिन की बात है, माता जी अपने पूजा के कमरे में बैठी माला जप कर रही थीं। इतने में खेलते-खेलते आप ऊबकर उनकी गोद में बैठ गये एवं माता जी की धोती हटाकर देखने लगे कि वे क्या कर रही हैं ? हाथ में माला हिलाते देखकर पूछने लगे कि माँ, आप मुँह से फुस-फुस कर क्या कह रही हो ? माता जी ने कुछ भी जवाब न देकर हंसकर प्यार करके उसको बातों में टाल दिया। यदि कोई भोला संसारी बालक होता तब तो हंस कर उनकी बातों में आता भी, आप क्यों बहकावे में आने वाले थे। आपके कई बार अनुरोध करने पर भी जब माँ ने बार-बार टालना ही चाहा तो आपको जिद्द पड़ गई।

बालहठ मचल उठे, माता जी से पूछा "बताइये आप माला में क्या जपती हो, नहीं तो हम आपको यहाँ से जाने नहीं देंगे एवं गोद में बैठे ही रहेंगे।" माता जी ने प्यार करके कहा--"बेटा, आप कितने भोले हो, गुरुमंत्र किसी को बताया नहीं जाता। हम राम-राम ही तो जपते हैं और क्या करतें हैं।' मुँह से जपते हैं या माला से गिन लेते हैं। आपकी तार्किक बुद्धि थी ही। पूछने लगे--"राम-राम क्या है ?" माता जी ने कहा--"भगवान का नाम है

और कुछ भी नहीं है।" किसी प्रकार उनके प्रश्नों का समाधान करके इनसे फुरसत पाकर अपने जप को पूर्ण किया।

प्रभु को उस दिन से सब खेल-खाल भूल गया। इधर उधर से झांकते रहते। जहाँ देखते कि पूजा के कमरे में कोई नहीं है, आप तत्काल ही पूजा के कमरे में घुस जाते एवं कमरा बंद करके राम-राम कहकर माला हिलाते रहते। कभी-कभी ऐसा हो जाता था कि पूजा के कोठे में जाने का मौका नहीं मिल पाता था तो आप किसी की भी माला उठाकर बाहर पर्वत की चोटियों में चले जाते थे एवं घंटों बैठकर राम-राम करते रहते। एक दिन की बात है, राम-राम करते आप उसी में इतने ध्यानस्थ हो गये कि आपको समय का पता ही न रहा कि कितना समय व्यतीत हो चुका है। भोजन का समय हो गया। सब बड़े एवं बच्चे भोजन कर चुके थे, किन्तु आपका कहीं पता ही न लगता था। सारे घर में खोज हो चुकी, लेकिन आपका कुछ पता न लगा कि आप कहाँ पर हैं। आप तो ध्यान लगाकर पर्वत की शिखा पर बैठे थे। सब नौकर नौकरानियाँ खोज कर परेशान हो गये, तब माता जी को बताया गया कि प्रभु का कहीं पता नहीं है। घबड़ाकर वह स्वयं खोजने निकलीं। खोजते-खोजते वह उसी पर्वत-शिखा पर पहुँच गई जहाँ पर वह ध्यानावस्थित थे। पहले तो उनकी लीला को देखकर उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ तत्पश्चात प्रभु के पास गईं एवं उनको ध्यान में देखकर उनकी माला लेते हुये कहा—"बेटा, क्या तुमको अभी तक भूख नहीं लगी? इतनी देर हो गई अभी तक मुँह में कुछ नहीं डाला।" बड़े प्यार से फुसलाकर उनको ले जाकर भोजन कराकर अपने पास लिटा लिया।

नारायण प्रभु बड़ी जिज्ञासु प्रकृति के थे। जिस बात को एक बार देख लेते हृदय में जानने की जिज्ञासा उठ जाती तो उसको लाख प्रश्नों के द्वारा शंका का समाधान करके ही छोड़ते। एक बार आपके यहाँ एक जादूगर आया था। उसने आश्चर्यजनक नवीन-नवीन प्रकार के कौतुक का प्रदर्शन किया। उसमें एक ऐसा था कि ताश की गड्डी के पूरे पत्ते जादूगर ने अपनी हथेली में ले लिये एवं चारों ओर उसको घुमाया किन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि

न तो उसके हाथ से ताश की गड्डी गिरती थी न एक भी पत्ता गिरता ।

महाप्रभु को यह खेल देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्हें इस खेल को जानने की प्रबल इच्छा हुई । आप पिता जी के पास गये और कहने लगे कि हम लोग यदि ताश की गड्डी हाथ में लेते हैं तो सारे पत्ते भूमि पर बिखर जाते हैं किन्तु यह लेता है तो क्यों नहीं गिरता । पिता जी इनके बालहठ से अनभिज्ञ नहीं थे । उन्होंने समझाते हुये कहा—"बेटा, यह तो जादूगर है, इसकी विधि तो वही जानता है ।"

आपने कहा—"आप उसको कहकर हमको सिखवा दीजिये ।" पिता जी ने प्रत्युत्तर दिया, "बेटा, वह अपनी कमाई की वस्तु को किसी को नहीं सिखायेगा । इसी से वह रोटी खाता है ।" किन्तु आप क्यों मानने लगे ? पिता जी की बात पर मचल कर रोना प्रारंभ कर दिया । पितृ का वात्सल्य प्रेम पिघल उठा । उन्होंने जादूगर को बुलाकर कहा—भाई तुम जो कुछ भी लेना चाहते हो ले लो, किन्तु मेरी बालिका की जिज्ञासा को पूर्ण कर दो । जादूगर अपने पेट की रोटी काटने को किसी प्रकार भी तत्पर नहीं हो रहा था । किन्तु जब इनको एकदम हठ पर अड़े हुये देखा तब उसका हृदय भी द्रवीभूत हो गया एवं इनका रोना देखा न जा सका और वह अपने रहस्य को इनसे छिपा न सका ।

कहते हैं "होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।" अथवा "पूत के पाँव पालने में दिखात हैं ।" प्रभु की विचित्र से विचित्र रसात्मक लीलायें हुआ करती थीं । शनैः-शनैः शैशवावस्था का अंत होकर यौवनावस्था प्रवेश करने लगा । प्रभु ११-१२ वर्ष के होने लगे थे । किन्तु आपको इस बात का लेशमात्र ज्ञान नहीं था कि मैं नारी हूँ एवं बड़ी होने लगी हूँ । उनमें वही बाल चपलता एवं सरलता विद्यमान थी । आपका लावण्य और भी निखर उठा किन्तु सरलता और सहजता ज्यों की त्यों बनी रही ।

सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों को धारण करने का अत्यंत ही शौक था । शृंगारप्रिय थे, सदैव अपने को एक से एक सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित किये रहते थे एवं शृंगारपूर्ण रूप से रहते थे । उनका आनन्दमय जीवन था ।

दुख नाम की वस्तु से अपरिचित थे। माता-पिता वात्सल्य स्नेह के झूले में झुलाया करते थे। घर परिवार, पास-पड़ोस को अपने बच्चों से अधिक प्रिय थे। कोई भी अपने गृह में किसी नवीन खाद्य पदार्थ को बनाता तो प्रभु को अवश्य ही भेजता या बुलाता था। आपका स्वभाव अत्यन्त ही हंसमुख एवं प्रेम-स्वरूप था।

जहाँ भी आप रहते वहाँ की आसपास की लड़कियों से घिरे रहते। आपके घर में भी बहुत सी बहनें एवं भतीजियाँ भाभी थीं, उन सबमें आप प्रधान माने जाते थे। सब पर इन्हीं का शासन था। सारी लड़कियाँ इनको हृदय से प्यार करती थीं। कोई भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती थीं।

एक दिन एक लड़की से आपने कोई काम करने को कहा। उसने मना कर दिया। आपने कहा—"यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं करोगी तो तुम्हें जो कुछ भी क्रोशिये का काम आता है सब भूल जाओगी।" बालिका ने आपकी बात का कुछ भी ध्यान नहीं दिया। दूसरे ही दिन जब वह क्रोशिये का फूल बनाने बैठी तो उसको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वास्तव में वह फूल बनाना भूल गई।

आपको संगीत प्रिय था अतएव हिमालय की तराई में प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त कुछ नहीं था। वह दिनभर वहीं ग्रामोफोन बजाती रहतीं। उसको ही अपना साथी बना रक्खा था।

आप प्रकृति की प्रेमी थीं। स्वाभाविक दृश्य उस पहाड़ी प्रदेश में बहुत पाया जाता है। आप झुंड की झुंड साथियों को लेकर पहाड़ियों पर चढ़ जाया करते थे एवं किसी शिला पर आसीन होकर प्राकृतिक सौन्दर्य से मनोरंजन किया करते थे। कभी-कभी ऐसा होता था कि प्रकृति के सौन्दर्य को निहारते-निहारते शक्ति देवी महामाया महाप्रभु उसी में विलीन हो जाते, बहुत देर पश्चात् चेतना आती। कभी-कभी पहाड़ियों पर साथियों के साथ आँखमिचौनी खेलते थे। ऐसी त्रिविध प्रकार की रचना रचा करते थे।

घंटों-घंटों पहाड़ियों पर आसीन होकर साथियों के साथ मनोविनोद

करते रहते थे। घने समूहों से आच्छादित लतायें, झरने एवं कुंज आपके प्रिय साथी थे। पुष्पों को निहारते हुये आपका हृदय-सौरभ खिल उठता था। पुष्पों के सुन्दर-सुन्दर हार बनाकर प्रभु को चढ़ाया करते थे। प्रभु का पूजन करते-करते आप पूर्ण रूप से ध्यानावस्थित हो जाया करते थे। शरीर का भान ही न रहता था। जव साथीगण ऐसी अवस्था को देखते तो भगवान के नाम का गायन करके सुध में लाते थे। ईश्वर के प्रति आपका स्वाभाविक आकर्षण था। कृष्ण भगवान आपके इष्ट देवता थे। उनकी पूजा, लीला, भजन गुणगान आदि से हार्दिक स्नेह एवं प्यार था। जव भगवान का पूजन करने को मिल जाता था तो आपको भोजन की भी सुधि नहीं रहती थी। माता जी को जिस व्रत को रखते हुये सुन लेते आप भी उसी व्रत को रखते थे। बड़ी ही निष्ठा से व्रत का पालन करते थे। किसी-किसी व्रत में दिन-दिन भर जल भी न ग्रहण करते। सव लोगों के आग्रह करने पर भी अपनी निष्ठा पर अटल रहते। घर में सत्यनारायण की कथा या अन्य कोई अनुष्ठान या पूजा होती तो उसको बड़ी ही निष्ठा से व्रत रखकर पालन करते। कई दिन तक जल भी न पीने को दिया जाता तव भी आपको स्मरण न रहता कि कुछ आहार भी करना है। माता जी तथा अन्य साथीगण परम प्रेम एवं हठ से भोजन कराते थे। कभी-कभी सव साथियों को लेकर उद्यान में चले जाते अथवा पहाड़ियों पर चढ़ जाते थे। सव साथियों से परस्पर मिलकर अनेक रंग-विरंगी वातें किया करते। सव अपने-अपने मन की वातें करते किन्तु उनके मध्य में आपकी वातें सवसे अनोखी एवं सरस होती थीं, उनमें संसार की लेशमात्र भी गंध न होती थी।

इनकी भावना परम पवित्र, उच्च एवं ईश्वरीय भाव से पूर्ण होती थी।

आप कहते, "हम एक वहुत सुंदर महल वनवायेंगे, उस मंदिर के अंदर भगवान श्यामसुंदर को स्थापित करेंगे, उनकी सुंदर सी झाँकी वनायेंगे जिसके दर्शन मात्र से हृदय में एक अपूर्व शांति का अनुभव होगा। हम उस मंदिर के मुख्य मालिक वनेंगे, खूब दान दया परोपकार करेंगे। सवकी आत्मा में प्रेम जागृत करेंगे। जव भगवान हमें दर्शन देंगे तव तुम लोगों को भी उनके दर्शन करायेंगे।"

अपने साथी के मुख से ऐसी अलवेली वातों को सुनकर सबकी सब खिल खिला कर हँस पड़तीं।

वाल्यावस्था से ही आपकी धार्मिक प्रवृत्ति थी। यद्यपि थे शृंगारप्रिय एवं शौकीन थे किन्तु धर्मनिष्टा थी। बिना स्नान करे आप मुंह में जल भी न डालते थे। हिमालय की शीत में भी नित्य प्रातःकाल स्नान करते। तत्पश्चात प्रभु के संमुख बैठकर पूजा करते, सूर्य को जल देते। भाभी लोगों को धर्म-कर्म करने की प्रेरणा देते थे।

आपकी पुरुष प्रकृति थी। नारियों के संग बैठना आपको रुचिकर नहीं था। पुरुषों के सदृश वीरता की वातें करते थे। अनहोनी कर्म करने का सदा चाव वना रहता था। किसी कार्य को हम नहीं कर सकते ऐसा कहना आप शर्म की वात समझते थे।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण आपकी शिक्षा का कोई उचित प्रवंध नहीं था। माता पिता प्राचीन विचार के रूढ़िवादी थे। यदि पाठशाला में भरती करना चाहते, तो प्रभु की शिक्षा का बहुत सुंदर प्रवन्ध हो सकता था एवं बौद्धिक विकास भी विलक्षण होता, किन्तु प्रभु के हठ करने पर भी पिता जी ने अपनी आदर्शवादिता की धारणा का उल्लंघन नहीं किया और कहा नारी को शिक्षा देना हमारे धर्म के विपरीत है। प्रभु घर पर ही वड़े भाइयों से ही अध्ययन करने लगे। पढ़ने लिखने की ओर आपकी तीव्र प्रवृत्ति एवं इच्छा थी। मझले भ्राता प्रभु को बहुत प्यार करते थे। वह अंग्रेजी एवं हिन्दी, नेपाली की शिक्षा स्वयं ही देते थे। प्रभु की वुद्धि वड़ी ही तीक्ष्ण थी। वह जो कुछ भी एक वार वता देते थे आपको तत्काल स्मरण हो जाता था। पुनः उसको पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। भूली हुई वस्तु को जैसे कोई एक बार स्मरण करा दे। उसी प्रकार का अध्ययन था।

आपके शिक्षा-गुरु मझले भाई साहव लेखन शैली पर विशेष ध्यान आकृष्ट करते थे, अतः आप रात्रि भर लेखन शैली का ही अभ्यास करते थे।

इनके इस अथक परिश्रम एवं लगन को देखकर भाई साहव बड़े ही प्रफु-ल्लित होते थे। मास्टर साहब बच्चों को पढ़ाने आया करते थे। सब बच्चों

में सर्व-प्रथम आप ही उत्तीर्ण होते थे। आपकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर सब ही हैरान हो जाते थे। एक बार समस्त परिवार कलकत्ते घूमने के लिये गया था। संध्या का समय था। सब घूमकर आ रहे थे। मार्ग में इन्होंने कुछ लड़कियों को किताबें लेकर आते देखा। आप हृदय में समझ गये कि यह लोग कहीं से पढ़कर आ रही हैं, किन्तु फिर भी भइया से पूछा, "यह लोग किताब लेकर सड़क में क्यों चल रही हैं।" भइया ने कहा, "पाठशाला से पढ़कर आ रही हैं।" आपने सुअवसर जानकर कहा, "यह लड़कियाँ मुझसे तो अवस्था में बहुत अधिक बड़ी हैं। जब यह लोग अकेले पाठशाले में पढ़ने जा सकती हैं तब आप लोग मुझको क्यों नहीं जाने देते।" ऐसा कहकर आपके नेत्रों में जल भर आया।

यह प्रसंग पिता जी के संमुख भी उपस्थित किया गया। प्रभु ने पिता जी को बहुत कुछ आश्वासन दिया कि मेरे द्वारा कोई भी ऐसा कर्म न होगा जो आपकी मान-मर्यादा को भंग करेगा। आप केवल मुझे पढ़ने के लिये यहाँ छोड़ दीजिये, किन्तु पिता जी ने अपनी मर्यादा का परित्याग करना उचित नहीं समझा। अतः यह प्रस्ताव ज्यों का त्यों स्थगित कर दिया गया। प्रभु को उस समय बहुत ही खराब लगा। दस ग्यारह वर्ष का बालक क्या अनर्थ करेगा। लेकिन आत्मवादी के सदृश छोटी-छोटी बातों को मन में नहीं लेते थे। ज्यों की त्यों प्रसन्न होकर घूमने लगे और घर में शिक्षा लेकर बड़े-बड़े पढ़ने वाले लड़कों को हरा देते थे।

मझले भ्राता ने ही आपको घोड़े पर चढ़ना, सायकिल चलाना, बंदूक चलाना आदि सिखाया था। वह प्रभु को सबसे छोटा भाई मानते थे। प्रभु में स्वाभिमान की मात्रा तीव्रतम रूप से विद्यमान थी। आपको किसी के पीछे-पीछे पिछलगुआ बनना रुचिकर नहीं था। वर्तमान उपस्थित परिस्थिति में यदि आपकी कोई आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती थी तो तत्काल ही उसको भविष्य में पूर्ण करने का निश्चय कर लेते थे।

एक बार की बात है, सूर्यग्रहण पड़ा हुआ था। परिवार के सभी प्राणी ग्रहण स्नान करने के लिये अरुण कोसी नदी में जा रहे थे। नदी इनके निवास-

स्थान से कुछ दूर पर थी अतः परिवार के कुछ लोगों को, जो वृद्ध थे, चलने में असमर्थ थे, पालकी में बैठाया गया एवं कुछ लोगों को घोड़े पर। आपकी प्रवल आकांक्षा थी कि मुझको भी घोड़े पर बैठा दिया जाय। किन्तु पहाड़ी स्थानों पर सवारी का अभाव होता है। जो कुछ सवारियाँ उपलब्ध थीं वह भर गईं। अतः दो तीन व्यक्ति रह गये। जिनको इस आशा से कि यदि आगे किराये के घोड़े मिल जायेंगे तो शेष लोगों के लिये कर लिये जायेंगे। उन पैदल चलने वालों में प्रभु भी थे। जब उन्होंने देखा कि मुझको भी घोड़े पर नहीं चढ़ाया गया तब आप तत्काल ही बोल उठे, "अभी आप लोग हमको घोड़े पर नहीं बैठाते हैं तो मत बैठाइये—बच्चे होने के कारण आप लोग हमें नहीं बैठाते हैं। हम बड़े हो जायेंगे तो अपने पुरुषार्थ से घोड़े लाकर उस पर चढ़ कर नदी स्नान करने जायेंगे। हमें किसी के घोड़े पर बैठना पसंद नहीं है। हम अभी पैदल ही चलेंगे। जब घोड़े खरीद लेंगे अपने पैसे के तब सबको दिखलायेंगे।

अपनी चंचलता के कारण एक वार महाप्रभु जी घोड़े से गिरने से भी बच गये थे। आपके निवास-स्थान से एक जंगल को पार करके आपके चाचा जी का गृह था। परिवार के कुछ प्राणी चाचा जी के यहाँ जाने की तैयारी कर रहे थे। घोड़े, पालकियाँ आदि सवारी बाहर खड़ी थीं। आप तैयार होकर शीघ्र ही बाहर गये और जो घोड़ा देखने में सबसे अच्छा था उसी पर आसीन हो गये। आपको ठीक से घोडा चलाना नहीं आता था, केवल शौक मात्र था। बच्चे तो थे ही, ज्योंही आप घोड़े पर बैठे त्योंही वह इतनी तीव्रतम गति से भागा कि आपको जीन एवं लगाम पकड़ने की भी सांस न लेने दी। बड़े बड़े वृक्षों को, गड्ढों को, खाइयों को उलांघता हुआ दौड़ता ही गया। आपके बदन में काटो तो खून नहीं। करें तो क्या करें ? आप निर्भीकता से उसकी पीठ से चिपक गये और सोचा जहाँ ले जाना होगा भगवान को वहीं यह घोड़ा ले जायेगा, क्योंकि यह भी नहीं पता था कि यह कहाँ जा रहा है। घोड़ा अपने ही वेग में दौड़ रहा था, यदि बड़े-बड़े घुड़सवार लोग पीछे भी होते तो उसको रोक न पाते।

किन्तु ईश्वरीय कृपा थी। वह घोड़ा चाचा जी का ही था। अतः दौड़ते-

दौड़ते १० मील के पश्चात् वह चाचा जी की कोठी के संमुख जाकर रुक गया। लगाम टूट गयी। केवल काँटी पकड़कर चिपके बैठे थे। चाचा जी वाहर ही खड़े थे। अपनी लाड़ली मैंय्या साहव (वचपन का नाम) को जव इस तरह व्यस्त देखा तव वह दौड़कर गये और प्यार से उतार कर पूछा, और सव लोग कहाँ पर हैं ? तुम अकेले ही सवसे पहले कैसे आ गई।

तव अपनी वात नीची न हो सोचकर कहा, "वड़ी खराव नस्ल का घोड़ा है। हम तो ठीक से वैठ भी नहीं पाये थे कि यह तो भाग निकला।" चाचा जी हंस पड़े। स्नान आदि कराकर अच्छी-अच्छी वातें सुनाकर इनके हृदय से उस घटना का विस्मरण कराया।

आपको विचरण करने का वड़ा शौक था। ४, ५ मास से विशेष एक स्थान में रहना रुचिकर नहीं था। जहाँ २४ मास एक स्थान पर व्यतीत हो जाते पिता जी से दूसरे स्थान पर जाने के लिये आग्रह करने लगते थे। तीर्थों में जाना, मंदिरों में जाना, समुद्र की जगह में जाना मन को भाता था। अव प्रभु लगभग १३, १४ वर्षों के हो गये, स्वास्थ्य वहुत ही अच्छा था। गौर वर्ण सुन्दर सुडौल गठन था। सदैव प्रसन्नता चेहरे से टपकती रहती थी। भक्ति एवं सत्संग का कोई सहवास न प्राप्त करने पर भी उनके अंतःकरण में स्वतः ही भक्ति-तत्व का प्रादुर्भाव था। जहाँ भी मंदिर देखते थे अथवा ज्ञान-चर्चा करते सुनते थे, आप तत्काल वहाँ पर बैठ जाते एवं ज्ञान की वातें सुनने एवं समझने का प्रयत्न करते, मानों वह इन सव चीजों से अनभिज्ञ नहीं हैं। वल्कि उसको और विस्तृत रूप से समझना चाहते हैं।

आपके निवास-स्थान से दो-तीन मील के अन्तर पर रामचन्द्र जी ने जहाँ पर धनुष तोड़ा था, धनुषा नामक तीर्थ-स्थान था। यह अत्यन्त ही रमणीक एवं चिरस्मरणीय तीर्थ है। इस स्थान पर प्रभु राम ने सीता स्वयंवर के समय धनुष तोड़ा था। यहाँ पर एक प्राचीन पीपल का वृक्ष है, उसके नीचे वर्तमान में भी प्राचीन धनुष पाषाण होकर धनुषाकार रूप में अंग-भंग होकर अव भी प्राचीनता का परिचय दे रहा है।

धनुषा से कुछ दूर पर कमला जी नदी प्रवाहित हो रही है। नदी के पास

एक चीसो पानी का झरना है जो आपको अति प्रिय था। नदी के दूसरे तट पर बहुत सुन्दर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं। आप वहीं जाकर खेला करते थे। पहाड़ी के ऊपर पाषाण रूप में कामधेनु गऊ है। कहते हैं जो उस कामधेनु गऊ का दर्शन कर लेता है उसकी समस्त मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं।

धनुषा में गाय का दूध, घी, खोआ, बहुत मात्रा में पाया जाता है। पहाड़ियों के ऊपर असंख्यों साधु, सन्त, ऋषि, मुनि लोग साधना एवं तपस्या करते थे। वह लोग अन्न नहीं खाते थे, केवल दही, दूध, घी का ही उनका आहार होता था, आपको साधु संतों से परम प्रेम था। जब आप उनके पास जाते तो वे सब भी इनसे आकर्षित होकर इन्हें प्रसाद रूप खोवा या पेड़ा देते। प्रभु को वह स्थान अत्यन्त ही प्रिय था। वह विशाल पीपल का वृक्ष देखते ही उसमें ही तन्मय से हो जाते थे। धनुषा में पहुँचते ही आपके हृदय की भावना ही परिवर्तित हो जाती थी एवं इनको ऐसा लगने लगता था कि यदि यहीं रहने का सुअवसर प्राप्त होता तो कितना अच्छा होता। वृक्ष के तले बैठ कर आत्म-विभोर हो जातें। वहाँ से जाना ही नहीं चाहते थें।

उन दिनों पिता जी रघुनाथपुर में ही ३ जिले के पदाधिकारी थे। रघुनाथ-पुर से ५, ७ कोस की दूरी पर जनकपुर है। यह जनकपुर विदेहराज, राजा जनक की राजधानी रह चुकी है। वर्तमान में भी उसमें प्राचीनता की वैभवता अवशेष है। यह एक ऐसा पवित्र स्थान है कि स्वतः ही वहाँ पर पहुँचतें ही हृदय की वासना का लोप हो जाता है एवं हृदय में ज्ञान वैराग्य की उत्पत्ति होने लगती है। यहाँ पर सीता राम जी का एक विशाल एवं सुन्दर देवालय है। इस मन्दिर के द्वार पर प्रवेश करते ही हृदय में शान्ति का सा आभास होता है। मन्दिर के चारों ओर एक सुन्दर बाग है जो प्रकृति के सौन्दर्य के बोझ से लदा हुआ है।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक विशाल मन्दिर हैं। पीपल के घने-घने विशाल वृक्ष अपनी प्राचीनता का संदेश देते हैं। प्रभु को ऐसे स्थान बहुत ही प्रिय एवं हृदयस्पर्शी लगते थे। इन स्थानों पर पहुँच कर आप उसी में विलीन हो जाते थे। अत्यन्त श्रद्धा भक्ति के सहित प्रभु को पुष्प चढ़ाते, धूप दीप करके

प्रणाम करते थे। आपका हृदय ऐसे रमणीक स्थान को त्यागने के लिये परवश हो जाता था। भगवान रघुनाथ के प्रति प्यार होने से या उनका अपना ही निज स्वरूप होने से इस स्थान पर पहुँचते ही आपका स्वरूप ही बदल जाता था मानो पूर्व स्वरूप का स्मरण हो आता था।

नारायण प्रभु की पुरुष प्रकृति होने के कारण घरेलू काम-धन्धे में इनका मन बिल्कुल नहीं लगता था। घर में औरतों के पास बैठ कर इधर-उधर की गप कभी अच्छी नहीं लगती थी। घर में त्यौहार आदि पर समस्त परिवार एक दूसरे के यहाँ आते-जाते, बात करते, किन्तु यह इन सब नकली व्यवहारों से दूर रहते थे। एक दिन श्राद्ध था, इनके घर में परिवार के अनेक सम्बन्धी आये हुये थे। आप कमरे में बैठे हुए पुस्तकें पढ़ रही थीं। बड़े भैया ने आकर कहा—बाहर सब सम्बन्धी लोग आये हैं और आप यहीं विराजे हैं, वहाँ जाकर उन लोगों से बातचीत करो। प्रभु ने तत्काल कहा—मुझसे संसारी प्रपंच की बात नहीं हो सकती। उन औरतों से मैं क्या बात करूँ? भैया ने कहा सबको औरत बताती हो। मानो आप तो पुरुष हो। अभी हम लोग होते और बातचीत करते तो झट से आकर बैठ जातीं। जहाँ राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषय के बारे में बात करते सुन लेते थे तत्काल वहाँ जाकर आसन जमा लेते थे। आपने कहा—और क्या? हम क्या आपसे छोटे हैं, हमको आप औरत समझते हैं। आपकी इस प्रकृति से कोई भी अनभिज्ञ नहीं था।

भाई लोग पिता जी से कहते, आप तो बहिन को कुछ भी नहीं कहते। और भी उसको लाड़ कर-कर के सिर पर चढ़ाते हैं मानो वही तो आपका लाड़ला पुत्र है। इतना ज्यादा सिर पर चढ़ाना उचित नहीं। किन्तु आप सब सुनकर भी किसी को कुछ भी नहीं समझते थे। जो मन आता था वही करते थे। सत्य के पीछे पिता जी से भी तर्क करने लग जाते थे। व्यर्थ में डाटना, गाली देना, इन पर अधिकार प्रदर्शन करना इनको अत्यधिक खलता था। एक बार आप भाभी के कमरे में खड़ी-खड़ी भाभी से कुछ बातें कर-कर के हँस रहे थे। पिता जी प्रकृति से बहुत ही अधिक मर्यादावादी थे। आप नौकर चाकर की तो परछाईं करना भी पसन्द नहीं करने देते थे। उनका भ्रम था छोटे जनों की संगति करने से

छोटी बुद्धि हो जाती है। सदैव अपने से बड़े एवं बुद्धिमान जनों की संगति करनी चाहिये। चरित्र पर संगति का असर शीघ्र ही पड़ता है।

संगत करे साधु की, दिन दिन होय सुपूत।
संगत करे असाधु की, दिन-दिन होय कुपूत।।

इसीलिये नौकर चाकर के अतिरिक्त भाभी लोगों की संगति करना, उनसे मजाक करना, हँसना, बोलना अरुचिकर था। अतः इनको भाभी के साथ हँसते देखकर पिता जी ने इनको बुलाकर कहा—'देखो इतना अधिक हँसना अच्छा नहीं होता। आप भाभी लोगों के साथ भी हँसती रहती हैं। आप जैसे समझ-दार यदि मर्यादा का पालन नहीं करेंगे तो अन्य कैसे करेंगे ?'

पिता जी ने यह वचन कुछ रोष में भरकर कहा था। प्रभु के लिये इतना कहना ही बहुत हो गया। उनसे कुछ न बोलकर वहाँ से उठकर एक कमरे में जाकर चारों ओर से पर्दा डालकर सो गये।

दिन भर से कुछ भी नहीं खाया। माता जी, भाभी लोगों ने बहुत कुछ समझाया। किन्तु आपने प्रत्युत्तर में यही कहा यदि मैंने कोई अनर्थ किया होता तो वह डाँट सकते थे। व्यर्थ में क्यों बिगड़ते हैं। भाभी लोगों से भी न बोलूँ तो क्या दिवाल से बोलूँ। भाभी लोगों की संगति भी क्या बिगाड़ देगी। व्यर्थ का शासन क्यों करते हैं। यदि अनुचित कर्म हो तो कहना ठीक है।

पिता जी भी कठोर ही थे। प्रभु को चिढ़ाने के लिये उन्होंने भोजन बनाने वाली से कहा—देखो, छोटे भैया साहब आयें तो तुम सब खाना खत्म कर देना। हम भी देखते हैं कितने दिन भूखी रहती हैं। इतना सुनकर आपकी और जिद्द चढ़ गई।

भोजन तैयार भी न हो पाता, आप सबसे पहले रसोई में पहुँचकर घी, चावल, चीनी, दूध चावल जो कुछ तैयार मिल जाता था खाकर जल्दी से उसी कमरे में आकर सो जाते। जिस समय अन्धकार रहता था सब सोये रहते थे उसी समय उठकर स्नान कर लेते और ध्यान लगाकर बैठ जाते। अनासक्त योगी के लिये क्या था ?

जब पाँच छः दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये तब पिता जी दिना मिले

बेचैन हो गये, स्वयं हार कर आये एवं कहा बेटी तुमको क्या हो गया है ? हमने तो भविष्य के लिये हितकारी बात कही थी। आपको ऐसा करना हम लोगों के लिये भी दुःखदायी हो गया है। आप से बिना मिले हम भी बेचैन हैं।

प्रभु ने कहा—जो आपने कहा था वही तो हो रहा है। आपने ही तो कहा था कि किसी का साथ न करो न किसी से बोलो। इसलिये अकेले में बैठे रहते हैं जिससे कि कोई मेरी परछाईं भी न देख सके। हमको क्या करना है, हमारे भगवान हमारे साथ हैं उन्हीं के ध्यान में बैठे रहते हैं, आपकी आज्ञा का पालन हो रहा है। पिता जी का हृदय रो पड़ा और अपने हृदय से लगा लिया।

कहावत है, जैसा भविष्य में होने वाला होता है वैसा ही बन जाता है। नारायण प्रभु के साथ यह कहावत सत्य प्रतीत होती है। आप घर में जब देखती थीं कि इधर उधर कोई नहीं है, मर्दानी धोती पहिन लेते थे एवं बालिकाओं के मध्य में आसीन हो जाते थे, सब लोग मिल कर उनसे खूब मजाक करते थे एवं यह सब पर अपना अधिकार दिखाते थे। एक दिन इसी प्रकार मर्दाने वेष में अपनी साथियों में खेल रहे थे, इतने में पिता जी बाहर से अचानक आ गये एवं इनके कमरे में पहुँच गये।

इनकी ऐसी लीला को देखकर माता जी से जाकर कहने लगे—मुझे इस कन्या के लिये बड़ी चिन्ता रहती है। यह ससुराल में जाकर कैसे रहेगी ? पता नहीं कैसा घर इनके भाग्य में है ! यह बच्चों को कैसे पालेगी। इतना सुखमय स्वतन्त्र इसका जीवन है। भविष्य में विधाता ने पता नहीं क्या इनके भाग्य में लिख रक्खा है ?

पिता जी ने एक दिन आपकी परीक्षा लेने के लिये कहा कि बेटा ! आप अपने को बहुत बहादुर समझते हैं, यदि आपको कटिहार से मौजे रघुनाथपुर तक भेजें तो क्या आप समस्त परिवार को साथ लेकर जा सकोगी ? प्रभु ने इस कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा, क्यों नहीं कर सकते ? मनुष्य क्या नहीं कर सकता। अपने मौजे से अपने निवास-स्थान तक मालगुजारी के रुपये एवं परिवार की माताओं तथा बच्चों को लेकर सकुशल बिना किसी भय अथवा कमजोरी के पहुंच गये। रात्रि में एक जंगल में पड़ाव भी डालना पड़ा,

किन्तु आपने बड़ी हिम्मत एवं दक्षता का परिचय दिया। इनकी बुद्धि की कुशलता और कार्यदक्षता को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। नौकर चाकर आदि सब इस कार्य की सराहना करने लगे।

कभी-कभी भाई लोगों की अनुपस्थिति में आप जमींदारी के सारे कागज-पत्र अपने पास ही रखते थे। पिता जी को तो सरकारी काम से अवकाश नहीं मिल पाता था कि जमींदारी की देखभाल करें, ऐसी अवस्था में आप ही एक हजार बीघा जमीन की देखरेख करते थे। काश्तकारों से रुपया वसूल करना, मालगुजारी जमा करना, बही लिखना आदि जितने कार्य होते सबको दक्षता के साथ छः मास तक यह कार्य किया था।

आपके चरित्र की विशेषता यह थी कि इन सब कार्यों को करते हुये भी यह निराले रहते थे, इन सब कार्यों में लिपायमान नहीं होते थे। थोड़े दिन तक उस कार्य को बड़ी दक्षता के साथ सम्पादन कर देते थे। किन्तु दो तीन मास के पश्चात् ही आपको उन कार्यों से विरक्ति उत्पन्न हो जाती थी। समय आने पर अपनी दक्षता का परिचय दे देते थे। किन्तु उसमें आसक्त न होकर जल में कमल के सदृश बाहर निकल आते थे। जब विरक्ति उत्पन्न हो जाती थी तब दूसरे के लाख प्रयत्न करने पर भी आप उस कार्य को नहीं करते थे। जैसे एक नाटककार एक नाटक में लाख रूप धर कर अभिनय कर लेता है किन्तु न अभिनय करने वाला पात्र ही होता है न उसके प्रति कोई ममत्व ही होता है। उसकी इच्छा आने पर वह जिस पार्ट को भी करने से मना कर देता है। उसको किसी अभिनय के प्रति कोई आसक्ति नहीं होती, यही गति इनकी थी।

यह प्रत्येक कार्यों के प्रति निराशी सन्यासी के सदृश थे। मन लगता था तब खूब खेल खेल लेते थे। हृदय में वैराग्य उत्पन्न होते ही एक वृक्ष के तले बैठ जाते थे। घंटों एक मुद्रा में बैठे ही रह जाते थे। मन आता था अपने कमरे के अन्दर घंटों वंशी बजाकर अकेले ही बैठे रहते थे, किसी साथी से सम्पर्क नहीं रखते थे। कभी-कभी ऐसा रूप धारण कर लेते थे कि डोलडाल भी साथियों के बिना नहीं जाते थे। विचित्र ही इनकी गति थी। पर्वत की चोटी पर चढ़ कर वंशी बजाते रहते। तालाब के किनारे एकान्त में बैठ कर सरोवर के जल

को निहारते रहते। कभी-कभी हा! श्याम, हा! श्याम, तुम कहाँ हो कह कर उदास हो जाते। किन्तु इनको कोई समझ नहीं पाता था। इनके चरित्र पर माता जी को आश्चर्य होता था। वह कहते थे वड़ी मनमौजी कन्या है, इसकी लीला ही निराली रहती है। पता नहीं कैसे यह गृहस्थ आश्रम चलायेगी। आपके यहाँ भोजन तो ब्राह्मणी वनाती थी किन्तु पिता जी के लिये एक तरकारी किसी घर के प्राणी को वनानी पड़ती थी। एक दिन ऐसा अवसर आ पड़ा कि पिता जी की तरकारी वनाने वाला कोई भी प्राणी नहीं वचा। सिर्फ शक्ति-स्वरूपा प्रभु ही थे। आपकी माता जी ने आपको बुलाया एवं वड़े लाड़-प्यार से समझाते हुये कहा—वेटा, पिता जी की एक तरकारी वनानी है, तुम वना लो और कोई वनाने वाला नहीं है। आपको रसोई का काम करना विल्कुल ही नहीं पसंद था। किन्तु पिता जी की वात न होती तो सम्भव था आप मना कर देते। विवशता वश पाक गृह में प्रवेश करना ही पड़ा। चूल्हे में अग्नि प्रज्वलित करने के लिये दो लकड़ी लगी हुई थी। लकड़ियों के मध्य में कुछ जले हुये कोयले अग्नि प्रज्वलित करने के लिये रखे हुये थे। आप वहाँ गये एवं अग्नि को मुँह से फूंकने लगे, किन्तु दो-चार जले हुये कोयले थे वह लकड़ी को पकड़ते ही नहीं थे कुछ और इंधन डालते तो शायद उसमें आंच पकड़ भी लेती, किन्तु आपने उसको वैसे ही छोड़ दिया। एक रुमाल में थोड़े से मकई के लावा लिये हुए थे वह उसी को खाने में लग गये। आधा घंटा व्यतीत हो गया, कोयला बुझने लगा। आपका ध्यान अग्नि की ओर गया तो अग्नि क्रमशः बुझ चुकी थी।

आपने अपने मुँह से तथा पंखें से खूब फूंका किन्तु अग्नि माता क्यों जलने लगी थीं। प्रभु ने दोनों लकड़ियों को चूल्हे में ही खूब पटका, रही-सही अग्नि भी बुझ गई। ८½ वजे रसोई घर में आये थे, १० वज चुके थे, अग्नि भी अभी तक प्रज्वलित नहीं हुई थी। आपने हँसते हुये दोनों लकड़ियों को जोर से वाहर फेंक दिया। लकड़ियाँ नीचे आकर सीढ़ी पर गिर पड़ीं। माता जी आवाज सुनकर पाक-गृह की ओर गईं। लकड़ियों को सीढ़ी पर पड़ी देखकर समझ गईं कि इन्हीं की सारी करतूत होगी। ऊपर जाकर देखते हैं कि चूल्हे के चारों ओर कोयला पड़ा हुआ है, चूल्हे में अग्नि का नाम नहीं है और आप बैठे हुये मकई

का लावा खा रहे हैं। माता जी ने पूछा– तरकारी बन गई? आपने लावा मुँह में डालते-डालते कहा—तरकारी कहाँ से बन जाती, आग जलाते-जलाते नाक में दम आ गया, सिर दर्द के मारे फटा जा रहा है, आप पूछती हैं तरकारी बन गई। हम तरकारी बनाने के लिये संसार में नही आये हैं, हमसे औरतों जैसा काम नहीं हो सकता।

इनकी ऐसी दशा देखकर माता जी समझ गईं कि मेरी यह कन्या गृह-कार्य बिल्कुल भी नही कर सकती। कभी-कभी उनको बड़ी भारी चिन्ता सी हो जाया करती थी। सोचती थी कन्या जाति है भगवान इसकी जिंदगी कैसे कटेगी। इनकी तो विचित्र-विचित्र लीला करने की प्रवृत्ति है, मर्दों जैसी बात करते हैं, घंटों एकान्त में बैठ कर कभी ध्यानस्थ हो जाते हैं, कभी बंशी बजाते हैं कभी ग्रामोफोन बजाते हैं। पुरुष वेष धारण करके साथियों को चिढ़ाते हुये उन पर अपना आधिपत्य दिखाते हैं। कभी साधु-सन्त पंडितों के मध्य में जाकर पुरुषों के सदृश उनकी बातें सुनती हैं। हे विधाता! तुम्ही इस मेरी लाड़ली कन्या के रक्षक हो।

ज्योंही पिता जी शिकार पर जाने के लिये तैयार होते आप कहते हम भी चलेंगे हमें भी ले चलिये। आप हिंसक पशुओ को कैसे मारेंगे, हम उनकी रक्षा करेंगे। उनके भी तो माता पिता हैं। एक दिन पास के रामपुर नामक ग्राम में एक चीता आ गया। ग्रामीण भाइयों ने लाठियों द्वारा उसको मारने का बहुत प्रयास किया किन्तु सब निष्फल रहे। इतने में आपके पिता जी के पास यह सूचना पहुचाई गई। पिता जी ने तत्काल ही हाथियों को बुलाया। एक में आप बैठ गये दूसरे में दोनों कन्याओं को बिठाया। आप दो बहिनें और छः भाई थे। प्रभु अपने पिता की आठवीं संतान थे। यथा समय घटना-स्थल पर दोनों हाथी पहुँच गये।

चारों ओर से ग्रामीण भाई उस चीते को घेरे हुए थे। चीता भय के कारण पेड़ से चिपक गया था। ज्योंही उसने नवीन आगन्तुकों को हाथी में बैठे देखा त्योंही भय के कारण वह और भी अधिक पत्तों के बीच में छिप गया। किन्तु पिताजी की एक ही फायर में वह भूमि पर आकर गिर पड़ा एवं उसके प्राण-

पखेरू उड़ गये।

उसको मरा हुआ देखकर असंख्यों बालक, युवक, वृद्धों की उसके पास भीड़ लग गई। कोई उसका नाखून काटने लगे। कोई बाल नोचने लगे। इसी प्रकार विविध प्रकार से विविध कार्यों के लिये लोग उससे चिपके हुये थे। (पहाड़ी प्रदेशों में चीते का बाल एवं नाखून बच्चों की बीमारी के काम में लाया जाता है)।

नारायण प्रभु हाथी में बैठे-बैठे ही बड़े गौर से इन सबके कृत्यों का निरीक्षण कर रहे थे। बड़ी बहन तो भय के कारण प्रभु की गोद में मुँह छिपाये हुये थीं। किन्तु आप निर्भीकता से बैठे बड़े ही साहस के साथ सबकी हाल चाल का अवलोकन करते रहे। इतने में पिता जी भी इनके समीप सब कार्यों से निवृत होकर आ गये। जैसे ही आपने पिता जी को पास में देखा जोरों से बोल पड़े—देखिये न पिता जी! जब यह चीता मर गया तब कैसे सब उसमें जुटे हुये हैं। मरे का मूँछ उखाड़ा तो कौन सी बहादुरी की बात है। यदि जिन्दे की मूँछ उखाड़ें तब इनकी बहादुरी है। अभी सब अपना-अपना कौशल दिखा रहे हैं। मनुष्य को सच्चाई से वीरता का काम करना चाहिये। दूसरे के उत्पन्न करे खेत को काटने में क्या बहादुरी है।

पिता जी इनकी ऐसी बात सुनकर हँस पड़े। पिता जी इनकी कुशाग्रता से अनभिज्ञ नहीं थे। सदैव ऐसी घटनायें हुआ करती थीं एवं आप बुद्धिमानी का परिचय दिया करते थे।

मझले भैया इनकी ऐसी बुद्धि को देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। वह इन्हें अपने साथ छोटे भाई के सदृश रखते थे। आप जब भ्राताओं को बन्दूक चलाते देखते थे तब प्रभु के हृदय में यह भावना उठती थी कि कैसे मूर्ख हैं यह लोग, दूसरों के ऊपर दया करनी चाहिये। वृथा दूसरों की जिन्दगी खत्म करते हैं यह लोग। दया से हृदय भरा रहता था। जब आप देखते थे कि कमरे के अन्दर कोई भैया नहीं है तब धीरे से उनके कमरों में चले जाते एवं बन्दूक निकाल कर छिपा देते थे। एक बार एक फकीर भीख मांगने आया। आप साथियों के साथ खेल रहे थे। फकीर पर दया आ गई। आपने अपनी अंगूठी उतार कर उसको दे

दी। सब देखकर अवाक् हो गये। माता जी ने पूछा, अँगूठी कहाँ पर है। आपने कहा, एक बहुत गरीब फकीर था उसको दे दी। सत्यता चरित्र की विशेषता थी। निर्भीकता आपका विशेष गुण था। बड़े से बड़े कर्नल जनरल आपके यहाँ आ जाते, किन्तु आप उनसे बिल्कुल संकोच नहीं करते थे। बड़े साहस के साथ उनसे वार्तालाप करने में अपनी दक्षता का परिचय देते थे। इनकी निर्भीक प्रकृति से बड़े-बड़े लोग हैरान हो जाते थे, परन्तु भविष्य किसी को भी ज्ञात नहीं था।

नेपाल राज्य के कर्नल से (कर्नल राजा के सदृश समझा जाता था) पिता जी की मित्रता थी। दौरा करते समय कभी-कभी आप रघुनाथपुर आया करते थे, एवं पिता जी के यहाँ ही अपना डेरा डालते थे।

फाल्गुन मास था, चारों ओर होली की धूम मची हुई थी। उस दिन दुलहड़ी थी। पिचकारी के रंग-विरंगे फव्वारे चल रहे थे। पृथ्वी लाल पीले रंग से आभूषित थी। प्रभु ने भी अपने घर में अनेक साथियों के झुण्ड के झुण्ड सहित होली की धूम मचा रक्खी थी। रंग, रंग नहीं तो पानी का फव्वारा चलाते थे। संध्या का समय था, अचानक कर्नल साहब आ उपस्थित हुये। सर्वप्रथम प्रभु ही उनके सामने जा उपस्थित हुये। उन्होंने प्रभु को छेड़ते हुये कहा—आज आपके पिता जी को हम अपने घर ले जा रहे हैं।

प्रभु ने निःसंकोचता से प्रत्युत्तर दिया—आज तो होलिका है, आज हमारे यहाँ त्यौहार है। आज हम अपने पिता जी को कहीं भी नहीं जाने देंगे। बात तो बिल्कुल साधारण थी, किन्तु नेपाल जैसे प्रान्त के लिये एक कर्नल के साथ इस प्रकार से बात करना बड़े साहस की बात थी। नेपाल में एकतंत्र राज्य होने के कारण बहुत ही मान-सम्मान का व्यवहार परस्पर में किया जाता है।

इनके चले जाने के पश्चात् कर्नल साहब स्वयं स्तम्भित होकर पिता जी से कहने लगे—आपकी यह बालिका भविष्य में निःसन्देह होनहार होगी। अपनी वाक्पटुता एवं चंचलता के कारण विशेष रूप से सबके हृदयग्राही होते जाते थे। बिना प्रयोजन ही इनकी बोली सुनने के लिये सब इनसे बात करते। सबका आकर्षण इनके प्रति रहता था।

राजकोष का खजांची इनको अपने वच्चे के सदृश स्नेह करता था। प्रभु की अवस्था करीव ११, १२ वर्ष की होगी, एक दिन आप पिता जी के साथ दरवार में गये हुये थे, पिता जी तो अपने काम में लग गये। खजांची जी आपको बुलाकर राजकोष के कमरे में ले गये एवं इनसे कहा—तुम अपनी मुट्ठी भर कर जितना भी जो कुछ चाहो भर लो, वाल सुलभ लोभी वच्चे होते ही हैं। इन्होंने हाथों में अशर्फी भर कर कस कर मुट्ठी वाँध ली। जव वाहर आकर मुट्ठी खोली तो हाथों में से वहुत थोड़ी मुद्रा देखकर आपने खजांची साहव से पूछा—"मैंने तो इसकी कसकर मुट्ठी वाँधी थी फिर मुद्रा इतनी कम क्यों आई? इसका कारण क्या है?" त्रुटि कोई नहीं होनी चाहिये इसीलिये जानकारी की जिज्ञासा रहती थी।

खजांची ने कहा, वेटा! आप तो भोले हो, आपने लेना ही नहीं जाना। यदि मुट्ठी खोलकर लेते तो वहुत सारा रुपया आ जाता। आपने मुट्ठी वाँध ली थी इसीलिये कम रुपया आया। आपसे किसी काम में यदि जरा सी भी त्रुटि हो जाती, तत्काल ही आप उसको सुधारने का प्रयत्न कर लेते थे एवं वैसी त्रुटि कभी न करने का संकल्प करके सावधान हो जाते थे। आपसे त्रुटि होती ही नहीं थी, हुई तो एक वार वाल्य वुद्धि के कारण।

प्रभु की स्वाभाविक ऐसी प्रकृति थी कि जिससे वह स्नेह करती थीं उससे पूर्णत: घुल-मिल कर एक हो जाते थे एवं उसके लिये प्राण की आहुति देने में भी कोई विलम्व नहीं करते थे। किन्तु यदि कोई अवस्था अथवा कारण ऐसा उपस्थित हो जाय, जिससे उसको त्यागना पड़े, उस समय उससे विरक्ति लेने में उन्हें एक क्षण भी नहीं लगता था। आपकी प्रवृत्ति विरक्त सन्यासी के सदृश थी। प्रारम्भ से ही संत प्रकृति थी। किसी का कृष्ट देख ही नहीं सकते थे। दूसरे के कष्ट से उनका हृदय विदीर्ण हो जाता था। उनसे यदि कोई अहंकार प्रदर्शन करता अथवा इनका अपमान करता, उसको वह सहन नहीं कर सकते थे। आपकी स्वामित्वपने की प्रकृति थी। इष्ट मित्र जितने भी हों, इनके अधीनस्थ होकर चलें, यह आपकी स्वाभाविक वाल प्रकृति थी।

एक व्राह्मण वालिका आपकी अभिन्न मित्र थी। एक प्राण दो देह जैसा

परस्पर में दोनों का सम्बन्ध था। खेल-खेल में माँ से वादविवाद करके प्रभु को "तू" कह कर अपमानित शब्दों में वार्तालाप कर दिया। उसी क्षण से इन्होंने उसका परित्याग हृदय से कर दिया और कहा जब तुम्हारी इतनी भी बुद्धि नहीं कि तुम हमको समझ सको और अपने स्थान को भूल कर हमको 'तू' कहती है अतः आज से तेरा मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। बाद में वह बहुत रोई एवं उसकी माँ ने क्षमा याचना माँगी, किन्तु आज तक आपने उसकी ओर हृदय से उलट कर नहीं देखा। आज भी जिसको हृदय से त्याग देते हैं उसका स्वप्न में भी स्मरण नहीं करते हैं। यह आपके चरित्र की विशेषता है।

आपके मन में जिस समय जो करने की इच्छा हो जाती थी उस कार्य को पूर्ण करने के लिये रात अथवा दिन एवं परिस्थिति की कोई बाधा नहीं रोकती थी। करना है सो करना है, देना है सो देना है। देने का बहुत शौक था। जो कुछ दो, देना चाहिये, कोई गरीब हो, दुःखी हो या ब्राह्मणी हो, जो भी सामने आ जाये, जो कुछ भी माँगे, वह चाहे हीरा हो अथवा काँच, फौरन दे देते थे।

आपको वस्तुओं से कोई आसक्ति नहीं थी। जो उनकी आज्ञा का पालन कर दे, उसको मुंह माँगी वस्तु मिल जाती थी। उदार चरितावली उक्ति आपके साथ सत्य लागू होती है। आपका हस्तकमल सदैव से खुला हुआ था। आपकी दूरदर्शिता सराहनीय थी। आपकी कर्म और वृत्ति सदा एक सी रही।

आप बाल्यावस्था से ही मनोविनोदी और हंसमुख खिलाड़ी थे। 'मन-मौजी महाप्रभु मनमौजी कर्म करते रहते थे। एक दिन की बात है, भाभी लोग बैठी हुई कुछ काम कर रही थीं। आप मकई के खेत में साथियों का झुंड लेकर पहुँच गये। साड़ी के पल्ले में कम से कम पचास चिड़ियों को डाल कर ले आये, और पीछे से जाकर उन लोगों के ऊपर छोड़ दिया। भाभियों की चीख निकल गई, अकस्मात अनेकों चिड़ियों को गोद में फड़फड़ाते हुये देखकर, ज्यों ही उन लोगों ने खिसियायी सी होकर आपको उलाहना देने लगीं, आप खिल-खिला पड़े। आपने ज्यों ही हंसा, एक दिव्य प्रकाश आपके चारों ओर फैल गया, भाभी लोग स्तम्भित सी होकर अवाक दृष्टि से आपकी ओर देखते हुये खड़ी रह गयीं। आप स्थूल शरीर के उलझनों और बन्धनों से ऊपर उठे हुये थे।

आपको यह भान ही नहीं था कि अब हम बड़े हो रहे हैं, हमारा नारी शरीर है, और हमारे साथ समाज का कोई बन्धन है।

जब पिताजी रघुनाथपुर में थे, मंदिर में शंख तथा घंटे घड़ियाल की मधुर ध्वनि सुनते ही अपनी मान-मर्यादा की कुछ भी परवाह न करके, मंदिर में शीघ्र ही पहुँच जाते थे, सबसे आगे जाकर खड़े रहते, घंटों भगवान की छवि को निहारते रहते, कभी-कभी ध्यानावस्थित हो जाते थे। पुजारी लोगों को आपकी योग-स्थिति को देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता था एवं बहुत ही श्रद्धा तथा प्यार से आपको माला पुष्प देते, बड़ा ही आदर करते थे। १२ वर्ष की अवस्था में आप रघुनाथपुर में थे। एक बार रघुनाथपुर में बड़ा भारी मेला लगा। मंदिर में भगवान की बहुत सुन्दर झांकी सजायी गई थी। मंदिर की ओर से झांकी के दर्शन के लिये पिता जी को निमंत्रण आया था। अतः उस दिन परिवार के सभी प्राणी दर्शन के लिये मन्दिर गये थे। गुरुदेव जी छोटे से हाथी पर बैठकर मंदिर गये थे। दूकान वाले कहने लगे, हजूर! गरीब परवर, आप जैसे लोग दूकान से कुछ नहीं खरीदेंगे तो कौन खरीदेगा। आप दया स्वरूप तो थे ही। उनके ऐसे वचनों को सुनकर हाथी को रोक लिया तथा और कोई भी शृंगार की वस्तु या खिलौना न खरीदकर, ढेर सा गोपी चन्दन, तुलसी की माला और छोटी-छोटी भगवान की मूर्तियाँ खरीदीं। प्रभु की इस प्रवृत्ति को देखकर माता जी को एक ठेस पहुँची क्योंकि वह आपके नित्य के कर्म से ही आपकी प्रवृत्ति को समझती थीं। जीवन में आपके कर्मों के द्वारा अनेकों दिव्यता का दर्शन भी किया था। लेकिन बार-बार भूल जाती थीं प्रभु के उस वास्तविक स्वरूप को। एक बार की बात है, कुल रीति के अनुसार संक्रांत के दिन घर में श्री सत्यनारायण भगवान की कथा का आयोजन था। आपके मन में सदा यह भावना रहती थी कि जैसे भी हो गृह में जब भी धार्मिक कार्य सम्पादित किये जायें, प्रथम अवसर पूजा करने का प्रभु को ही मिलना चाहिये। उसी भावना से प्रेरित होकर एक दिन माता जी के उपस्थित होने के पूर्व ही आपने पंडित जी को पट्टी पढ़ाकर, भगवान सत्य नारायण की पूजा करके स्वयं कथा सुनने बैठ गये। पिता जी के काम से निवृत्त होकर जब माता

जी पूजा के हेतु पूजा-गृह में आईं, तो देखा भगवान सत्यनारायण की कथा आधी समाप्त हो चुकी है। आप अवाक् होकर देखती ही रहीं कि प्रभु आखिर हैं कौन ? मेरे गृह में कन्या रूप में अवतरित हुये हैं। लेकिन आपके विलक्षण तथा असाधारण कर्म होते हैं। यों माता जी सोच ही रही थीं, स्तम्भित सी खड़ी ही थीं कि प्रभु खिलखिला पड़े। उनके खिलखिलाने में एक दिव्य तेज निकलकर आकाश-मंडल में लीन हो गया। माता जी कुछ न समझ सकी कि यह क्या हुआ ?

हंसता खेलता हुआ वन के स्वतन्त्र पक्षी के सदृश जो रात्रि दिन विहरण रहते थे, शनैः-शनैः उनका वह मन उदास रहने लगा। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गई, त्यों-त्यों प्रभु के प्रेम का रंग गहरा होता गया। प्रकृति एवं पुरुष अपनी योगशक्ति का आधार लेकर इस धराधाम पर मानव का खेवनहार बनकर ही अवतरित हुये, लेकिन लीला भूमि पर पधारने के कारण लोक-दर्शन के लिये नाना लीलाओं को रचा। अब आपकी उदासी बढ़ने लगी। भगवान के विग्रह के समक्ष रात्रि दिवस बैठे रहते। नेत्रों से अश्रु-बिन्दु झरते रहते, मुख से गुनगुनाते रहते—

आन मिलो घनश्याम ओ मेरे श्याम
कित को जाऊँ, कहाँ ढूंढ़ूं
कैसे तुम्हें मैं पाऊँ, ओ मेरे श्याम
रैन अंधेरी मग है टेढ़ी
दर तेरा मैं कैसे पाऊँ ओ मेरे श्याम

आन—

चैन नहीं आवत, धीर नहीं पावत,
कौन से पूँछू, कैसे मैं पाऊँ ओ मेरे श्याम

आन मिलो।

अब प्रभु का साथियों के साथ घूमना, खेलना, कूदना, हंसना शनैः-शनैः छूटने लगा। सब साथियाँ आतीं, बैठतीं, आपकी उदासी का कारण पूछतीं, लेकिन आप कुछ नहीं बोलते। बहुत पूछने पर यही कह देते थे कि न मालूम हमको

क्या हो गया है? हमको यह संसार स्वप्नवत, झूठा और नीरस लगता है। इसकी कोई भी चीजें मुझे मन को शान्ति देने वाली प्रतीत नहीं होतीं। मेरा मन इस राज्य-सुख में एक पल के लिये भी चैन नहीं पा रहा है। ऐसा कहते-कहते प्रभु मूर्छित हो जाते, साथियों के नेत्रों से अश्रु गिरता, वह माता जी को बुलाकर लातीं, भगवान का गान किया जाता, शनैः-शनैः आपकी मूर्छा भंग होती। हा श्यामसुन्दर कह कर फिर भावावेश में आ जाते।

आपकी इस अवस्था को देखकर माता पिता जी अत्यन्त ही दुखित रहने लगे। उन लोगों की समझ में नहीं आता था कि यह क्या हो गया। प्रभु (छोटी मैय्या साहब) का दिल संसार की ओर बिल्कुल ही नहीं है। इनका गृहस्थ संस्कार कैसे किया जायेगा। पिता जी एवं माता जी एकांत में बैठकर इस विषय पर बहुत वार्तालाप करते रहते, एवं महाप्रभु को भी बहुत समझाते कि बेटा! हम लोग एक सामाजिक प्राणी हैं। समाज का बन्धन हम नही तोड़ सकते। आप अपनी भावनाओं को सम्भालिये। इस प्रकार की भावना आपके जीवन को दुःख के गर्त में डाल देगी जो हम लोगों को भी सहना कठिन होगा। आप एक प्रतिष्ठित कुल की बालिका हो। मर्यादा में रहना उचित है। जोगिन बनकर भगवान की भक्ति करना आपके लिये सर्वथा असम्भव है। आप इन बातों का कभी कोई उत्तर न देकर पूजा गृह में जाकर भगवान के समक्ष बैठकर फूट-फूट कर रोते थे। कभी-कभी माता जी के प्रवेश करने पर वह देखतीं कि आप मूर्छित अवस्था में पड़े हैं और एक दिव्य प्रकाश-पुंज कमरे में छाया हुआ है, ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर आप अवाक् हो जाती थीं। उनकी समझ के परे था कि वह क्या करें क्या न करें।

कभी-कभी वह अति दुखित होकर भगवान से कहतीं—हे मेरे प्रभु! मेरे इस हृदय के टुकड़े को क्या हो गया। लेकिन प्रश्न का उत्तर कौन देता? इनके गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर माता-पिता बड़े ही चिन्तित रहने लगे। स्वास्थ्य को सुधारने तथा मन बहलाने के विचार से प्रभु को लेकर वह लोग उत्तर भारत में आ गये। विचरण करते-करते वाराणसी पहुँचे। साक्षात् विश्वनाथ काशी में पहुँचकर महाप्रभु को बहुत ही शान्ति मिली। आपका मन काशी के

पवित्र वातावरण में रम गया। आपको प्रातःकाल गंगा स्नान करना, विश्वनाथ जी का दर्शन करना बहुत ही अच्छा लगता था। विशेष समय ध्यान पूजा में ही व्यतीत करते थे। खाली समय में नौकरानी को लेकर मोती झील के बगीचे में चले जाते थे, एकांत स्थान में ध्यानावस्थित मुद्रा में बैठे रहते थे। पिता जी से मिलने वाले पंडित, विद्वान एवं साधु आदि जो कोई भी आते थे, प्रभु की ऐसी परमहंस स्थिति को देखकर आश्चर्य में पड़ जाते थे। कभी-कभी वह लोग पिता जी से कहते थे कि इस बालिका के स्वरूप में कौन-सी दिव्यता तथा महानता छिपी हुई है। निःसन्देह यह कोई होनहार बालिका है। लेकिन मोह से आवृत माता-पिता इस गूढ़ रहस्य को क्या समझ सकते थे ?

शनैः-शनैः प्रभु पूर्ण स्वस्थ हो गये। इनके स्वास्थ्य को ठीक देखकर माता-पिता जी ने पुनः उत्तराखंड अपने देश में जाने का विचार किया। जब आपको यह बात पता चली तब आपने माता जी से कहा, माँ ! हमें नेपाल जाने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। वहाँ पर मायावादी, प्रपंच की बातें हमको रोग-ग्रस्त कर देती हैं। माता जी ने बहुत कुछ समझाया और कहा, बेटा ! हम लोगों को तो वहाँ जाना ही होगा, क्योंकि हमारी धन-सम्पत्ति सब वहीं पर है। महाप्रभु की इच्छा न होने पर भी नेपाल जाना ही पड़ा। अब आप पूर्ण युवा हो चुके थे।

नेपाल पहुँचने पर घर परिवार की मर्यादानुसार विवाह की चर्चा होने लगी। आपके बड़े भ्राता बड़े ही कटोर और हठी थे। यद्यपि वह प्रभु को अपना दूसरा अंग मानते थे लेकिन वह समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देना चाहते थे। योग्य वर की खोज होने लगी। आपको जब इस चर्चा का आभास हुआ तो आपने पूर्ण रूप से विवाह न करने का प्रतिशोध किया। बड़े भ्राता वज्र की तरह कठोर बनकर अपने सिद्धांत पर अडिग थे कि विवाह होकर ही रहेगा। प्रभु परम साहस और निर्भीकता से यह कहते रहे कि हम विवाह नहीं करेंगे। दिल एक होता है, मेरा मन श्यामसुन्दर के चरण का भंवरा बन चुका है, वह दूसरे के बन्धन में नहीं बँधेगा। घर में उदासीनता और अशान्ति फैल गई। माता पिता जी की स्थिति विचित्र हो गई। वह सामाजिक

प्राणी थे, किधर जायें क्या करें क्या न करें ? एक ओर ज्येष्ठ पुत्र की दृढ़ प्रतिज्ञा और समाज, दूसरी ओर अपनी प्यारी सन्तान का दिल. दो के बीच में गाड़ी फँस गई। बहुत कुछ द्वन्द होने पर भी भाग्य में जो लिखा होता है वह होकर ही रहता है।

श्री ब्रह्मज्ञ सन्त श्री वशिष्ट जी ने रामगमन और दशरथ मरण के पश्चात् श्री भरत लाल जी के बिलख-बिलख कर रोने पर सान्त्वना देते हुये कहा—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभु जीवनु मरण, जसु अपजसु बिधि हाथ।

अस बिचार केहि देइय दोसू, व्यर्थ काहि पर कीजिय रोसू। बड़े भ्राता ने विवाह का निश्चय कर ही दिया। जब प्रभु को इस बात का पता चला, आपने खाना पीना सब कुछ छोड़ दिया। प्रभु का स्वास्थ्य पहले से भी अधिक कमजोर हो गया। उनका उठना बैठना चलना फिरना कठिन हो गया। पुनः आपको बहाने से काशी लाया गया। लेकिन काशी लाने से क्या होता ? आप चारपाई से लग गये। एक बूंद जल भी नहीं पचता था। माता जी आपकी ऐसी दशा को देखकर आंसू बहाती रहती थीं, लेकिन कर क्या सकती थीं ? समाज का बन्धन और घर की मर्यादा ने उनको जकड़ रखा था।

दैव की इच्छा को कोई नहीं जानता, प्रारब्ध के भोग से सभी बँधे हुये हैं। भगवान राम और कृष्ण ने जिनकी स्वयं बनायी हुई सृष्टि है, कर्मों के भोगों को भोगा, क्योंकि जगत में नर-लीला कर रहे थे। आपको औषधियाँ दी जाने लगीं। मन की औषधि न मिलने पर चिकित्सक की औषधि कैसे निरोगी करती ? आप सब औषधियों को फिकवा देते थे। सन्तरे का रस जबरदस्ती जो मुंह में डाला जाता था वह वमन कर देते थे।

विवाह का समय आ गया। द्वार पर बारात आ गई। आप अचेतन अवस्था में पड़े हुये थे। सबके मुख-मंडल पर उदासीनता थी। सखियाँ रो रही थीं। कौन किसका शृंगार करे, किसको खुशी और उत्सुकता थी जिससे सब उत्सुक होते। जब मुख्य विद्युत घर की बिजली ही में करेन्ट नहीं तो और बिजली जले कैसे ? माता जी ने पिता जी से कहा—भैय्या साहब अचेतन पड़े

हैं, क्या किया जाय ? सब गुमसुम थे। कौन किसको क्या कहता ? किसी प्रकार से माता जी प्रभु का हाथ पकड़ कर उनको द्वार पर वरमाल पहनाने लाईं। प्रभु का हाथ उठा ही नहीं। माता जी यह कहते हुये कि बेटा की तबियत बहुत खराब है, अपने हाथ से माला वर के गले में डलवाई।

संस्कार में जो विधान लिखा था वह हो गया। अल्पकाल की वह लीला भी शीघ्र ही समाप्त हो गई। वन का स्वतंत्र पक्षी पुनः वन में लौट आया, और सर्वस्व त्याग कर पूर्ण सन्यासी बन गया।

भक्ति-काल

श्री नारायण महाप्रभु की सन्यास अवस्था

प्रभु स्वयं ही साक्षात् योगेश्वर थे, लेकिन मानव-लीला करने के लिये आये थे इसीलिये सब प्रकार की लीला करनी अनिवार्य थी। महाराज पृथु स्वयं साक्षात विष्णु ही थे लेकिन जगत के कल्याण तथा धर्म की स्थापना के लिये मृत्युलोक में अवतीर्ण हुये इसीलिये नाना प्रकार के कर्मों को करना पड़ा। महाप्रभु को सन्यास ग्रहण करने में एक पल भी नहीं लगा। इक्कीस बाइस वर्ष तक सांसारिक शरीर के सम्बन्धियों के मध्य में रहकर विभिन्न लीलाओं को करके उनको आनन्दित करते रहे। संकल्प उठते ही एक पल में उपरामता ले ली। सन्यास लेने के पश्चात मोह माया के पुतलों की ओर से पूर्णतः दृष्टि फेर ली जिसके फलस्वरूप उनके मोह माया का प्रहार वृथा रहा। प्रभु स्वप्नवत संसार को बिल्कुल ही भूल गये। उनके सामने एक ही लक्ष्य वर्तमान था, हरि का दर्शन। उस दर्शन के लिये आप एक पल भी प्रतीक्षा करना नहीं चाहते थे। आपका प्रेम ऐसा नहीं था, जो "छिनहि चढ़े छिन उतरै।"

गंगा जी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती हैं और बहती ही जाती हैं और तभी रुकती हैं जब अपने स्वामी समुद्र के अन्दर लीन हो जाती हैं। दो मिल कर एक हो जाते हैं। उसी प्रकार प्रभु का प्रेम गंगा है, परम पावन और निर्मल है। वह प्रेमी जब प्रियतम का साक्षात्कार कर लेता है तभी शान्त होता है, नहीं

तो उसके लिये तड़पता ही रहता है। चन्द्रमा से मिलने के लिये प्रशान्त रत्नाकर भी उल्लसित होकर उबलने लगता है ऊँची गगनभेदी तरंगों के रूप में। महाप्रभु का विरह बढ़ता ही जा रहा था। भगवान का प्रेम मृत्यु से भी अधिक ठोस, अमर, शाश्वत और रस रूप है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप भगवान को चाहने वाले भक्त के रोम-रोम में व्याप्त रहता है। उसकी प्रत्येक क्रिया प्रभु को प्रसन्न करने के लिये ही होती है। वह अपना जीवन भी केवल उन्हीं के लिये रखता है, वरना वह उनके बिना जीना नहीं चाहते। उनसे बिना मिले उसे एक पल भी चैन नहीं पड़ता। वह आकुल व्याकुल होकर विरह अग्नि से तपता रहता है।

महाप्रभु का संकल्प उठते ही संसार उनसे दूर हो गया। वह हरि-दर्शन के बिना इस संसार में न जीना चाहते थे न किसी को देखना चाहते थे। सन्यास लेने के दो तीन दिन पश्चात ही जीवन को त्यागने के लिये गंगा जी में डूबने जा रहे थे। आपसे प्रेम करने वालों की कमी नहीं थी, वह लोग पीछे-पीछे फिरते रहते थे। उन लोगों ने परम प्रेम से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करके, रोकर महाप्रभु को ऐसा करने नहीं दिया। इस प्रकार से आपने कई बार गंगा जी की शरण लेने का प्रयास किया, लेकिन मां गंगा जगत जननी, जिसका जन्म उसने जगत का खेवनहार बनाने के लिये दिया अपने में क्यों समावेश करती। स्वामी रामतीर्थ को जब आत्म-दर्शन प्राप्त करने में देर लगी तब वह बढ़ी हुई नदी में कूद पड़े, लेकिन कूदने से क्या होता था? बिना चोट कोई क्षति पहुँचे ही उनको लोगों ने एक चट्टान पर बैठे इस प्रकार देखा मानो किसी ने गोद में लाकर चट्टान पर बैठा दिया हो। कबीर जी ने सच ही कहा है—

जाको राखे साइयाँ, मार न सकता कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।।

आपकी साधना वज्र जैसी कठोर थी। वज्र जैसे हृदय के मानव का हृदय भी आपकी साधना को देखकर द्रवीभूत हो जाता था। रैन दिवस नेत्रों से टप-टप जल झरता रहता था। आपके विरह के कठोर ताप से पास-पड़ोस के प्राणी भी दग्ध रहते थे। सन्यास लेते ही अन्न का बिल्कुल ही त्याग

कर दिया। १३ दिन तक केवल गंगा-जल लेकर ही रहे। परमहंस निर्मल निर्विकारी निरंजन ज्ञान सिंहासन पर आसीन तत्वज्ञ श्री भगवान गुरुदेव श्री केशवानन्द जी महाराज का साक्षात्कार हुआ। श्री नारायण महाप्रभु एक वृक्ष की छाया में अकेले ही बैठे हुये भगवान के विरह में जोर-जोर से सिर नीचे किये हुये क्रन्दन कर रहे थे। आपको जगत का अथवा कुल-मर्यादा का कोई संकोच नहीं था। केवल एक लक्ष्य था ईश्वर मिलन।

भगवान केशवानन्द जी महाराज आपके बिल्कुल निकट से होकर जरा दूर चले गये। गुरुदेव नारायण प्रभु को ऐसा आभास हुआ जैसे कोई उनको छूकर पास से निकल गया। एकदम उनको लगा मेरे रोने की आवाज को सुनकर कहीं भगवान तो नहीं आ गये। मस्तक ऊपर उठाया कि देखते हैं कि एक अस्सी वर्ष के लगभग के वृद्ध संत जा रहे हैं। आपके मन में तत्काल भाव आया कि निस्सन्देह यह भगवान ही हैं, हमको दर्शन देने के लिये आये होंगे ? ऐसा सोचकर आपने भगवान दादा गुरु को आवाज दी कि महाराज आप यहाँ आइये। वाल ब्रह्मचारी, परमत्यागी, योगेश्वर भगवान केशवानन्द जी महाराज एक नन्हें वालक के सदृश दौड़कर आये एवं मेरे गुरुदेव के समक्ष खड़े हो गये। मेरे गुरुदेव उनके विलक्षण लक्षण से आकर्षित होकर सुधबुध खोये के सदृश विरह ताप के आवेग को भूलकर ऊपर से नीचे तक उन्हीं को निहारने में लगे रहे। भगवान दादा गुरु ने कहा—वेटा! आपने मुझे क्यों बुलाया था और बुलाकर केवल ऊपर से नीचे तक देख रहे हैं। आप वार-वार ऊपर से नीचे की ओर देख रहे हैं। आपके इस प्रकार देखने पर भगवान दादा गुरु ने कहा, वेटा ! आप नौ वार ऊपर से नीचे देख चुके हैं। आप वार-वार क्यों देख रहे हैं। प्रभु जी ने कहा—"महाराज, आप संत हैं, हमने सुना है कि संत लोग परम दयालु होते हैं। आप हमारे एक कष्ट का निवारण करिये। हमें संसार के पदार्थ अच्छे नहीं लगते, यह संसार हमको असार और विषवत भासता है, अतः आप ऐसी युक्ति वतलाइये कि हमें शीघ्र ही इस मायिक संसार से छुटकारा मिल जाय। दूसरा आशीर्वाद यह दीजिये कि हम सदैव निद्रा अवस्था में ही पड़े रहें। स्वप्न में इष्ट का दर्शन होता है, इसीलिये

यदि हम निद्रा अवस्था में लीन रहेंगे तो स्वप्न में इष्ट का दर्शन होता ही रहेगा, उससे हम एक पल भी अलग नहीं होना चाहते ।"

दादा गुरु ने हँसते हुये कहा, "वेटा! तुम कौन से स्वप्न की वात करते हो, यह अवस्था जिसमें आप हमसे वात कर रहे हो यह भी स्वप्न ही है । अज्ञान की अवस्था ही निद्रा की अवस्था है । वेटा ! आप तो अब ईश्वर से दो सौ वर्ष की उम्र वरदान रूप में मांगो क्योंकि अब ही तो जीवन का सच्चा आनन्द उठाने का समय आया है । वेटा ! जव तक जीव पर थोड़ी सी भी माया की झिल्ली पड़ी रहती है तब तक वह जगत के सच्चे आनन्द का लाभ नहीं उठा सकता, अतः ज्ञान के असीम आलोक को प्राप्त करने का अब सुअवसर प्राप्त हुआ है ।'

मेरे गुरुदेव भगवान केशव की वात समाधिस्थ होकर सुनते रहे । उनकी अवस्था अनिर्वचनीय हो गई, उन्हें देह गेह की सुध ही नहीं रह गई । भगवान केशव एक पल में अदृश्य हो गये । आपको जव चैतन्यता आई, आप दूर तक देखते रहे कि वह अलौकिक महापुरुष कहाँ से आया और किधर अदृश्य हो गया । एक सेविका को इधर-उधर भेज कर खोज कराई, लेकिन कुछ भी पता न चल सका । अब आपका आलाप विलाप सब वन्द हो गया । नेत्रों के चारों ओर वह दिव्य पुरुष ही दृष्टिगोचर होने लगे, उनकी कही हुई एक-एक वातें वार-बार अन्तर्नाद करने लगीं । आप रात्रि भर यही सोचते रहे, वह महापुरुष संत नहीं थे, निस्सन्देह वह भगवान ही थे । उनकी वातों में कितनी सरसता, आकर्षणता एवं शान्ति थी । वह हमको छकाने के लिये वृद्ध रूप धारण करके आये थे ।

भगवान दादा गुरु का दर्शन कर लेने पर प्रभु की साधना तीव्रतर होती ही चली गई । मन कुछ शान्त अवश्य हो गया, लेकिन जो वह चाहते थे वह एक दिन के दर्शन में कैसे हो सकता था । पुजारी जब मन्दिर का पर्दा गिरा देता है, तब उसके खुलने में भी समय लगता है । दर्शकगण, दर्शन की लालसा से प्रभु की याद लेकर मन्दिर के प्रांगण में बैठे रहते हैं । मेरे प्रभु का हृदय श्यामसुन्दर के मिलने की तीव्र लालसा से पल-पल दग्ध होता रहता

था। प्रभु को श्यामसुन्दर के विरह में खान-पान की कोई भी सुध नहीं रहती थी। वह अपनी सुध-बुध खो बैठे थे। भक्तगणों के बहुत आग्रह करने एवं समझाने पर कभी कई-कई दिन के बाद एक दिन रात्रि को एक बार गर्म पानी में गुड़ डाल कर पी लेते थे। ६-६ महीने तक इसी प्रकार चलता रहा। यों तो आप जन्म से ही सन्यासी और योगी रहे लेकिन व्यवहार रूप में आपने १९४७ आषाढ़ शुक्ल पक्ष में पूर्ण सन्यास लेकर घर का परित्याग कर दिया था।

मां भगवती गंगा के तट पर श्यामसुन्दर की खोज में फिरते रहते। जगत के किसी प्राणी को देखना नहीं चाहते थे। इन नेत्रों से दर्शन करें तो श्यामसुन्दर का ही करें। किसी की बात सुनना और किसी से बात करना भी पसन्द नहीं करते थे। राग-रागिनी भी अच्छी नहीं लगती थी, केवल सांवरिया की छवि के दर्शन के लिये नैना आकुल रहते थे। बाद में आपने गुड़ का गर्म पानी भी लेना बन्द कर दिया। आपको लगता था, हम उसको इतना प्यार करते हैं तो वह भी तो उतना ही अधिक प्यार करता होगा, क्योंकि भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्। गीता। ९।२२

घट-घट व्यापी प्रभु कहाँ नहीं हैं। सब में और सर्वत्र हैं, कौन सा ऐसा कण है जिसमें उनका अस्तित्व नहीं है।

"सर्वान्तर्यामिणे देव सर्व बीज मयं तत:"

अब कुछ मासों तक एक दिन छोड़ कर एक दिन नमक का पानी पीकर रहने लगे। सब भक्तगण अश्रु बहाते, क्योंकि केवल अश्रु ही भक्तों को सहारा था। लेकिन आप प्रबल वैराग्य के प्रवाह में किसी की ओर दृष्टि भी नहीं डालते थे। सन्यास लेते ही कुछ लोग स्वयं ही सेवा पूजा में भक्त रूप से रहने लगे थे। आपकी अवस्था अलग थी, वैराग्य उत्कट था। भक्तों के रूप में स्वयं हरि आगे पीछे फिरते रहते थे। अब आपने नमक के पानी का भी त्याग कर दिया। एक दिन रात्रि के समय आप बैठे हुये नाम जप कर रहे थे। नेत्रों

से अविरल अश्रु धार मोती की लड़ियों के सदृश बिखरती जा रही थी। आप नेत्रों को बन्द किये हुये थे। सहस्र सूर्यों के प्रकाश के सदृश तेज एवं दिव्य सुगंध, शान्त ज्योति मंदिर में फैल गई। आपको अपने चारों ओर प्रकाश फैला हुआ भासने लगा। आपके नेत्र खुल गये। रात्रि के घोर अन्धकार में चारों ओर शीतल चाँदनी जैसी अद्भुत ज्योति छाई हुई थी, आप आश्चर्य से उस प्रकाश की ओर निहारते रहे। अपने चारों ओर अलग प्रकार का प्रकाश देखते हैं। आपके अश्रु-बिन्दु गिरना बन्द हो गये। शनैः-शनैः वह प्रकाश भी मन्द होने लगा, थोड़ी देर पश्चात् पूर्णतः विलीन हो गया और उस प्रकाश के स्थान पर वही महापुरुष खड़े हुये हैं जिनका दर्शन सन्यास लेने के तेरह दिन पश्चात् किया था। कुछ क्षण के पश्चात् वह भी अन्तर्ध्यान हो गये। अब रह गये केवल आप, और थोड़ी दूर पर सोई हुई एक दासी। आप विचारों के सागर में डूबे हुये थे कि दासी की आँख खुल गई और उसने कहा, प्रभो ! यह आप क्या कर रहे हैं ? इस प्रकार भगवान नहीं मिलते। उसको जब मिलना होगा तब ही मिलेगा। आप अपने शरीर को क्यों इतना कष्ट पहुँचा रहे हैं ? मुझसे तो मक्खन जैसे कोमल शरीर को इतना कष्ट पहुँचाना देखा नहीं जाता। हाय विधाता ! यह क्या हो गया ? लिखत सुधाकर लिख गये राहू, विधि कर वाम सदा सब काहू, कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। आपने जब देखा मोह से ग्रसित, बाल्यावस्था से लालन पालन करी हुई बूढ़ी को कुछ कहना वृथा है, अतः स्वयं जाकर लेट गये। कौन था वहाँ धैर्य देने वाला, उस ममत्व से भरी हुई बूढ़ी को। आपको लेटा हुआ देखकर वह शनैः-शनैः निद्रा की गोद में आराम करने लगी। अजब विधि का लेख, किसी से कहा नहीं जाय।

आपको अपने स्थूल शरीर से कोई ममत्व नहीं था, आप इस धराधाम पर इसको रखना ही नहीं चाहते थे। अब आपने नमक पानी का सेवन करना भी त्याग दिया। भक्तों की कुछ समझ में नहीं आता था, कैसे आपको समझायें और क्या आपको समझायें। अब आप केवल जम्हीरी नीबू तथा हरी मिर्च को एक में मसल कर खा लेते थे। पांच छः जम्हीरी खट्टा नीबू, पन्द्रह बीस

मीरा भाव में

मिर्चों को एक में मसल कर, पानी के साथ पी लेते थे। दर्शकगण आश्चर्य में डूब जाते थे। लोगों को देखकर आश्चर्य होता था कि आप कैसे चलते और बोलते हैं। शरीर में इतनी स्फूर्ति कैसे है। पर कोई भी इनको पहिचान नहीं सका।

सोइ जाने जेहि देहु जनाई, जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।

आपकी कठोर, वज्र जैसे हृदय को भी पिघला देने वाली साधना क्रमशः चल ही रही थी कि भगवान केशवानन्द जी महाराज का पुनः पदार्पण हुआ। प्रयाग राज के सभी प्रतिष्ठित विद्वान, शिक्षित उच्च पदाधिकारी दादा गुरु के अनुयायी शिष्यों में थे। सभी लोग ऐसे तत्वज्ञ त्रिकालदर्शी परमहंस भगवान गुरु को अपने यहाँ रखना चाहते थे। लेकिन भगवान वत्सल सबके सुहृदय हैं। आप सब की आँखों को बचाकर प्रभु की साधना-स्थली शिवकोटी में पधारे। प्रभु ने ज्योंही भगवान दादा गुरु का दर्शन किया, आपका हृदय गदगद हो गया, आपकी वाणी हर्ष के कारण मूक हो गई। आपने दण्डवत किया। आसन पर आसीन करके बैठ गये। जैसे किसी की खोई सम्पत्ति पुनः मिल जाय, उस तरह से प्रभु का हृदय प्रसन्नता से झूम रहा था।

दादा गुरु ने कहा—"बेटा! साधना के द्वारा साध्य का मार्ग पता लगता है। साध्य और साधक के बीच की दूरी को मिलाने वाली माध्यम साधना है। साधना के द्वारा साधक को इष्ट की प्राप्ति होती है। अन्तःकरण की शुद्धि होती है। आप तो स्वयं साधन स्वरूप हो। आप अपने को भूल गये हो। आप इतनी कठोर साधना किसके लिये कर रहे हो। बेटा, आप अपने को याद करो, आप स्वयं मुक्त पुरुष हो। आप अपने को याद करिये और चित्त के अधीन न होकर अपने को सम्हालिये।" इस प्रकार से दादा गुरु भगवान ने आपको विस्मृत स्वरूप का स्मरण कराया।

आप सब कुछ जानते और समझते हुये भी कठोर साधना में लगे ही रहे। आपके मन में क्या था वह आप ही समझ सकते थे।

आप आप में आप हैं, आप आप में आप।
दूजा तो कछु है नहीं, आप आप में आप॥

भगवान श्री राम को श्री अगस्त जी ने बहुत कुछ गूढ़ ज्ञान दिया, लेकिन भगवान श्री राम नर-लीला कर रहे थे। अतः सीता की खोज करनी उन्होंने नहीं छोड़ी, अंत में भगवान राम के गुरु अगस्त जी ज्ञान रूपी जानकी को प्राप्त करने के लिये विरजा मंत्र दिया और कहा कि इसी को अधिक से अधिक जपो, आप अपने लक्ष्य को पूर्ण करोगे।

प्रभु की शक्ति अपार थी। साधारण मानव की समझ में आप नहीं आ सकते थे। कभी-कभी आप ज्येष्ठ की मध्य धूप में गंगा जी के किनारे जाकर गर्म बालू में लेट जाया करते थे, ऊपर से श्वेत चादर, जो आप सदैव ओढ़ा करते थे, ओढ़ लिया करते थे, जिससे कि लोग यह समझ कर कि कोई मुरदा पड़ा हुआ है, आपके पास, कुछ माया जंजाल का प्रपंच फैलाने न जायें। आप एक पल के लिये भी हरि के ध्यान का विस्मरण करना नहीं चाहते थे। आपके ऐसे चरित्र को देखकर लोगों को शंका हो जाती थी कि न तो यह शयन ही करते हैं, न भोजन ही करते हैं। कहीं मस्तिष्क में कुछ गर्मी तो नहीं चढ़ गई। हरि प्रेम के मस्ताने की मस्ती को कौन समझ सकता है, जो उसी के स्वरूप में मिल चुका हो, जो उसका दर्द दिवाना हो चुका हो।

सन्यास को धारण किये एक वर्ष हो चुका। आपकी साधना का क्रम ज्यों का त्यों चलता रहा। अब आप प्रत्येक चौथे दिन बंडे के आटे को गर्म पानी में घोल कर पीने लगे। कभी-कभी जंगली पत्तों को उबालकर खा लेते थे। न क्षुधा की तृष्णा थी, न इच्छा की ही तृष्णा थी। सब कुछ वस्तु उपलब्ध होते हुये भी, जब भोग भोगने वाला ही नहीं तो वस्तु का उपभोग कौन करे। आपके उजाड़ वैराग्य के सामने परिवार वालों का साहस ही नहीं होता था कि कोई कुछ कहे या समझाये। नेपाल से पिता जी घी कनस्तर की कनस्तर, बढ़िया देहरादूनी चावल, टोकरे की टोकरे फल, वस्त्रों के थान एवं रुपये भेजते थे, लेकिन छूना तो दूर रहा, आप उन वस्तुओं की ओर दृष्टि तक नहीं डालते थे। वहाँ से आये हुये परिवारों से बात तक नहीं करते थे। यह मायावी लोग माया का प्रसार करेंगे। अतः भक्त लोग आकर सुना देते थे कि अमुक वस्तु आई है। आप एक मिनट वस्तुओं को न रखकर आज्ञा दे देते थे कि इन वस्तुओं को बांट दो।

एक वार बड़े भ्राता को वड़ा ही संताप हुआ और इच्छा हुई कि प्रभु का जाकर दर्शन करें। इलाहावाद स्टेशन तक सब सामान लेकर नेपाल से आये, परन्तु बिना दर्शन किये ही पुनः नेपाल लौट गये, उनका साहस ही नहीं हुआ कि आप उनके समीप जायँ। जिसका लालन-पालन नैनों की छांह में किया गया, उसका जीवन आज इतना कटु हो गया।

आपका दिन और रात्रि केवल हरि दर्शन की लालसा में ही व्यतीत होता था। आप कहते थे, जो कायर होते हैं, वही ईश्वर के मार्ग पर चलकर ईश्वर को प्राप्त नहीं कर पाते। आपकी साधना का एक-एक अंश हृदय का स्पर्श करने वाला होता था। आप कहते थे, हम स्वयं अपनी लगन के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करेंगे और हमारे आश्रित अन्य जनों को भी दर्शन करायेंगे। आपकी दृढ़ता और विश्वास अनिर्वचनीय था। आपका आत्मबल निर्बल को भी वल प्रदान करने वाला था। आपकी वाणी अज्ञान से ग्रसित जीवों को मूक कर देती थी। प्रभु के सामने वह लोग मौन हो जाते थे। लोगों ने कहा, आपको एक वर्ष तक भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिये, भगवान का स्पर्श नहीं करना चाहिये, शुभ कार्य में रत नहीं होना चाहिये। जीवों की जीव बोली सुन-कर आपकी भावना प्रभु से मिलने की और भी तीव्रतर हो जाती थी। आपने अपने ही हस्तकमल से बड़े से कपड़े को फ्रेम में जड़वा कर वहुत सुन्दर प्रभु के युगल चरण वना लिये, भगवान नारायण की फोटो का कलेन्डर मँगवा कर चारों ओर लगाकर पूजा, आराधना करते रहते थे। आप प्रभु के प्रेम में पगी रहती थीं। आपकी प्रत्येक क्रिया में इष्ट ही समाये रहते थे। स्वप्न, जाग्रित, सुषुप्ति उनके लिये समान था। आप प्रेम की पराकाष्ठा को पार कर गये थे। श्याम तन, श्याम मन, श्याम ही है जीवन-धन की भावना रोम से भी फूटती थी।

आप स्वयं चिदानन्द होकर भी चिदानन्द की खोज में निमग्न रहते थे। आप जिस व्रत और अनुष्ठान का संकल्प करते थे, उसको विधानानुसार ही पूर्ण करते थे। "प्राण जाय पर वचन न जाई" का अटल सिद्धान्त था।

एक बार एक पंडित जी को वाराणसी से पिता जी ने भेजा था कि आप कुछ ज्ञानोपदेश देकर आइये, और उनको यह समझाइये कि वह हठ का त्याग करें। घर में ही रहना चाहिये, घर के कर्तव्यों का पालन करते हुये ईश्वर का भजन करें। अभी तो आप नन्हें बालक हैं। ऐसे सन्यासी बनकर रहना और कठोर साधन करके शरीर को कृष करना उचित नहीं। पंडित जी अच्छे माने हुये विद्वानों में थे। वह पिता जी को आश्वासन देकर आये थे कि हम अवश्य ही उनको सन्यास जीवन यापन करने के लिये रोकेंगे। आप वाराणसी से प्रयागराज शिवकोटी महाप्रभु जी के पास आये। प्रभु के पास अपने आने का संदेशा भेजा। प्रभु बड़े ही नीतिज्ञ और मर्यादावादी, धर्मपरायण और खरे थे। पंडित जी को यथोचित सत्कार करके बिठलाया। पास में पंखा रखे हुये थे। पंडित जी ज्योंही माया का फैलाव फैलाने लगे, आपने स्पष्ट कह दिया, आपको हमारे पास ठहरने की जरूरत नहीं, आप फौरन यहाँ से चले जाइये। हमारे पास पंखा रखा हुआ है। माया की बात करने वालों के लिये यही शस्त्र है। हम तो किसी को नहीं देखना चाहते हैं, न बात करना चाहते हैं। न मायावी जीव हमारे पास आये। आप फौरन उठिये। बेचारे पंडित जी अपना सा मुँह लगाकर चले गये।

जो ईश्वर का दिवाना है उसको किसकी चाह और किसका प्यार प्रभु के पथ में बढ़ने से रोक सकता है। बढ़ती हुई नदी का वेग विशाल से विशाल बांधे हुये बांधों को भी तोड़-फोड़ देता है। आपके लिये कुछ नहीं था, केवल एक लक्ष्य था। उस पर चलने के लिये नाना विघ्न-बाधायें समक्ष आते रहे, लेकिन आपकी दृढ़ निष्ठा और सत्य लगन के समक्ष किसी का अस्तित्व काम नहीं दिया।

पिता जी की ओर से आपके भक्ति-मार्ग में कोई भी बाधा नहीं पहुंचाई गई। आपका वात्सल्य स्नेह से ओत-प्रोत हृदय स्वतः ही दु:ख से भरा रहता था। आप प्रभु के पास रुपये एवं अन्य सामान बराबर भेजते रहते थे जिससे आपको कष्ट न हो। लेकिन आपके लिये सामान की कोई कीमत ही नहीं थी। सामान की ही इच्छा होती तो एक श्वेत वस्त्र, एक कमंडल धारण करके घर

से क्यों बाहर आ जाते ? सर्वस्व भरा होने पर भी आपने वस्तु का पूर्ण त्याग करके उसको उलट कर देखा भी नहीं कि वह हीरा है या मोती या सोना या चांदी। कौन लूट रहा है ? कौन ले रहा है ? आपने इन बातों से कोई भी प्रयोजन नहीं रखा। उस घर के अकेले और लाड़ले थे, लेकिन मन ने जब उधर से मुँह ही मोड़ लिया तो उस लाड़ और प्यार का क्या महत्व ?

"मन एव मनुष्याणां कारणात् बन्धमोक्षयोः।"

आपके लिये न सर्दी रह गई थी न गर्मी। कठोर से कठोर शीत पड़ने पर भी आप किन्हीं गर्म वस्त्रों को धारण नहीं करते थे। एक मलमल की पतली धोती, उसके ऊपर एक चादर ओढ़ते थे, चाहे सर्दी हो अथवा गर्मी। सर्दी के समय रात्रि को शयन करते समय उसी चादर को ऊपर से ढक लेते थे। तकिये के स्थान पर ईंट रख लेते थे, गद्दे के स्थान पर एक कुशे की चटाई। एक माता जी जिनका नाम श्रीमती था, कुछ दिन पूर्व संसार से प्रस्थान कर चुकीं, कहती थीं, माघ का महीना था, दाँत कटकटाने वाली शीत पड़ रही थी। शीत की अधिकता से वृक्ष तक सूख गये थे। प्रभु जी के यहाँ एकादशी का चौबीस घंटे का अखंड कीर्तन था। वह माता जी जागरण की दृष्टि से श्री महाप्रभु जी के शिविर में रही थीं। एकादशी के दूसरे दिन भी घर नहीं गईं। उनको प्रभु से वात्सल्य स्नेह था। प्रभु जी रात्रि की बेला में कुशे की चटाई पर शयन कर रहे थे। वह माता जी भी पास में ही लेटी थीं। प्रभु के परम कोमल शरीर को कितना कष्ट पहुँचता होगा, यह सोचते हुये उनके नेत्रों से अश्रु गिरने लगा और उनके पास एक नया कम्बल था, धीरे से प्रभु जी के ऊपर डाल दिया। योगी पुरुष निद्रा में कभी शयन नहीं करते। उठते-बैठते, सोने-जागते वह अपने स्वरूप के ध्यान में रहते हैं। मेरे श्री गुरुदेव जी ने तत्काल वह उढ़ाया हुआ कम्बल हटा दिया। माता जी को कहीं ठेस न पहुँचे, अतः इशारे से कहा, आप हमारे नियम के विपरीत प्यार मत करिये। हमको ऐसे ही आनन्द है।

महापुरुष के प्रत्येक कर्म महान होते हैं। वह जो कुछ भी लीला करते हैं, किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सच्चाई से करते हैं। उनको दिखावे से कोई प्रयोजन नहीं रहता।

"आत्मज्ञः शोकसंतीर्णो न बिभेति कुतश्चनं"

आत्मवेत्ता शोक से पार होकर किसी से भी भयभीत नहीं होता।

हृदयात्संपरित्याज्य सर्वं वासना पक्तयः।

हृदय से सम्पूर्ण वासनाओं की पंक्तियों के समूहों का स्मरण हो जाता है। महान पुरुष दृढ़ संकल्पी और निश्चयी होते हैं। एक बार आपने सुना था कि सवा लाख बेल-पत्र पर राम-राम लिखकर उनको काटकर, आटे में गोलियाँ बनाकर मछलियों को खिलाने से भगवान श्यामसुन्दर तत्काल ही प्रकट हो जाते हैं। आपने एक दिन में ही सवा लाख बेल-पत्र गिनकर भगवान के चरणों में चढ़ाया और आठ दिन के अन्दर ही सवा लाख राम-राम लिख कर गोली बनाकर मछलियों को खिलाया। आपका हृदय परम सरल, उदार और सत्य था। सत्य प्रतिज्ञा और सत्य स्वरूप होने के कारण उस ईश्वर के लिये जो कुछ भी करना पड़ेगा, करने को तैयार रहते थे। जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ साधना और नियम में भी कष्ट नहीं प्रतीत होता। विना प्रेम के सेवा कष्टप्रद होती है। उसमें आकर्षण और सफलता नहीं होती।

आप वाणी के द्वारा भगवान के नाम का ही गान करते थे। कान के द्वारा उन्हीं के गुणानुवाद सुनते थे, नेत्रों से उन्हीं का दर्शन करना चाहते थे। उसी दर्शनानुभूति के लिये नाना क्रियायें थीं। जिस मधुपति की मधुर महिमा का गान नाना संत महापुरुष योगी यति, भगवान शंकर, विष्णु तक करते आये हैं, उन्हीं का आप अंग संग प्रतिपल चाहते थे।

एक बार आपने ४८ घंटे का अखण्ड कीर्तन रखा था। कीर्तन मंडली तो आई हुई थी, लेकिन आपने स्वयं अपने मुखारविन्द के द्वारा कीर्तन करने का विचार कर लिया। आप ४८ घंटे तक एक आसन से बैठें रहे, थूक भी नहीं निगला कि कहीं मुंह से नाम का लेना न रुक जाये। ज्येष्ठ का महीना था। भीमसेनी एकादशी थी, जल वैसे भी नहीं पीना था। एकादशी के दिन निर्जल व्रत रहते थे।

जिसको लगी है लगन घनश्याम की ।
नैना में निंदिया आये कहाँ ॥
दिल बना हो परवाना उस श्याम का ।
सुहाये उसे रहना और कहाँ ॥

नैंनों में निद्रा नहीं बल्कि श्याम ही श्याम नाच रहे थे । रात्रि में ऐसा प्रतीत हुआ मानो पायल की ध्वनि झंकरित हो रही है, आप कानों से उस मधुमय झंकार को सुनते रहे । लेकिन कुछ देर पश्चात् झंकार बन्द हो गई । भगवान राधाकृष्ण का बहुत बड़ा चित्र रखा हुआ था, स्पष्ट मालूम पड़ा कि बाहर की खिड़की से सूर्य-रश्मि के सदृश तेज प्रकाश भगवान के चित्र पर पड़ रहा है । आपने पीछे मुड़ कर देखा, कुछ नहीं दिखाई पड़ा, फिर चित्र पर देखते रहे, ऐसा प्रतीत हुआ मानो भगवान खिलखिला रहे हैं । थोड़ी देर में प्रकाश विलीन हो गया । अघे की तरह और लोग बैठे रहे । दूसरे दिन अनुष्टान पूर्ण हुआ । आपकी जिभ्या फूल कर एकदम दुगनी हो गई थी, क्योंकि जल भी नहीं पिया था, थूक भी नहीं निगला था । अनुष्टान समाप्त होने पर अन्य भक्तों से पूछा कि रात्रि में आप लोगों को कुछ लीला का दर्शन हुआ । लोग आश्चर्य से आपके मुखारविन्द को देखते रहें ।

भगवान के प्रेमी जनों की गाथा ही अलौकिक होती है । वह आटे में सने जल के सदृश उनमें मिले रहकर भी अलग से सुकृत्यों को करते और कराते हैं । ऐसे प्रेमी भक्त तीर्थों को भी सुतीर्थ कर देते हैं, कर्मों को सुकर्म बना देते हैं एवं शास्त्रों को सत्शास्त्र बना देते हैं ।

तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि,
सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ।
"स्वयं तीर्णा: परान्तारयति"

स्वयं तर कर तीर्थ बनकर अन्यों को तारने के लिये तीर्थ बन जाते हैं । क्योंकि अपने जीवन में वह सदा आदर्शमय कर्म करते हैं । कभी उनके द्वारा ऐसा कर्म नहीं होता जिसके फलस्वरूप लोगों के मन में भगवान के प्रति अश्रद्धा जाग्रित हो । श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु जी एकनिष्ठ, सद्शास्त्रों के

पूर्ण अनुयायी थे। एक बार आपने किसी ब्राह्मण के द्वारा, एक वर्ष के लिये कुछ धार्मिक कृत्य के अनुष्ठान को संपादन करने का संकल्प करा। पंडित जी महाराज बड़े ही सात्विक और अच्छे थे। कुछ काल तक अनुष्ठान की क्रिया सुचारु रूप से चलती रही। कुछ दिन पश्चात् विघ्न पड़ना प्रारम्भ हो गये। मंदिर के साथ ही बड़े राजा साहब की कोठी थी। पंडित जी उन्हीं की अधीनता में रहते थे क्योंकि जिस स्थान में गुरुदेव जी की तपस्या स्थली है, वह सब राजाओं का ही बसाया हुआ निजी स्थान है। गर्मी के दिन में वह घूमने के लिये पहाड़ पर जा रहे थे, साथ में पंडित जी को भी जाने को कहा। बेचारे पंडित जी बड़े ही असमंजस में पड़ गये। करें तो क्या करें? एक ओर राजाज्ञा दूसरी ओर 'संत' आज्ञा। उन्होंने संत आज्ञा से अधिक राजाज्ञा को महत्व दिया।

पंडित जी महाप्रभु के पास गये और बोले कि मुझे राजा साहब के साथ बाहर पहाड़ पर जाना है, आप अपना अनुष्ठान किसी से करवा लीजिये क्योंकि राजा साहब की आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है।

महाप्रभु ने उत्तर दिया—आप पहले यह बताइये कि इस विषय में शास्त्र क्या कहता है? एक बार एक पंडित को अनुष्ठानिक क्रिया के लिये वर्णित कर लेने पर अनुष्ठान पूरा न होने के पूर्व ही क्या बदला जा सकता है? आप विद्वान पंडित हैं। हम तो छोटे से बालक हैं, अभी-अभी ईश्वर के मार्ग पर आये हैं। यदि शास्त्र अनुमति देता है तो आप निश्चय राजा साहब के साथ जाइये। अन्यथा यदि आप बिना शास्त्राज्ञा के जाते हैं, तो इसके पाप के भागी आप ही बनेंगे।

पंडित जी ने कहा—शास्त्र तो आज्ञा नहीं देता, लेकिन जीविका बाध्य कर रही है। राजा साहब के साथ न जाने पर वह मुझसे नाराज हो जायेंगे और जीविका का साधन समाप्त हो जायेगा।

महाप्रभु ने कहा—"धर्मोरक्षति रक्षितः" आप विद्वान हैं, क्या आपने नहीं पढ़ा कि जो धर्म का पालन करता है, उसकी रक्षा धर्म करता है। आप

धन के लिये धर्म को खोने को तैयार हैं । पहाड़ पर साथ कोई भी जा सकता है, लेकिन अनुष्ठान की क्रिया प्रत्येक नहीं करा सकता ।

आपके सत्य वचन को सुनकर पंडित नतमस्तक हो गया और आपके हृदय-स्पर्शी वचन को सुनकर पंडित की भावनायें वदल गई । गुरुदेव भगवान की सत्यता से वहुत ज्यादा प्रभावित हुआ और अनेक विपरीत परिस्थितियों का सामना करके भी अनुष्ठान को पूर्ण कराया । इसीलिये श्रीमद्‌भागवत में धर्मराज युधिष्ठिर विदुर जी से कहते हैं, सत्पुरुष जिस कर्म को करते हैं, उसमें चार चाँद लगा कर अनेकों का पथ वना देते हैं जिस पर चलने से लोग सुगमता के साथ ईश्वर तक पहुँच सकते हैं । शास्त्रों के जाल में भटकने वाले भक्तों को शास्त्रों के सार को निकाल कर उस पर चलकर एक सुनिश्चित मार्ग को निर्धारित कर देते हैं ।

भगवान गुरुदेव केशवानन्द जी का सत्संग—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रा रूढानि मायया ।। गीता १८।६१

ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय-देश में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर अपनी प्रवल माया से समस्त प्राणियों को परतन्त्र कठपुतली की भाँति घुमाकर अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त कर रहा है । लेकिन वह महापुरुष पूजनीय है जिसने हृदयवासी प्रभु को प्रकट करके जगत में लोक-कल्याण हेतु विचरण करते रहते हैं । आत्मप्राप्त महापुरुष का मिलना अति दुर्लभ है ।

"दुर्लभं मन्ये वैकुंठ प्रिय दर्शनम्"— श्रीमद्‌भागवत—ऐसे रत्नवत महात्मा महापुरुषों का दर्शन वैकुंठ में भी दुर्लभ होता है । ऐसे महापुरुषों को पहिचानना भी अति दुर्लभ हो जाता है । राजा रहुगण जैसे विद्वान एवं जिज्ञासु पुरुष भी प्रच्छन्न वेषधारी अवधूत शिरोमणि जड़ भरत को पहचान नहीं सके । लेकिन जब पहिचान गये तब शरणापन्न हो गये और उनके ज्ञानोपदेश से उनका जीवन कृतकृत्य हो गया । ज्ञान-नेत्र खुल गये । वीतराग परमहंस, अवधूत शिरोमणि मेरे भगवान गुरु की दिव्य लीला थी, दिव्य ज्ञान था । उस सुधा का पान करने वाले बहुत थे, चारो ओर से उस तत्वज्ञ-

रत्न को भक्तगण घेरे रहते थे, लेकिन वह हर समय एक स्थान में कहाँ उपलब्ध होते थे। वह आत्मा के बादशाह थे, जिस समय जहाँ मन लगता था संकल्प मात्र से पहुँच जाते थे। समय पर साधारण से साधारण बन जाते थे। जब स्वरूप का बोध कराना होता था मेरे गुरुदेव नारायण महाप्रभु जो उनके अंग थे दृष्टि उठा नहीं पाते थे, इतना तेज उनके नेत्रों से प्रसारित होता था। आप चारों वेदों के ज्ञाता परम पुरुष थे। आपको समस्त शास्त्र कंठाग्र थे। जिस समय गुरुदेव नारायण महाप्रभु को किसी बात को हृदय में बिठाना होता था आप अनेक ग्रन्थों को उनके समक्ष रख देते थे और कहते थे- बेटा ! इस ग्रन्थ के इस श्लोक को, इस ग्रंथ के इस श्लोक को देखो। रखे हुये सभी ग्रन्थों के निश्चित श्लोक खुलवा कर कहते थे—बेटा ! आप सब पुस्तकों के श्लोकों को पढ़ो। देखो इसमें क्या लिखा है? कभी-कभी आप कहते— बेटा ! आप पढ़ी पढ़ाई अपनी विद्या को भूल गये हो। देखो हम एक बार दिखला देते हैं, आपको याद आ जायेगा।

सत्संग प्रसंग चलता रहता था। बीच में ही बोलकर आप कहते—बेटा ! आप तो कृष्ण हो, आप कैसे अपने को भूल गये। देखो बेटा ! हम तो इस शिवकोटि ग्राम में २० वर्ष पूर्व ही आपको ढूँढ़ने आये थे, उस समय तो आप छोटे बच्चे थे, हिमालय की तराई में अपनी बाल-सुलभ लीला से सबको आनन्दित कर रहे थे, इसीलिये हम यहां से लौट कर चले गये। जब हमने देखा अब तो बाल्य लीला समाप्त हो चुकी और जो कुछ भी लीला करने के लिए आप आये थे वह भी पूरी होने वाली है इसीलिये हम आपके सन्यास धारण करने के ६ मास पूर्व ही यहां आये थे। कुछ दिन यहाँ गुफा में रहे फिर बाहर विचरण करने लगे। हमको तो आपके संग भविष्य में होने वाली समस्त घटनाओं का पता था।

श्री नारायण प्रभु गुरुदेव बड़े ही ध्यान से भगवान गुरु की महावाणी को सुनते रहते थे। वह जो कुछ भी अपनी महावाणी से कहते थे आप बड़ी ही लगन से सुनते रहते थे। दादा गुरु आपसे दिन भर अद्वैत शास्त्र के ग्रन्थों को सुनते रहते थे। वह बड़े ही खिलाड़ी थे, कभी-कभी महाप्रभु शास्त्रों को

पढ़ते-पढ़ते प्रभु दर्शन के लिये विकल हो जाते थे। समस्त ग्रन्थों को एक कोने में रख देते और कहते आप अभी फौरन हमको भगवान से मिलाइये। आप सर्वं सामर्थ्यवान हैं, जो चाहे आप कर सकते हैं। हम इतना ही चाहते हैं कि भगवान श्यामसुन्दर हर पल हमारे सामने रहा करें। एक पल के लिये भी विलग न हों। हमको थोड़ी देर के लिये उनके प्रकाश का दर्शन या झांकी का दर्शन नहीं चाहिये। उससे हमारी तृप्ति नहीं। दादा गुरु कहते—बेटा! बस अब भगवान आपके पास आने ही वाले हैं। एक दिन आप अपनी चादर तथा कुछ पुराने कागजों को लेकर भगवान दादा गुरु के पास गये और चादर तथा कागजों को जला दिया और कहा—"गुरुदेव! देखिये हमने आपके कागजों को तथा अपनी चादर को जला दिया, भगवान का अभी दर्शन प्रकट कराइये, हमारे साथ उनको रहने को दीजिये, नहीं तो हम संसार में रहना ही नहीं चाहते।" दादा गुरु बोले—"बेटा! बहुत ही अच्छा काम किया, कितनी बड़ी गुरु की सेवा हो गई। सब मच्छर भाग गये। रात्रि को आनन्द से निद्रा आयेगी। जाओ बेटा, आप भी आराम करो। दिन भर एक आसन से आप बैठे रहे, थकाई लगती होगी। श्यामसुन्दर बस आ ही रहे हैं।"

कभी-कभी आपको विशेष कर्म की ओर झुके देखते तब भगवान केशवानन्द जी कहते—बेटा! आप तो कर्मों की बेड़ी को काट चुके हो, आप निष्कंचन निर्गम पुरुष हो। आप माया के खेल में अपनी जानी, समझी एवं करी हुई क्रियाओं को भूल गये हैं, हम तो केवल उसको याद दिलाने के लिये बीच-बीच में आपके पास आ जाते हैं। यह मन बड़ा भयंकर है बेटा! बल्कि समुद्र का पान करना, सुमेरु को उखाड़ना सरल है, इस मन को जीतना कठिन है। यह मन ज्ञान के द्वारा वशीभूत किया जा सकता है। ब्रह्मज्ञानी, तत्वज्ञ गुरु के द्वारा ब्रह्म अभ्यास करना चाहिये। आप अध्यात्म गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त करो। आप उत्कट वैराग्य के स्वरूप तो हो, लेकिन उस वैराग्य को ज्ञान के द्वारा अभ्यास में लाना चाहिये जिससे वह चिर स्थिर रहे। मानव का मन मदमत्त हाथी के सदृश है। उसके लिये तत्वज्ञ ब्रह्मनिष्ठ गुरु का अंकुश अनिवार्य है।

महाप्रभु कहते—"गुरुदेव ! मुझे तो जगत की कोई इच्छा नहीं है। मुझे तो केवल श्यामसुन्दर का संग चाहिये। उनके लिये ही हमारे मन में अशांति है और कोई भी अशांति का कारण नहीं है।"

शान्त स्वरूप कल्याणमूर्ति दादा गुरु कहते, "बेटा ! जब तक तत्व ज्ञान नहीं होता तब तक चित्त की शान्ति कहाँ और जब तक चित्त की शान्ति नहीं तब तक तत्व ज्ञान भी नहीं होता। चित्त की तभी शान्ति होगी जब मन चारो ओर से उपराम हो जायेगा, केवल गुरु के उपदेश में ही मन लगायेगा, उनकी आज्ञा का पालन करेगा, उनके आदेशानुसार चलेगा। अपने मन की कोई भी साधना में गुरुसेवा छोड़ कर रत नहीं होना चाहिये। त्याग का भी त्याग होना चाहिये। इस प्रकार सतत निर्वासनिक होने से जब मन का मनत्व नष्ट हो जाता है, उस काल में जीव को परम शान्ति प्राप्त करने वाली अमनी अवस्था उदय होती है।"

भगवान गुरुदेव परमहंस केशवानन्द जी महाराज का सत्संग आपको बराबर नहीं मिलता था। वह कभी-कभी पधार कर ज्ञान का छींटा देकर विस्मृत ज्ञान का स्मरण करा कर कल्याणपूर्ण लोक-कल्याण के हेतु मन के बादशाह जहाँ इच्छा होती चल देते थे।

भगवान दादा गुरु का दर्शन करते ही महाप्रभु ने मंत्र दीक्षा नहीं ली थी। जैसे वे तत्वज्ञ गुरु थे वैसे ही ये तत्वज्ञ शिष्य थे। यह भी कोई साधारण गृहस्थी जीव तो नहीं थे। एक वर्ष तक भगवान दादा गुरु को मथते रहे। एक वर्ष के पश्चात एक दिन रात्रि भर आपको निद्रा नहीं लगी, बार-बार मन कहे, तुमको धिक्कार है, अभी तक तुम ऐसे मुक्तात्मा की परीक्षा ही करते रहे, कब तक परीक्षा करते रहोगे, उनको रघुनाथ समझते हो, आज तक उस रघुनाथ के चरणों में आत्म-समर्पण भी नहीं किया। सारा संसार जिसका यशोगान कर रहा है, चरणों की धूल लेने को तरसता है, एक वर्ष बीत गया, तुमने चरणों तक का स्पर्श नहीं किया। आत्म-ग्लानि से रात्रि भर आप पीड़ित रहे। प्रातः होते ही आपने मंत्र दीक्षा लेने के लिये पूजन सामग्री तैयार करवाई। विधि विधान से पूजन करके भगवान केशवानन्द जी

से करबद्ध आग्रह किया कि प्रभो, आपके हम शरणागत बालक हैं, आपही जीवन के सहारे, भँवर में उतराती नैया के खेवनहारे हैं। आप मेरे ऊपर कृपा करके मुझे गुरु मंत्र दीजिये।

आपकी प्रार्थना पर भगवान केशवानन्द जी महाराज ने आपको मंत्र दिया। भगवान गुरु क्या ऐसे शिष्य को अपना बनाना नहीं चाहते थे। जिस शिष्य की बीस वर्ष से खोज थी, उसके समीप आने पर आप भी ज्ञान देकर ही क्यों छोड़ देते। यह विषय सच्चे गुरु और अधिकारी शिष्य का गूढ़ विषय है जो साधारण लोगों की समझ के परे है।

ज्यों-ज्यों गुरु के सत्संग का सहवास प्राप्त होता गया आपका चित्त शान्त होता चला गया। आपका मन अमन हो गया। अज अनादि और सम परमात्मा तत्व में अभेद रूप स्थिति होने लगी।

दुख क्या है?—विषय भोगों की कामना ही दुख है—"दुःख काम सुखापेक्षा" (श्रीभा० ११।१९।४१)। अपने प्रतिकूल को दुख कहते हैं, अनुकूल को सुख कहते हैं। ईश्वर जो करता है सब अच्छा ही करता है। ज्ञानी पुरुष के लिये दुख सुख समान होता है क्योंकि वह इस बात को जानते हैं कि बिना ठोकर खाये चोट के दर्द का अनुभव नहीं होता। प्रत्येक दुख के पीछे सुख रहता है। पतझड़ न आये तो वृक्षों में नये पल्लव भी न हों। यदि शरद न आये तो बसंत का मन लुभावना मौसम कैसे आये? ज्ञानी सब स्थिति में समान रहता है। श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु जी को ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में भी नाना आपदाओं को सहना पड़ा। लेकिन आप अपने ऊपर जगत के सारे प्रपंच को लेकर भी अपनी निष्ठा और भक्ति से नहीं डिगे।

८३ वर्ष के भगवान केशवानन्द जी महाराज और उनकी पोती की अवस्था के आप, लेकिन जगत की दूषित तामसिक बुद्धि को कोई क्या कह सकता है। कहाँ गुरु कहाँ शिष्य की परम पवित्र भावना गंगा की धवल कीर्ति के समान निर्मल चरित्र। आप २२ वर्ष के वह ८३ वर्ष के। लोगों ने बहुत कुछ कहा और समझाया, लेकिन महाप्रभु साधारण घर की घरेलू नारि तो थे नहीं। आपने संदेश देने वालों को स्पष्ट कह दिया, यदि हमको उनकी सेवा भक्ति

करने से ईश्वर की प्राप्ति होती है तो हम हर प्रकार से उनकी सेवा करने को तैयार हैं। संसार हमारा क्या करेगा। वह हमको वना नहीं सकता, हमारे कष्टकर मानसिक सन्ताप का निवारण नहीं कर सकता। जिसको जो कुछ कहना हो कहो, हम गलत काम कर नहीं रहे हैं।

तारे जितने गगन में, शत्रु भी उतने होय।
कृपा होय रघुनाथ की, वाल न बाँका होय।।

आपके रोम-रोम में आत्म-वल भरा हुआ था। आप वड़ी वीरता और कुशाग्र वुद्धि के साथ समाज का सामना करते थे। भय तो आपमें था ही नहीं। सत्संग का कार्यक्रम तो वरावर चलता ही रहता था। समय-समय पर भीड़-भाड़ भी बहुत हो जाया करती थी।

प्रभु की तपः स्थली राना महल के वीच में ही थी। एक वार कुछ लोगों ने आपसे कहा, भगवान का भजन आप करते हैं वह करिये। आपकी इतनी अल्प अवस्था है, अन्य लोग क्यों सत्संग में आते हैं। इनको आने से रोक दीजिये। आपने सोचा, हमको भक्ति करने से रोकने के लिये ऐसा सन्देश आया होगा। दूसरे दिन सत्संग का समय हो गया, आप अकेले वैठे हुये थे, एक वृद्ध दासी सेवा में रहती थी, उसने आकर कहा—देखिये वाहर का दरवाजा वन्द कर दिया गया है, लोग सत्संग में कैसे आयें। आप वोले—ठीक है, दरवाजा बन्द होने दो। हम सवको भीतर लेकर आते हैं। चूना पोतने वाली एक सीढ़ी वहाँ पर पड़ी हुई थी, आप उसी के द्वारा छत पर चढ़ गये। छत पर चढ़कर भक्तों से कहा, आप लोग मत घवड़ाइये। हम अभी सवको ऊपर चढ़ा कर भजन करेंगे और करायेंगे, देखें कौन हरि भजन करने से रोकता है? आपने एक धोती नीचे लटका दी और कहा—इसी को कमर में बाँधिये, हम एक-एक को ऊपर चढ़ा लेते हैं। जब दरवाजा वन्द करने वालों ने आपकी ऐसी दृढ़ता, उत्साह, हरि चरणों के प्रति सच्ची प्रीति और विश्वास देखा तो दरवाजा खोल दिया। सत्य के समक्ष सवको झुकना पड़ता हैं। सत्य किसी एक की सम्पत्ति नहीं है। वह सार्वजनिक सम्पत्ति है। उसको जो अपनाता है, उसका विश्व हो जाता है और वह विश्व का हो जाता है।

परमहंस गुरुदेव को अपनी खोई हुई वस्तु को पा जाने से परम संतोष था, क्योंकि उन्होंने अपनी सम्पत्ति का एक अधिकारी तत्वज्ञ पुरुष प्राप्त कर लिया था। सद्‌गुरु जन संसार से प्रयाण करते समय, अपनी तत्व-निधि को किसी ऐसे को दान करके जाते हैं जो उनका प्रतिरूप हो। जैसे भगवान श्याम-सुन्दर ने जब बैकुण्ठ धाम पधारने का पूर्ण निश्चय कर लिया तब उन्होंने उद्धव को बुलाया और अपनी दिव्य शक्ति एवं तत्व का उनकी आत्मा में प्रवेश कर कहा—"हे उद्धव, हमने अपनी गूढ़ातिगूढ़ यौगिक शक्ति एवं तत्व ज्ञान के गूढ़ अनमोल रहस्य का तुमको बोध करा दिया। अब तुम इसी तत्व के संयोग से जगत में मेरी भक्ति तथा ज्ञान का प्रसार करना और जीवों का कल्याण एवं उद्धार करना।

प्रभु का लालन-पालन बड़े ही मर्यादा में पाला-पोसा गया था। आप अति ही सरल एवं कोमल प्रकृति के थे। सच्चाई आपका विशेष गुण था। दादा गुरु कहते थे—बेटा! ईश्वर सच्चाई से रीझता है, तुम्हारी सच्चाई के कारण बार-बार भगवान आपसे भेंट करने के लिए आता है, लेकिन जब आप उसको नहीं पहिचान पाते तब वह लौट कर चला जाता है, उस पर आप कहते थे, अब जब वह आयेगा तब आप हमको बतला दीजियेगा। दादा गुरु जैसी खेल की गूढ़ बातें करते थे आप भी वैसी ही गूढ़ बातें कह देते थे। आपके अल्प सत्संग से ही आपकी आत्मा कहने लगी थी, भगवान रघुनाथ मेरे लिये ऐसे छिपे वेष में आये हैं। कभी-कभी उनसे आप कहते थे—गुरुदेव! आप अपना दर्शन छिपाते क्यों हैं? सबको छलते क्यों हैं? दादा गुरु कहते थे, बेटा! आप अपनी आंखों से कह रहे हो न, अन्यों की आंखों को देखो, विचारों को मोतियाबिंद हो गया है। प्रभु कहते थे आप तो भव के वैद्य हैं, इनके मोतिया-बिन्द को काट दीजिये। इसपर दादा गुरु कहते—बेटा! सब अपने-अपने कर्मों की रज्जु से बंधे हैं। भोगी बुद्धि योगी को कैसे समझ सकते हैं। यह सब भव रोग के कीटाणु हैं, संसारी विषयों में सब लिप्त हैं, इनका मन अनुशासित नहीं है। जिसके आहार-विहार पर नियन्त्रण नहीं वह मन पर कैसे नियन्त्रण कर सकता है। बेटा! इनके लिये तो शुभ कर्म कराना ही श्रेष्ठ है, सर्व-प्रथम इनका चित्त तो शुद्ध हो।

प्रभु कभी-कभी बालकपन में कह देते थे कि अच्छा ! आपने हमको तो जन्मते ही ढूंढ़ना शुरू कर दिया था, इसीलिये हमारा मन ऐसा बनाकर हमें सन्यासी बनाया। दादा गुरु कहते, बेटा ! आप अपने स्वरूप को भूल गये तो क्या किया जाय, आप तो जन्म-जन्म से ही लोक के उद्धार के लिये आते रहे हैं और अब भी इसी के लिये आये हैं। उधर थोड़ी लीला का होना अनिवार्य था इसीलिये हमने जान समझ कर आपको उस लीला को पूर्ण करने के लिये वहाँ पर छोड़ दिया था। सिंह का बालक क्या सियार के मध्य रह सकता है ! मानव शरीर आज है कल नहीं है। परमार्थ विवेक किसी भाग्य-शाली को ही होता है। आत्म-तत्व को प्राप्त करना महा कठिन है। आपको तो जगत के प्राणियों को कर्म ज्ञान भक्ति के द्वारा शान्ति देना है। सांसारिक सुख तो तात्कालिक सुख है, यह राजस सुख परिणाम में दुख का हेतु होता है। संसार को इसी तत्व को समझा कर अनुभव कराना महापुरुषों का कार्य होता है और इसीलिये वह संसार में आते हैं।

प्रभु श्री गुरुदेव की महावाणी बड़े एकाग्र चित्त से श्रवण करते रहे। वार्ता समाप्त होने पर आपने भगवान दादा गुरु से कहा, "गुरुदेव भगवान, आप तो सर्वज्ञ हैं, त्रिकालदर्शी हैं, यह हमें पूर्ण निश्चय है। अब हमें यह बतलाइये कि हम पूर्व जन्म में कौन थे और क्या करते थे। भगवान दादा गुरु खिलखिला पड़ें। लेकिन आपके बहुत हठ करने पर आपने एक पुष्प दिया और कहा—बेटा ! आप इसको मस्तक के नीचे रख कर शयन करना, आपको अपने पूर्व जन्म का आभास हो जायेगा। रात्रि को आपने स्वप्न में देखा, एक घना जंगल है, चारो ओर जल प्रपात है, बीच में एक ऊँचा पर्वत है, उस पर्वत के और भी ऊपर एक श्वेत सुन्दर विशाल मन्दिर है। उस मन्दिर में शान्त प्रकाश है। पर्वत के मध्य चोटी में एक गौर वर्ण की श्वेत वस्त्र धारण करे हुये, तेज पुंज से आलोकित नारि उच्च सिंहासन में विराजमान है। कुछ लोग श्वेत वस्त्र पहने हुये उन सन्त देवी को हाथ जोड़े हुये हैं। वह देवि धीरे-धीरे उठी और ऊपर मंदिर के अन्दर गई। मन्दिर में प्रवेश करने

वैराग्य भाव में

के पश्चात वह विग्रह में लीन हो गई। तत्काल आपकी आंख खुल गई। प्रातः-काल जब ४ वजे गङ्गा-स्नान के लिये गये तो भगवान दादा की कुटी में दर्शन के लिये पधारे, साथ में रात्रि में देखे हुये स्वप्न की वार्ता सुनाई। भगवान दादा गुरु उस पर कुछ नहीं बोले, और कहा—बेटा! जाओ शीघ्र ही स्नान करो, आपको पूजा में देर होगी। गुरु आज्ञा में तत्पर महाप्रभु अपने नियम को करने के लिये चले गये।

भगवान गुरुदेव संवागी एवं सव के थे—लीला का कोई भेद नहीं पा सकता था। कहा गया है कि भक्तवत्सल भगवान कहीं तो दास बनकर पत्तल उठाते हैं, कहीं ठाकुर बनकर पुजवाते हैं। भगवान गुरुदेव में ऐसे गुण दृश्यमान होते थे। महाप्रभु की भक्ति का प्रथम वर्ष था। भगवान गुरुदेव ब्रह्म अनुभव कराने के लिए प्रभु को अपने साथ लेकर झूंसी की ओर गये थे। प्रभु तो किसी प्रकार की सवारी पर चढ़ते नहीं थे, वह पैदल ही गये थे, किन्तु भगवान गुरुदेव को उन्होंने सवारी के द्वारा पहले भेज दिया था। निश्चित स्थान पर पहुँचकर गुरुदेव ने प्रभु को सव स्थानों को दिखलाया, बाद में सबने वापस होने के लिए प्रस्थान किया। प्रभु ने कहा, "भगवान गुरुदेव, आप सवारी पर ही आगे-आगे बढ़िये, हम दो साथी के साथ पीछे से आ रहे हैं।" गुरुदेव ने ऐसा ही किया। थोड़ी देर पश्चात जब प्रभु आगे पहुँचे और चारों ओर दृष्टि डालने लगे, शायद हमारी प्रतीक्षा में कहीं बिराजे हैं, लेकिन भगवान गुरु का कहीं नाम निशान नहीं। चारों ओर आप देखते रहे कि आधा घंटे पूर्व ही चले थे, आखिर कहाँ चले गये। इन्हीं विचारों में आप आगे बढ़ते जा रहे थे कि एक दूकान से आप बोले—"बेटा, मैं तो यहाँ बैठा हूँ।"

उनको वहाँ बैठा हुआ देखकर प्रभु को बड़ा खराब लगा। उन्होंने पूछा—आपको यहाँ किसने बैठा दिया? चलिये। यहाँ क्यों बैठे हैं। गुरुदेव—"क्या करें बेटा! इस दुकान का मालिक अपने घर का अकेला है, मुझसे कहने लगा, बावा जी, मुझे भूख लगी है, यदि मेरी दूकान पर बैठकर आप थोड़ा रक्षा कर देते तो मैं भीतर जाकर रोटी खा लेता।' उसके दुःख को देखकर मैं यहाँ बैठ गया।"

प्रभु—"आप क्या दुकान में बैठने योग्य हैं ?" गुरुदेव भगवान सिर नीचे झुकाये चुपचाप सब बातों को सुनते रहे। इतने में ही दूकान वाला आ गया। उसने प्रभु की सब बातें सुन ली थीं। अब ! उनकी बातें सुनकर इस बात को समझ चुका था कि यह कोई बड़े महापुरुष हैं। आते ही उसने कहा—महाराज, क्षमा करियेगा। अपराध मैंने बड़ा भारी किया किन्तु असमर्थ समझकर आपको विश्वासपात्र समझ कर आप से आज अपनी दासता करवाई। गुरुदेव भगवान हँस पड़े। हलवाई को देखते ही तत्काल उठ पड़े। उसकी बात भी नहीं सुनी, जल्दी से चल पड़े। दीनदयालु होने का निर्मल स्वभाव पर छाप पड़ी। गुरु अनुभव के द्वारा शिष्य का स्वभाव बनाता है।

इसी प्रकार एक अनाथ स्त्री थी। वह भगवान गुरुदेव के चरणों में अत्यधिक रति रखती थी। उसका बहुत दिल करता था कि मैं भी भगवान गुरुदेव को कुछ भोग लगाऊँ, किन्तु अन्यों की विविध प्रकार की सेवा देखकर उसका कुछ भी साहस नहीं होता था। एक दिन भगवान गुरुदेव एकांत में बैठे हुये थे, सौभाग्यवश वह स्त्री भी आ गई। गुरुदेव भगवान को एकांत में देखकर उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उसने कहा, "भगवान गुरुदेव, मेरा बहुत दिनों से यह मन है कि मैं आपको कुछ भोग लगाऊँ, किन्तु मेरे पास सूखी रोटी दाल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मैं बहुत गरीब एवं अनाथ हूँ।" भगवान हंसने लगे और कहा, "कल खाना लाना, मैं खाऊँगा।"

दूसरे दिन प्रभु भगवान गुरुदेव को प्रसाद पवाने के लिये जब विनती करने गये तो गुरुदेव को जो कुछ करते देखा उससे उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान गुरुदेव मोटी-मोटी सूखी रोटी लेकर बड़े आनन्द से खा रहे थे।

प्रभु ने पूछा—"भगवान ! यह आप क्या कर रहे हैं। आपके दाँतों से यह सूखी रोटी कैसे टूटेगी ? किस प्रेमी भक्त की सूखी रोटियों का भोग लगा रहे हैं ? दीनबंधु ! आपका प्रसाद तैयार है। चलकर सेवा को ग्रहण करिये।" इसके पश्चात गुरुदेव ने कहा कि मैंने भोजन कर लिया है, पूर्ण रूप से संतुष्टी है। अब भोजन की इच्छा नहीं है।

वे ऐसी-ऐसी लीलायें करते थे कि प्रभु को बड़ा ही आश्चर्य होता था।

अतः उन्हें अपने हृदय में भगवान का स्थान देना ही पड़ा। उनमें ऐसे-ऐसे गुण प्रदर्शित होते थे जिससे हृदय बार-बार उन्हीं के पास जाता था। एक दिन की बात है, रात्रि को १० बज चुके थे। प्रभु अपने कमरे में अकेले ही थे। एक दासी सेवा के लिये सदा साथ रहती थी। प्रभु भगवान श्यामसुन्दर के विरह से विह्वल हो रहे थे। विह्वलता अपनी सीमा पर थी। अतः भगवान कहाँ हो ? कैसे मिलोगे ? कह-कह कर क्रंदन कर रहे थे।

इतने में किसी ने दरवाजे को खटखटाया। सर्दी की ऋतु थी। कठोर शीत पड़ रही थी। अतः दरवाजा बन्द था। रात्रि के १० बजे ऐसे असमय में दरवाजा कौन खटखटा रहा है। इससे आपको भय भी उत्पन्न हुआ। आपने पूछा, "कौन है ?"

गुरुदेव ने कहा, "बेटा मैं हूँ।" आपने दरवाजा खोल दिया। लेकिन मन में और आशंका बनी रही कि अर्धरात्रि में अपनी कुटी से यह कैसे पधारे ? क्यों पधारे ? गुरुदेव—"विह्वल क्यों हो रहे हो ? ईश्वर तुम्हारे पास पधारे हैं।" अंतर्यामी मन की बात समझ गये। अतः वह बोले, "बेटा, शंका छोड़ दो। ईश्वर तुम्हारे पास आता है किन्तु तुम उसको पहचानते नहीं। अतः वह चला जाता है। तुम उसको पहचानने का प्रयत्न करो। वह तुमसे मिल लेगा। आप उसको चाहते हो तो वह भी आपको चाहता है।" एक मिनट में इतना कहकर गुरुदेव भगवान अदृश्य हो गये।

नारायण प्रभु संज्ञा-शून्य से खड़े रहे, उनको कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था कि बिजली के सदृश यह क्या वस्तु चमक गई एवं विलीन भी हो गई। मन में सोचने लगे, इतने घोर अंधकार में आँख से न दिखाई देने वाले गुरुदेव की गुफा जो गंगा-किनारे थी वहाँ से यहाँ तक कैसे आ गये। उतनी दूर से यहाँ तक आना आश्चर्य की बात थी, परन्तु वह भगवान थे, उनके लिये सभी सम्भव था। हो सकता है मेरे लिये ही अपनी वृद्धावस्था दिखाते हैं क्योंकि यदि वृद्ध रूप न धारण करते तो हम इनसे ज्ञान कैसे प्राप्त करते। रुदन अपने आप बंद हो गया। विरह ताप विलीन हो गया। नाना प्रकार के विचार हृदय में मंडराने

लगे। मन का हलचल वंद हो गया था। सचमें यह भगवान ही हैं। भावना दृढ़ होती ही गई।

नारायण प्रभु तो स्वयं स्वरूप थे ही। उनको जगत में थोड़ी लीला का प्रदर्शन करना था। इसीलिये उन्होंने अनेक लीलायें कीं। यदि संस्कारी न होते तो इतनी जल्दी ही आत्मतत्व का वोध कैसे होता ?

भगवान दादा गुरु नित्य नई-नई लीलायें किया करते थे, जिसको साधारण मानव क्या समझे, वह तो उनका अधिकारी पात्र ही समझ सकता था।

परमहंस गुरुदेव की वालकवत प्रकृति थी, क्रोध करना तो आप जानते ही न थें। परम शांत ज्ञान सिंहासन पर आरूढ़ ज्ञान प्रदान करते रहते थें। प्रभु की अवस्था छोटी ही थी। वैराग्य से आपका हृदय दग्ध रहता था। एक दिन आपको भगवान गुरुदेव कुछ पढ़ा रहे थें। प्रभु ने कोई व्रह्म विद्या विषयक प्रश्न पूछा। गुरुदेव ने कहा, "बेटा, उत्तर कल वतायेंगे। अभी समय नहीं है।" आपने दूसरे दिन फिर उसी प्रश्न को गुरुदेव के सम्मुख रक्खा। किन्तु उस दिन भी आपने टाल-मटोल कर दिया, कई दिन हो गये। इसी प्रकार से वह टाल-मटोल करते रहे। प्रौढ़ावस्था का रक्त,एक दिन कुछ जोश सा आ गया। आपने कुछ व्यथा से कुछ जानकर भी कहा कि भगवान, आप नित्य कल-कल पर छाड़ देते हैं। कभी आपकी कल भी होगी। यदि आप आज भी नहीं वतायेंगे तो हम आपके सब कागजों को फाड़कर आग में जला देंगे।

भगवान गुरुदेव कुछ वोलते ही नहीं थे, आपने पुस्तकों में जो वेकार के रद्दी कागज थे उनको छांट-छांट कर जला दिया। जव आग निकलने लगी तव आपने गुरुदेव से कहा, "अव भी वतायेंगे कि नहीं ? मैंने सव पुस्तकों को जला दिया।"

गुरुदेव ने कहा, "वेटा, कोई हर्ज नहीं, वड़ा अच्छा हुआ। सव रद्दी कागज थे, जल गये। इन कागजों ने वेकार जगह घेर रक्खी थी। जगह भी साफ हो गई। अच्छा बेटा, ऐसे ही तो काम समाप्त करना चाहिये। जाओ अव आराम करो।" प्रभु को और भी खीज चढ़ी कि इनको तो कुछ लगता ही नहीं, फिर आप बोले, "यदि आज भी नहीं वतायेंगे तो हम अपने,कपड़ों को भी जला देंगे।" दादागुरु चुप रहे, फिर प्रभु ने कहा—"आप कैसे निष्ठुर हो ? दया नहीं आती।

आप हमारी पूछी हुई बात को क्यों नहीं बताते ?" दादागुरु तब भी चुपचाप सुनते रहे और आपकी परीक्षा लेते रहे कि ईश्वर दर्शन की कहाँ तक जिज्ञासा है। फिर आप बोले—"भक्तों की जिज्ञासा का निवारण नहीं करेंगे तो आप क्या करेंगे ?" भगवान गुरुदेव हंसते ही रहे।

प्रभु गुरुदेव के इस शांत स्वरूप का अवलोकन करके आवाक् से रह गये। उनको अपने संमुख साक्षात् ज्ञान स्वरूप रघुनाथ बैठे हुये दृष्टिगोचर होने लगे। एकदम आपको ऐसा आभास हुआ कि भगवान गुरु के चारों ओर प्रकाश-पुंज फैला हुआ है और वह धनुष बाण लिये हुये वीरासन से विराजे हैं। आप मौन होकर देखते रहे, कुछ समझ में नहीं आया। अभी तो साधारण वृद्ध के सदृश बैठे थे। एक पल में क्या हो गया। आप मौन हो गये। थोड़ी देर में झांकी विलीन हो गई।

गुरुदेव बोले, "बेटा ! तुम धन्य हो। तुम्हारे भाग्य की सराहना देवता लोग भी करते होंगे। धन्य है तुम्हारी जिज्ञासा को।" ऐसा कहकर उन्होंने पूछे हुये प्रश्नों का पूर्ण रूप से समाधान कर दिया।

भगवान गुरुदेव के प्रत्येक आचरण में गूढ़ता दृश्य थी। आप ज्ञान स्वरूप पूर्णातिपूर्ण परब्रह्म थे। कौन उनको समझता, पहचानता ?

झुंझलाना, बिगड़ना, आवेग में आना, क्रोध करना, उत्तेजित होना आदि स्वभाव का आपमें पूर्ण अभाव था। आप सब पर समान रूप से दया बरसाते रहते थे। आपके हृदय में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नहीं था।

एक बार प्रभु को गुरुदेव ने आज्ञा दी कि जिनकी-जिनकी इच्छा हो सबको माघ में त्रिवेणी जाने के लिये कह दो। प्रभु ने वैसा ही कह दिया। दरवाजे पर इक्के आकर खड़े हो गये, सबका सामान लद गया। प्रभु ने गुरुदेव से पैदल ही जाने की अनुमति माँगी एवं उनसे प्रार्थना की कि भगवान आप सवारी पर पधारिये। यह सब मातायें आपकी सेवा के लिये पहले से ही जायेंगी। दादागुरु बालक के सदृश भीतर ले गये और बोले—"बेटा ! खर्चे के लिये रुपये दो। त्रिवेणी में जाकर इक्के और रिक्शे वालों को कौन रुपये देगा ? मैं तो साधू हूँ, मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं है।"

नारायण प्रभु आपकी शक्ति को समझते थे कि इनकी क्या शक्ति है ? उन्होंने कहा, "यदि आप साधू हैं और आपके पास पैसे नहीं हैं तो मेरे पास कहाँ से आये ? हम तो बिल्कुल साधू हैं। हमारे पास तो एक कौड़ी भी नहीं है। आपने त्रिवेणी जाने की आज्ञा दी है, अब जहाँ से मन हो, वहाँ से प्रबन्ध करिये। दूसरी बात यह है कि केवल सवारी के प्रबन्ध से नहीं होगा। इन लोगों के भोजन आदि का भी सब प्रबन्ध करना आवश्यक है। मैं तो स्वयं आपके अवलम्ब पर हूँ।" प्रभु उनकी शक्ति से अनभिज्ञ नहीं थे, इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा था। गुरुदेव ने कह दिया—बेटी, इस बुड्ढे साधु को क्यों दुःख देती हो। मैं इस समय रुपये कहाँ लेने जाऊँ। बूढ़ों पर दया करनी चाहिए और आप काम लगा देती हो। महाप्रभु बोले, ठीक है, रुपये नहीं हैं तो मत चलिये। किसने कहा कि माघ में सबको बटोर कर ले चलिए। हम आपको जानते नहीं क्या ? किसी और के सामने आवरण डालियेगा। अब हमसे नहीं छिप सकते।

भगवान गुरुदेव ने उनकी बातों को झट से काटते हुये कहा—अच्छा एक मिनट उन लोगों को रोको। अभी मैं आ रहा हूँ। पाँच मिनट भी नहीं लगा होगा १००) का एक नोट लेकर आये, और बोले—बेटा, मैं वृद्ध हूँ, किसको भुनाने के लिये यह नोट दूँ, लो तुम इसको ले लो. किसी से भुनवा कर अभी काम चला लो, फिर देखा जायेगा। त्रिवेणी में पहुँचते ही उसी दिन १००) समाप्त हो गया। तत्पश्चात् दूसरे दिन ५००) देते हुये बोले—बेटा, इसी से काम चलाओ। उसके पाँच-छः दिन के पश्चात् प्रभु के घर से ५००) लेकर एक आदमी आ गया।

इसी प्रकार की वह अद्भुत-अद्भुत नवीन-नवीन लीलायें दर्शाते रहते थे। उनको समझना अति दुर्लभ था। वह सदा आत्मा में रमण करते थे। आत्मतत्व से भिन्न कुछ देखते ही नहीं थे। आकाशवत सर्वशक्ति से परिपूर्ण आवरण-शून्य थे। मन, वाणी और शरीर के द्वारा निःसंदेह उन्होंने किसी को अपने जीवन में कष्ट नहीं पहुँचाया होगा। वह निर्विकल्प पुरुष व्यवहार में ऐसा दिखाते थे जैसे कि नेत्रों में रोशनी ही नहीं है, बाहुबल की शक्ति क्षीण हो गई है। चरणों में चलने की क्षमता नहीं है।

एक बार का प्रसंग है कि भगवान गुरु विराजे हुये, श्री मेरे गुरुदेव नारायण महाप्रभु का सत्संग चल रहा था। इतने में एक वृद्ध संत पधारे, दादागुरु उनको देखते ही प्रभु से बोले—"बेटा ! महात्मा जी पधारे हैं, आप इनको आसन पर बैठाओ। बेचारे मुझसे भी ज्यादा वृद्ध हैं। सब प्रकार से असमर्थ हैं।" उनको बिठाया गया। सत्संग समाप्त होने के पश्चात् जलपान का यथोचित सत्कार किया गया। प्रभु गुरुदेव की लीला को कौन समझ सकता है ? उस दिन ऐसा संयोग पड़ा कि सभी सत्सगी भक्त लोग चले गये। रह गये भगवान दादागुरु, वृद्ध संत तथा महाप्रभु। दादागुरु बोले—बेटा ! अब इन संत जी को कौन पहुंचायेगा। यह तो बहुत वृद्ध और बहुत कमजोर हैं। हमारी कुटिया तक बिना सहारे के जा नहीं सकते। महाप्रभु तत्काल उठे और महात्मा के भेजने का प्रबन्ध करने के लिए चले गये। जब लौटकर आये, लौटकर आने में केवल पाँच मिनट लगे होंगे, आकर क्या देखते हैं कि न तो वहाँ दादागुरु हैं, न वह वृद्ध संत ही हैं। आप सोचने लगे, भगवान गुरुदेव किधर चले गये ? अपने आप तो वह पदत्राण भी नहीं पहिन पाते, फिर उस वृद्ध संत को किसने पदत्राण पहिनाया होगा ? प्रभु की कुछ समझ में नहीं आया। तत्काल उन्होंने एक सेविका को भेजा, देखो, गुरुदेव भगवान किधर चले गये, अन्धकार हो चुका है, कहीं मार्ग में गिर न पड़ें। आधे घन्टे पश्चात् वह दासी लौटी और हंसते हुये बोली, प्रभु ! भगवान गुरुदेव तो आनन्द से धुनी के पास बैठे हुये हैं। वृद्ध संत उनकी शय्या पर रजाई ओढ़े हुये मुंह ढक कर सो रहे हैं। महाप्रभु ने कहा, देखा तुमने भगवान गुरुदेव की लीला ? कहाँ तो इतना अधिक असमर्थ बनते हैं और कहाँ पांच मिनट में अपनी गुफा में पहुँच गये हैं। तुम जैसे लोगों को भी वहाँ तक पहुँचने में १५ मिनट लग जाते हैं। ऐसी-ऐसी अद्भुत लीलायें दिखाते रहते हैं कि तुम लोग तो इनको समझ ही नहीं सकती। फिर वह बोले, एक वर्ष पूर्व की तुमको एक घटना बतलाते हैं। एक दिन प्रातःकाल की बात है। हम बैठे हुये फूल की माला गूंथ रहे थे, तश्तरी में कुछ गुलाब के पुष्प रखे हुये थे, इतने में अचानक भगवान गुरुदेव पधार गये। हमने आसन पर उनको विराजित कर दिया और पुष्पों से भरी तश्तरी उनके समक्ष अर्पण करते हुये, हमने मन में

सोचा, यदि कभी साक्षात् भगवान राम पधारे होते तो हम उनके अरुण वर्ण के सुन्दर कोमल चरणों में इन पुष्पों को अर्पण करते और उनके सुकोमल कंठ में हार परम प्रेम से डालते। इतना भाव आने में केवल दो मिनट लगा होगा, और पुष्प की तश्तरी समक्ष रख भी दी। भगवान गुरु कोई साधारण पुरुष तो थे नहीं, वह अनेक प्रकार से अपने सर्वव्यापी स्वरूप का दर्शन कराकर उस स्वरूप का निश्चय कराना चाहते थे। अतः ज्योंही फूल देकर प्रभु अपने स्थान में बैठे, भगवान गुरुदेव बोले—बेटा ! तुम्हारे भगवान के चरण कितने सुन्दर थे। तुमने उनके कोमल चरण-कमलों में पुष्प क्यों नहीं चढ़ाया ? यदि उनके सुन्दर कर-कमल मिल जाते तो शायद प्यार के सहित एक पुष्प भी दे देते। ऐसे भगवान को शीघ्र ही प्रकट करके मुझे भी दर्शन करा दो। तुम उनके सुकोमल कंठ में हार डालते। बेटा ! तुम्हारे भगवान राम कहाँ हैं ? यह सुन कर प्रभु तो पाषाणवत हो गये। वह तो कुछ भी नहीं बोल सके।

इसी प्रकार अनेक घटनायें हैं जिससे नारायण प्रभु को गुरुदेव के अन्तर्यामी पने को देखकर उनके चरणों में लय होते जाना ही पड़ा। बुद्धि कभी-कभी उनके बाह्य रूप पर दृष्टि डालकर दूर होना चाहती भी थी किन्तु हृदय एक पल भी दूर नहीं हो सकता था।

भक्ति के प्रारम्भ होने के प्रथम वर्ष की बात है, प्रभु ने गुरुदेव को कुछ कह दिया था, भगवान गुरुदेव भक्तवत्सल को अपने सच्चे स्वरूप में लाने के लिये बिना बताये ही पीलीभीत चले गये (भगवान गुरुदेव का पहले का सत्संग स्थान)। दो-तीन दिन तक जब प्रभु को गुरुदेव भगवान का दर्शन नहीं हुआ, तब आप विरह से व्याकुल हो उठे। अतः गुरुदेव का पता लगाकर एक भाई को पीलीभीत उनको बुलाने के लिए भेजा एवं साथ में एक पत्र भी लिखकर दिया कि भगवान ! क्षमा करिये, हम ऐसी अज्ञानता की बात कभी नहीं कहेंगे। गुरु और शिष्य का जोड़ा एक सा ही था। न वह इनके बिना रह सकते थे न यह उनके बिना।

भगवान गुरुदेव की तो यह बन्दरघुड़की थी। भक्त भगवान को ढूँढ़ता है तो क्या भगवान भक्त को नहीं ढूँढ़ता ? भगवान भी अपने सच्चे भक्त की

उपासना करते रहते हैं। भगवान एवं भक्त में कोई अन्तर नहीं रहता। भक्त तो उन्हीं का स्वरूप है। वह उनका संदेश लेकर इस विश्व में उनकी महिमा करने के लिए अवतीर्ण होता है। यह कहना कि गुरु कोई दूसरी वस्तु है, भगवान कोई दूसरी वस्तु है, अज्ञानजनक ही होगा। भगवान ही विश्व के गुरु हैं। गुरु ही विश्व में रमे हुये भगवान हैं। जो अपने निज स्वरूप का दर्शन कराकर उस पद पर स्थित कर दे वही गुरु है।

मध्याह्न का समय था। श्रावण मास था। शिवकोटी में अष्टमी का मेला था। सत्संग के समस्त भक्तगण मेले के मनाने में लगे हुये थे। भगवान गुरुदेव, प्रभु एवं एक बुड्ढे सन्यासी ही सत्संग में थे। सारा सत्संग खाली था। गुरुदेव भगवान को जिसको शिक्षा देते थे, वहाँ उनके वह देवता थे ही। सत्संग हो रहा था। सत्संग को रोककर भगवान गुरुदेव ने कहा, बेटा! थोड़ा पान मँगवा लो। एक क्षण में ही एक दासी पान लेकर उपस्थित हो गई। प्रभु ने मन में सोचा, गुरुदेव, भगवान होकर पान खायेंगे? कहीं भगवान सत्संग के बीच में बैठकर पान खाता है? गुरु आज्ञा समझकर, आपने एक तश्तरी में पान रखा और गुरुदेव को देने लगे। दादागुरु ने कहा, बेटा! बाजार का पान है, इसमें चूना अवश्य ज्यादा होगा, हम पान नहीं खायेंगे। महाप्रभु ने कहा, भगवान, हम अभी चूना साफ कर देते हैं, आपने मँगवाया है, आप ग्रहण करिये। यह सुनकर दादा गुरु बोले—बेटा! कहीं सत्संग के बीच में बैठकर पान खाया जाता है, और तुम्हारा भगवान तो पान खाता भी नहीं। अच्छा बेटा! रहने दो, अब हम भी पान नहीं खायेंगे।

दादागुरु की सर्वज्ञता को देखकर आप चकित हो जाते थे। बुद्धि काम नहीं करती थी। मन में कुछ सोचा नहीं जा सकता उनके समक्ष। अलौकिक उनकी योग-शक्ति थी। धन्य थी उनकी विभूति और ऐश्वर्य जो आज तक उनकी सिद्ध पीठ से प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। गुरुदेव भगवान, परात्पर पारब्रह्म क्या थे और क्या हैं? वह बुद्धि-ग्राह्य नहीं हैं। वह कहते थे—यह समस्त जड़ चैतन्य में तुम्हीं तो हो। तुमसे भिन्न अणु मात्र भी नहीं है। अपने को सर्वगत, सर्व आत्म समझना चाहिये।

"वासुदेवः सर्वमिति"

निर्विकल्प समाधि निष्ठा के लिये, सम्यग् दर्शन रूप योग में युक्त होना चाहिये । तभी सच्चा आनन्द मिलता है एवं जगत का रहस्य समझ में आता है।

महाप्रभु तो अपने लक्ष्य पर चल ही रहे थे। उन्हें शरीर की कोई भी सुध नहीं रहती थो, लेकिन भगवान दादा गुरु भी कभी-कभी कितने कठोर बन जाते थे। एक आसन से पन्द्रह-पन्द्रह घंटे बैठाकर अद्वैत शास्त्रों को पढ़वाते रहते थे। न इनको भूख-प्यास का भान रहता था, न वह कभी कहते थे कि बेटा! आप प्रातःकाल ६ बजे से बैठे हो, रात्रि १० बज चुके हैं, जाओ जल तो पी लो। जब प्रभु की सेविका देखती कि अति हो चुका (माया की पुतली गुरु-तत्व को क्या समझती ? सोचती थी कि कितने निर्दयी बूढ़े हैं। इनको दया भी नहीं आती) जाकर कहती, गुरुदेव बहुत हो चुका, अब तो उठने की आज्ञा दीजिये। तब भगवान गुरुदेव अनजान बनकर कहते, अच्छा, बेटा ने जल भी नहीं पिया ? जाओ उठो, जल पियो।

श्री नारायण महाप्रभु की परीक्षा—

भगवान दादा गुरु की गुफा श्री महाप्रभु की तपःस्थली से लगभग ८ फर्लाङ्ग पर थी। नारायण प्रभु जी परम सत्यवादी एवं वचन के पक्के थे। आप अपने पीने का गंगा जल स्वतः ही भर कर लाते थे (एक ब्राह्मण के हाथ का पीते थे अन्य के हाथ का नहीं, कुछ ऐसा ही नियम चल रहा था, किंतु वह अशुद्धि में था)। एक छोटी एक सेर पानी आने लायक बाल्टी थी। जेष्ठ का मास था। असमय में महाप्रभु की ऐसी परिस्थिति पड़ गई कि वह गङ्गा जल ला नहीं सकते थे। एक ओर ब्राह्मण का भी अशौच का तीन दिन बाकी था। जल न पिये तीसरा दिन था, मुंह सूखने लगा, होंठ फूल गये, ज्येष्ठ की लू धूप असहनीय बह कर संसार को जलाये दे रही थी। भगवान दादा गुरु से क्या बात छिपी थी, वह सब जानते थे, लेकिन ऐसा नाटक रच दिया जैसे उनको

कुछ पता नहीं। उन्हीं की रची तो सारी लीला थी। महाप्रभु ने अपने दोनों हाथ रस्सी से बांध लिये, कहीं ऐसा न हो कि प्यास की तड़क सहन न होने पर वे सादा जल पी लें। सव को रोक दिया, उनके प्राण भले ही निकल जायँ, लेकिन किसी को अधिकार नहीं है कि वह मुख में जल की एक बूंद भी डाले। किसी भक्त से जव इस प्रकार का दर्दनाक दृश्य नहीं देखा गया तब वह भगवान दादा गुरु से जाकर बोली—आप इतने कोमल पुष्प जैसे शरीर के भक्त की कितनी परीक्षा लेंगे ? हर एक वस्तु की सीमा होती है। प्रभु की परीक्षा की अवधि पार हो चुकी। हम लोगों का तो हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। चलिये देखिये, तीसरा दिन बीतने लगा है, जल न पीने से होंठ फूल गये हैं, मुंह से राल निकलना तक वन्द हो गया है। दादा गुरु अनजान वन कर कहने लगे—अच्छा ! वेटा ने जल नहीं पिया, क्यों ? ऐसा कहते हुये आप महाप्रभु के पास पधारे और कहने लगे—वेटा ! जल नहीं पिया, कोई वात नहीं, सन्तरे का रस पी लो ! एक सेविका ने कहा, वह वाजार से अपने लिये कुछ मंगाते नहीं। भक्तों के लाये हुये भेंट को तत्काल- वांट देते हैं। दोनों ही आपका कठोर नियम है। दादा गुरु ने कहा—अच्छा ! ९ वजे तक वनारस से एक व्यक्ति एक टोकरा सन्तरा लेकर आ जायेगा, उसी का रस निकाल कर पिला देना। सवने सोचा था, दादा गुरु आज्ञा देकर जल पिलवायेंगे, पर आप तो केवल सन्तरे के रस को पीने के लिये कह कर चले गये। यदि वह चाहते तो तत्काल उनके संकल्प मात्र से सन्तरा आ सकता था। लेकिन वह सर्वज्ञ यह जानते थे कि महाप्रभु फल भी नहीं ग्रहण करते, दूसरे का स्पर्श किया हुआ जल भी नहीं पीते, अतः उनकी प्रतिज्ञा का भी योग क्षेम करना था, और जगत की मर्यादा को भी रखना था। सच में भगवान ने कहा है, अनन्योपासक सर्वस्वत्यागी भक्तों के लिये जो मैं अप्राप्त हूँ, योग के रूप में सर्वत्र सर्वदा प्राप्त हो जाता हूँ और क्षेम के रूप से सदा सर्वदा विद्यमान रहता हूँ अर्थात् अनेक उपद्रवों से रक्षा करने के लिये नित्य निरन्तर पीछे-पीछे घूमता रहता हूं। दादा गुरु के आते ही महाप्रभु के प्यास की तड़क विल्कुल शान्त हो गई। शरीर में एक नवीन चेतना जाग्रित हो गई। आपने तत्काल अपने

हाथ की बांधी हुई रस्सी खोल दी। जल मँगा कर स्नान किया। सायं-कालीन नित्य कर्म करने के पश्चात् आपको उस दिन जल्दी ही नींद आ गई। नित्य तो रात्रि में कई बार उठते थे। उस दिन तो दादा गुरु ने क्या माया डाल दी कि प्रातःकाल ठीक चार बजे ही आंख खुली। ज्यों गंगा जी जाने के लिए बाहर निकले, क्या देखते हैं कि एक व्यक्ति द्वार पर ही एक बड़ा सा टोकरा सिरा-हने रखे हुये सो रहा है। आपने उस व्यक्ति को उठवाया और पूछा—तुम यहां कैसे सो रहे हो। व्यक्ति शीघ्र ही उठा, दंडवत करने के पश्चात् बोला, प्रभो ! मै बनारस से आया हूँ, यह सन्तरे का टोकरा है। बनारस से थापा साहब ने भेजा है। मैं तो रात्रि ९ बजे ही पहुँच गया था, लेकिन मन्दिर का द्वार बन्द होने से मैंने खटखटाना उचित नहीं समझा और सो गया। महाप्रभु अवाक् हो गये, उसके वचनों से, क्योंकि दादा गुरु ने जो समय दिया था, उसी समय वह व्यक्ति पहुँच गया था।

श्री प्रभु जी की गुरु चरणों में दृढ़ निष्ठा थी। एक बार की घटना है। पौष का मास था। त्रिवेणी जाने की तैयारी थी। महाप्रभु सवारीं पर चढ़ते नहीं थे। अन्य साथ में जाने वाले भक्तों को सवारी पर भेज दिया। भगवान दादा गुरु ने कहा—"बेटा ! आप एक साथी को साथ में लेकर गंगा के किनारे-किनारे जाओ। हमको तो सवारी से आना है, समय पर पहुँच जायेंगे।"

महाप्रभु सायंकाल ६ बजे त्रिवेणी कैम्प में पहुँच गये। रात्रि १० बज गये, दादा गुरु भगवान की प्रतीक्षा सब लोग करते रहे, लेकिन गुरुदेव का कुछ भी पता नहीं चला। और ने तो चाय पी ली, लेकिन महाप्रभु ने मुंह में जल भी नहीं डाला। प्रातःकाल स्नान करते ही दो भक्तों को साथ में लेकर भगवान केशव को उस त्रिवेणी के मेले में ढूंढ़ने लगे। दस बज गये, पर आपका कहीं पता नहीं चला। उद्विग्न मन से आप किले की ओर से सोचते चले जा रहे थे कि भगवान गुरुदेव किधर छिप कर बैठ गये। इतने में आप क्या देखते हैं, भगवान केशव एक गरीब की कुटिया में से आधा मुंह बाहर निकाले हुये बोले, बेटा ! कहाँ जाते हो। यह देखो, हम तो यहाँ पर हैं। प्रभु जी ने उलट कर देखा, उनको देख कर आश्चर्य में डूब गये। यह क्या ? फटे चिथड़े

से बनाई हुई एक भीखमंगे की कुटी में आप बैठे हंस रहे हैं। महाप्रभु ने हाथ जोड़ कर उनको कुटी से बाहर आने के लिये प्रार्थना करी। भगवान केशव ने बाहर आकर कहा, क्यों बेटा! आपको क्या खराब लग रहा है? यह स्थान भी तो हमारा ही है। महाप्रभु ने कहा, ठीक है गुरुदेव! लेकिन आप वहाँ बैठेंगे तो हम लोग कैसे आपकी पूजा करेंगे, तथा आपकी सेवा भी कैसे होगी? महाप्रभु की प्रार्थना से दादा गुरु अपने कैम्प में पधारे। दूसरे दिन रात्रि को वहाना करके फिर बाहर चले गये। रात्रि प्रतीक्षा करते बीत गई, लेकिन आपका कुछ पता नहीं चला। प्रातः होते ही महाप्रभु को बड़ी बेचैनी सी हुई कि कहाँ ढूंढ़ने के लिये जायं? कैसे पता लगायें। उनकी पूजा आरती भी नहीं हुई। उनको बिना पूजा आरती करे आप जल भी नहीं ले सकते थे। पहले दिन वाले स्थान में देखा, न वहाँ वह फकीर था न जिस कुटिया में भगवान गुरु मिले थे वह कुटिया थी। महाप्रभु को बड़ा ही विस्मय हुआ तथा निष्ठा पर और भी अधिक वज्र जैसी निष्ठा की छाप पड़ती ही चली गई। भगवान गुरु को ढूंढ़ते हुये जब वह अपने कैम्प के पास आ गये तब आप क्या देखते हैं कि एक बहुत बड़ा अफसर कैम्प बना हुआ है। कैम्प के बाहर एक द्वारपाल सरकारी वर्दी को पहने हुये आपसे पूछने लगा, आप किसी महात्मा को ढूंढ़ रहे हैं क्या? महाप्रभु के भक्तों ने सब रूप-रेखा देते हुये बतलाया कि इस प्रकार के महात्मा जी हैं। द्वारपाल ने कहा, ठीक है, जिन महात्मा को आप लोग खोज रहे हैं वह यहीं पर हैं। आप भीतर चलिये। महाप्रभु ने कहा—हम तो भीतर नहीं जाते। एक दूसरे भक्त को आदेश देते हुये, द्वारपाल से कहा, यह तुम्हारे साथ जायेंगी। वह शिष्या भीतर गई, भगवान गुरु की राजशाही शान देखकर वह तो हैरान हो गई। एक ऊंचे सिंहासन पर आप विराजमान थे। चारों ओर बड़े-बड़े अफसर की तरह के लोग भूमि पर बैठे हुये थे। परस्पर में वार्तालाप हो रहा था। शिष्या को देखते ही गुरुदेव भगवान ने कहा—ठीक है, हम आ रहे हैं। ऐसी-ऐसी उनकी दिव्य लीलायें होती थीं, लेकिन महाप्रभु की निष्ठा ज्यों की त्यों रही। दिन पर दिन वह गम्भीर होते जा रहे थे।

एक दिन भगवान दादा गुरु ने कहा—बेटा, आप इतनी अल्प आयु के हो, बहुत बड़े धनी परिवार के हो, इसीलिये आपको अपनी मर्यादा में घर के अन्दर रह कर ही भक्ति करनी थी। प्रभु ने कहा—गुरुदेव ! हमें तो केवल भगवान से मतलब है। कुल की लाज और मर्यादा हमारा क्या करेगी। हमें जो ईश्वर से मिला दे वही हमारे लिये सर्वस्व है। ईश्वर की प्राप्ति के लिये जो कुछ भी करना पड़े हम करेंगे। गुरुदेव ने कहा—बेटा ! हम कहेंगे, हमारे साथ उसी रिक्शा में बैठ कर चलो तो आप चलोगे ? प्रभु बोले—बात करने से क्या लाभ ? आप रिक्सा बुला कर देखिये, चलते हैं कि नहीं ! एक दिन दादा गुरु ने कहा—"बेटा, यहाँ से थोड़ी दूर पर लाक्षागिरि नाम का छोटा सा तीर्थ-स्थान है, वहाँ पर पांडवों का लाख से बनाया हुआ किला मिट्टी रूप में अवशेष है। आप वहाँ पर चलो।" नाव मँगाई गई। भगवान दादा गुरु, अन्य भक्त जन और महाप्रभु ने दर्शन के लिये प्रस्थान किया। सब लोग सायंकाल पहुँच गये। दो-चार दिन के लिये वहाँ पर सत्संग तथा कीर्तन रखा गया। लाक्षा-गृह से तीन मील की दूरी पर रामपुर नामक जमींदारी है जो श्री प्रभु के पूर्वजों की ही थी। जमींदारी के काश्तकार प्रभु के प्रति बहुत ही आदर की दृष्टि रखते थे। एक दिन प्रातःकाल दादा गुरु ने कहा—"बेटा ! हम तो रामपुर जा रहे हैं, आप भी चलो।" महाप्रभु ने कहा, "गुरुदेव, हम तो सवारी में चढ़ते नहीं, वहाँ पर कैसे जायेंगे। दूसरी बात यह है कि हमको बस्ती के अन्दर जाने में रुचि नहीं है।" दादा गुरु ने कहा, "ठीक है बेटा, आप बस्ती में मत जाना, ग्राम के बाहर ही खेत-खेत में घूम कर आयेंगे।" ठीक १२ बजे का मध्याह्न था। महाप्रभु तो महाप्रभु ही थे, वह समझ गये कि गुरुदेव हमारी परीक्षा लेने के लिये यह सब लीला रच रहे हैं। उन्होंने गुरुदेव भगवान के लिये एक छाता, आसन और जल का कमण्डल अपने कर-कमलों में लिया, साथ में एक सेविका को भी।

जब तक बस्ती से दूर रहे तब तक गुरुदेव भगवान स्वयं अकेले ही तेजी से आगे-आगे बढ़ते रहे, और पीछे-पीछे महाप्रभु। जब देखा कि बस्ती समीप आने वाली है, झट से रुक कर बोले—"ओह ! कितनी धूप है ! बेटा ! हमको

छाता उढ़ाओ, छाता उढ़ा कर साथ-साथ चलो ।" जिसने बेच दी खोई उसका क्या करेगा कोई ? आप छाता उढ़ा कर चलने लगे । थोड़ी दूर आगे जाकर कहने लगे, आपको छाता उढ़ा कर चलने में यदि कोई दिक्कत का अनुभव होता हो तो छाता मत उढ़ाओ, हम अपने आप छाता ओढ़ लेंगे । महाप्रभु ने जब श्री गुरुदेव की यह बात सुनी तो आप तत्काल समझ गये कि आपके इस कथन में भी रहस्य है । अतः प्रभु ने कहा, ठीक है गुरुदेव, बड़े ही भाग्य से आज उढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । धन्य है हमारे इस जीवन को, आप जैसे तत्वज्ञ गुरु का हमको दर्शन प्राप्त हुआ । यदि आप जैसे तत्वज्ञ गुरु न प्राप्त होते तो शायद इस संसार में हम जीवित नहीं रह सकते थे । दादागुरु, मुस्करा दिये । ज्यों महाप्रभु ने अपनी दृष्टि ऊपर उठायी, आपने देखा, दादागुरु के नेत्रों से एक अद्भुत प्रकाश निकल रहा था, वह प्रकाश महाप्रभु के चारों ओर फैलता जा रहा था । आप कभी अपने अंगों को देखते थे कि यह क्या चारों ओर कैसा शीतल और तेज प्रकाश फैल रहा है । कभी दादागुरु के नेत्रों की ओर देखते । आपने तत्काल अपना मस्तक नीचे कर लिया कि यह कैसा दर्शन है ? थोड़ी दूर में देखते हैं कि ८५ वर्ष के दादागुरु महाप्रभु से बहुत दूर पर खड़े हैं ।

इस प्रकार की एक नहीं अनन्त लीलायें हैं एवं अनन्त घटनायें हैं । सत्संग का समय था, उस दिन आत्म-दर्शन का प्रसंग चल रहा था । महाप्रभु ने श्री गुरुदेव भगवान से कहा—"आप तो सर्व सामर्थ्यवान भगवान हैं, जो चाहें सो कर सकते हैं । इतनी गर्मी पड़ रही है, आप वृष्टि कर दीजिये । ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है । गुरु ईश्वर ही होता है तो आप जो चाहें सो कर सकते हैं ।" भगवान गुरुदेव ने कहा—"बेटा ! आप सच में ईश्वर मानते भी हैं ।" महाप्रभु ने कहा—"क्यों नहीं गुरुदेव ? जब भी आप चाहें तब आप परीक्षा ले सकते हैं ।" गुरुदेव ने कहा—"बेटा ! अभी तो आप में लोक-मर्यादा का भय बना हुआ है, आप गंगा स्नान करने जाते हो, तब भी आप जगत के भय से कुटी के बाहर खड़े होकर दूर से ही दंडवत करके चले जाते हो, हमारे पास आने के लिये, ज्ञान की बातें समझने के लिये आपको एक सेविका की आवश्यकता पड़ती है । फिर भगवान गुरु ने स्वयं ही कहा, ठीक है बेटा ! अपने

धर्म को इसी प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये। घोर कलिकाल आ रहा है। भक्तों को भक्ति करना मुश्किल हो जायेगा।" महाप्रभु ने कहा, भगवान आप अन्तर्यामी हैं, हमको आप में रघुनाथ का ही दर्शन होता है। बीच में ही बात को काटकर भगवान गुरुदेव ने आत्म-दर्शन के छूटे हुये प्रसंग को कहना प्रारम्भ कर दिया। श्री नारायण महाप्रभु की साधना-स्थली से दो फाटक पार करने पर एक विशाल नीम का वृक्ष था। उसी के नीचे सत्संग हो रहा था। सत्संग समाप्त होते ही अन्य भक्तगण प्रसाद लेकर ज्योंही बाहर निकले एवं सेविका सामान रखने मन्दिर में गई, त्योंही इतनी जोर से मूसलाधार पानी बरसने लगा कि प्रभु अकेले ही गुरुदेव के पास रह गये। प्रभु वहीं पर खड़े रह गये। मस्तक नीचे करके खड़े हुये थे। दादागुरु ने आवाज दी—बेटा ! प्रभु ने मस्तक ऊपर किया। दादागुरु बोले, क्या हुआ बेटा ! आपको अपने भगवान के पास अकेले में भय लगता है। प्रभु ने कहा—"नहीं गुरुदेव, हम तो अकेले चुपचाप खड़े वृष्टि बन्द होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" दादागुरु बोले— "बैठ जाओ बेटा ! अभी वृष्टि बन्द नहीं होगी, आपने ही तो कहा था वृष्टि करिये। जब वृष्टि होने लगी, तब उसके बन्द होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" महाप्रभु चुपचाप खड़े रहे, दादागुरु बोले—देखो बेटा ! भगवान आ गये। आपने स्तम्भित से ऊपर दृष्टि डाली, देखा दादागुरु के स्थान पर भगवान रघुनाथ की छवि का दर्शन हो रहा है। आप एक मिनट तक देखते हुये सोचते ही रह गये कि यह क्या ? अभी तो यहाँ पर दादागुरु विराजे थे। एक पल के बाद भगवान गुरुदेव के हंसने की आवाज आई। आपने देखा, भगवान गुरुदेव अपने स्थान में ज्यों के त्यों बैठे हुये हैं। अन्य दृश्य अदृश्य हो गया।

ऐसी दिव्य घटनायें नित्य नये-नये रूप से होती रहती थी।

एक बार श्री गुरुदेव भगवान लाक्षागिर पधारे हुये थे। महाप्रभु भी गये हुये थे। जाते समय तो सभी नाव से ही गये थे। लौटते समय वर्षा अधिक हो रही थी। भगवान गुरुदेव ने कहा—"बेटा ! सब लोग बस से जायेंगे, आपको भी सबके साथ बस से ही शिवकोटी जाना है।" महाप्रभु ने कहा—"गुरुदेव भगवान, हमको बस पर चढ़ने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। हम तो नाव से ही

भक्ति भाव से प्रभु जी

चले जायँगे।" दादागुरु ने कहा, बेटा ! इस समय नाव कहाँ मिलेगी ? अतः बस से ही चलना ठीक होगा। महाप्रभु नाव का पहले से ही पता लगवा चुके थे। गंगा के उस पार मल्लाह सहित चौरासी नाव खड़ी थीं, इसीलिये आपने कहा, गुरुदेव भगवान, नाव तो बहुत सी खड़ी हैं। दादागुरु ने कहा, यदि नाव मिल जाती है, तो ठीक है, मंगवा लो। दो दिन तक महाप्रभु परेशान रहे, लेकिन लाक्षागृह से १६ गांव की सीमा के आस-पास एक भी नाव नहीं मिली जो इलाहाबाद प्रभु को ले आती। प्रभु ने निष्कर्ष निकाला, हमने गुरु से हठ किया था, इसीलिये नाव को ही उन्होंने गायब कर दिया। गुरु से हठ करके बैठना या पैदल जाना ठीक नहीं है। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करने में ही शिष्य का कल्याण होता है। अतः गुरु आज्ञा से वह बस पर बैठ ही गये।

श्री महाप्रभु के सम्बन्ध में श्री गुरुदेव केशवानन्द जी की वाणी

श्री महाप्रभु का परम पवित्र वैराग्य से ओत-प्रोत मन अलौकिक भावों का आश्रय लेकर ही चलता था। इस बात को भगवान गुरुदेव अच्छी तरह समझते थे। अतः आपका ज्ञान और व्यवहार प्रभु के साथ अनोखा ही होता था। महाप्रभु स्वयं तो त्यागमय जीवन व्यतीत करते ही थे, अन्यों का भी उद्धार हो इस उद्देश्य से लोगों को भी आहार विहार शुद्धि, नियमित शयन, विशेष जप, ध्यान, सत्संग आदि के लिये प्रेरणा देते रहते थे। सत्संग में योगी, विद्वान, अफसर, जिज्ञासु सभी प्रकार के भक्त सेवा में उपस्थित रहते थे। उनके मध्य में आप प्रभु को विशेष स्थान देते थे, विशेष सम्मान करते थे और कहते भी थे, "बेटा को आप लोग नहीं पहिचानते। आप लोगों को उन्हें समझना चाहिये। वह तो साधना की पराकाष्ठा को पार कर चुके हैं। वह कुछ करें या न करें, उनके लिये कुछ भी आवश्यक नहीं, वह तो नित्य सिद्ध हैं। वह तो ज्ञान-रूप खड्ग से माया के बन्धन काट चुके हैं। माया तो उनकी दासी है। वह युग-युग

से माया को दासी बनाते आये हैं और लोक उद्धार के लिये जन्म ग्रहण करते आये हैं।" प्रभु की निर्भीक प्रकृति से भगवान गुरुदेव गद्गद् रहा करते थे। आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी, अपूर्व संस्कार था। भगवान गुरुदेव वेदान्त ग्रन्थों का अध्ययन कराते समय कहते—बेटा! तुम्हारा तो सब पढ़ा पढ़ाया, करा कराया है। तुम्हें कुछ करना नहीं है। हम तुम्हारी जानी हुई वस्तु को स्मरण करा देते हैं।

महाप्रभु का शिष्टाचार—श्री नारायण प्रभु का लोक व्यवहार अति ही मृदुल, सरस और सौम्य था। कोई भी ऐसा व्यक्ति अथवा भक्त नहीं था जो आपके व्यवहार तथा सम्यक् व्यक्तित्व से आकर्षित न होता हो। आपका बालक तुल्य एवं परम स्नेही उदार व्यवहार था। भगवान केशवानन्द जी का कोई भी ऐसा अनुचर भक्त नहीं था जो आपके प्रति सहज श्रद्धा और स्नेह नहीं रखता था। आपमें व्यवहार-कुशलता के गुण की चरम सीमा थी। स्वतः कुछ भी नहीं खाते पीते थे, लेकिन अतिथि का पूर्ण सत्कार होता था। महाप्रभु की यद्यपि अल्प आयु और कोमल शरीर, रूप सौन्दर्य से परिपूर्ण थे, लेकिन भगवान गुरुदेव सदैव कहते थे, यह पुरुष है। परम साहसी पुरुषों जैसे कर्म करने में एक पल भी नहीं लगाते थे। ईश्वर-लाभ के लिये आप अकेले ही वनों की खाक छान डालते थे। एक-एक दिन में दस मील आने, दस मील जाने में भी आपको जरा सी थकावट नहीं प्रतीत होती थी। आपके अदम्य उत्साह और व्यवहार-कुशलता, वाणी की माधुर्यता, परम उदारता, कर्मठशीलता, त्याग और कठोर सच्चाई को देखकर भगवान गुरुदेव आपसे बहुत ही प्रसन्न रहते थे। कभी-कभी भगवान गुरुदेव उनकी परीक्षा लेने के लिये बहुत ही बेरूखा व्यवहार कर देते थे, लेकिन आप बालकवत, 'गुरुदेव भगवान, गुरुदेव भगवान' कहकर आगे पीछे फिर कर ज्ञान और भक्ति के प्रश्नों को पूछते रहते थे। गुरुदेव भगवान की शारीरिक सुविधा के लिये छोटी से छोटी बातों का सूक्ष्मता के साथ वड़ा ही विचार रखते थे। आपके

अन्तःकरण में कोई वासना नहीं थी । दृढ़ ईश्वर मिलन का ही सत्य संकल्प था ।

नारायण नाम गुरुदेव ने ही रखा है—ज्यों-ज्यों प्रभु अपनी वास्तविक स्थिति में आरूढ़ होने लगे, आपकी गम्भीरता बढ़ती गई । आपके गम्भीरत्व को देखते हुये कभी-कभी भगवान गुरुदेव कहते थे, नारायण भगवान गम्भीर होते हैं । बेटा, नारायण की आराधना करते-करते नारायण ही बन गये । एक दिन सत्संग के प्रसंग में आया कि जब भगवान राम जी ने धनुष तोड़ा, तब श्री जनक जी ने अयोध्या जी में इस शुभ सूचना को बतलाने के लिये एक दूत भेजा । दूत ने जाकर महाराज दशरथ को प्रणाम करते हुये जय जीव कहा । इस प्रसंग पर आपने गुरुदेव भगवान से पूछा, भगवान ! त्रेता में तो जय जीव कहा जाता था, अब कलिकाल में क्या कहना चाहिये ? गुरुदेव भगवान ने कहा, बेटा, आप नारायण हो, इसीलिये नारायण की ही जय बोलनी चाहिये । कल से आप ही सब से जय नारायण कहा करो । फिर सभी लोग एक दूसरे से जय नारायण कहने लग जायेंगे । उस दिन से भक्तगण परस्पर जब मिलते थे तब अभिवादन रूप में जय नारायण कहने लग गये एवं प्रभु को नारायण नाम से सम्बोधित करने लगे ।

आप सदा गुरु की आज्ञा का पूर्ण पालन करते थे । उस आज्ञा में जरा सी भी ढिलाई करने पर उसका तत्काल विपरीत फल मिल जाता था । एक बार की बात है, भगवान गुरुदेव ने आपसे कहा, बेटा, कल गंगा जी स्नान नहीं करोगे तो क्या होगा । आपने विशेष गहराई में उनकी बात को न लेकर कह दिया, गुरुदेव भगवान, हम तो नियम से गंगा स्नान करते हैं । दूसरे दिन प्रातः-काल होते ही गंगा स्नान करने चले गये । आपकी सेविका जो सदा पूजा की सामग्री और वस्त्रों को लेकर जाती थी साथ गई । काल की गति निराली होती है । नित्य वह प्रभु के स्नान कराने के पश्चात स्नान करती थी । उस दिन उनके स्नान के पूर्व ही जल में घुस गई । थोड़ी देर में प्रभु जब शौच से निवृत्त होकर आये तो देखते हैं बुढ़िया गर्दन भर पानी में है । आप थोड़ा

तैरना जानते थे अतः जल में कूद पड़े। बुढ़िया के समीप तक पहुँचने पर बुढ़िया का पता नहीं। अब आप भी डूबने लगे। अन्त में आपको एकदम गुरुदेव का स्मरण आया। उनका ध्यान किया एवं जप करने लगे, तत्काल आपका पैर एक ऊँचे पत्थर पर पड़ गया। बस आपकी जीवन-रक्षा हो गई। तब आपको गुरु महाराज की दूरदर्शिता का बोध हुआ कि इसीलिये तो वे गंगा-स्नान को रोक रहे थे।

एक बार एक नई भक्त प्रथम दर्शन के लिये गुरु महाराज के समक्ष आई। उनको देखते ही बिना बताये आप कहने लगे—"रामेश्वरी देवी, तुम झूसी से दर्शन के लिये आई हो। अपनी कन्या के विवाह के लिये पूछना चाहती हो। देखो, कन्या का तो अभी ३ वर्ष विवाह होगा ही नहीं। उसके बाद वह साधू हो जायेगी।" उनकी भविष्य-वाणी इतनी सत्य होती थी कि लोगों को आश्चर्य होता था कि आप हैं क्या? कौन हैं?

आपकी बाल्य चंचलता

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि यथा नाम तथा गुण आपमें विद्यमान है। भगवान गुरुदेव की बाल्यवत प्रकृति थी। आप अत्यन्त सरल आत्म-तत्व रूप थे। प्रभु की चंचलता का अवलोकन करके गुरुदेव कभी-कभी कहा करते थे, देखो हमारा कृष्ण आ गया। आपका लज्जा से सिर झुक जाता था। कभी-कभी आप इस बात को सुनकर गुरुदेव भगवान से प्रश्न कर बैठते थे कि भगवान आप मुझको ऐसे क्यों कहते हैं? गुरुदेव हंस पड़ते, कहते तुम क्या जानो? आप त्रिकालदर्शी थे।

प्रभु निराली ही प्रकृति के थे। विचित्र मधुर मुस्कान, अपार आकर्षण शक्ति, अद्‌भुत भक्ति की लावण्यता से बात की बात में विह्वल हो उठते थे। प्रेम में चंचलता का बाहुल्य था। जब सत्संग का समय होता दरवाजे की ओट में खड़े रहते थे। ज्यों ही कोई माता अथवा बहन दरवाजे के भीतर घुसने लगती थी, कोई भारी सी चीज भूमि पर पटक देते, अथवा आकर जोर से

चिल्ला देते। वेसुध सी जो प्रवेश-द्वार से घुसती थीं उनके पुष्प के वर्तन, पुस्तक, आसनी सब गिर पड़ते। कोई चौंक कर गिर पड़ती। कोई विचित्र सूरत बना लेती। यह सब देखकर आप खूब हँसते थे एवं उनको चिढ़ाते थे। छोटे-छोटे बच्चों को चाहे वह लड़की हो या लड़का, भगवान के आगे जबरदस्ती फुसलाकर जिस प्रकार भी हो नृत्य करवाते थे। रामू नाम का एक आठ वर्ष का बालक बड़ा ही चंचल प्रकृति का था। नृत्य खूब करता था। आप उसको साड़ी आदि पहनाकर उसको स्वयं खड़ा करा देते थे। उसको स्वयं ही इन सब बातों में आनन्द आता था। वह साड़ी पहनकर, बाल झाड़कर, टीका लगाकर, हर समय अपने आप कहता था, नारायण भगवान, हम नाचें और नाचने लगता था। जब वह नाचता था तब खूब हंसते थे। मुखमंडल पर उदासी की झलक कभी दृष्टिगोचर न होती थी। उनके हर्ष एवं प्रसन्नता को निहारकर कुछ लोगों को आश्चर्य सा होता था। कुछ प्रेम के वशीभूत होकर धन्य-धन्य कहते थे।

आपकी गुरुदेव के प्रति भावना

आप भगवान गुरुदेव में प्रत्यक्ष रूप से रघुनाथ का दर्शन पाते थे। भगवान गुरुदेव में आपकी रघुनाथ की उपासना थी। आपको उनमें रघुनाथ का स्वरूप ही झलकता था। वही धनुर्धारी मुकुट धारण करे, मकराकृत कुण्डल धारण करे भगवान रघुनाथ बैठे हुये मुझे स्वयं ज्ञान दे रहे हैं। यही आपकी भाव उपासना रहती थी।

एक दिन प्रभु भगवान गुरुदेव को हाथ धुला रहे थे। वह बड़े ही प्रसन्न थे कि मैंने कौन सा ऐसा पुण्य किया कि स्वयं रघुनाथ कुटिया में पदार्पण करके भोग लगाते हैं और हम स्वयं उनको हाथ धुलाते हैं। ऐसी कल्पनायें हृदय में उठती जा रही थीं एवं भगवान गुरुदेव को हाथ धुलाते जा रहे थे। इतने में गुरुदेव रुक गये, फिर बोले, "बेटा, धन्य है तुम्हारे भाग्य को। तुम्हारे भाग्य की सराहना ब्रह्मादिक मुनि भी करते होंगे। तुम्हारा जीवन अमर हो

जायेगा। युग-युग तक लोग तुम्हारी पूजा करके अपने जीवन को सार्थक बनायेंगे। तुम्हारे दर्शन पाकर हम भी धन्य हो गये। बेटा, अपने रघुनाथ का दर्शन हमें भी करा दो।" प्रभु अपने भावों को छिपाकर बोले, "भगवान, आप ऐसा कह रहे हैं।" गुरुदेव हंस कर चले गये।

इसी प्रकार एक दिन भगवान गुरुदेव बगल में ही किसी अन्य भक्त के यहाँ प्रसाद पा रहे थे। नारायण प्रभु बैठे हुये गुरुदेव के लिये माला बना रहे थे एवं मनोकल्पित भावना से गुरुदेव भगवान को आसन पर पधरवाकर एक सुन्दर से थाल में विविध प्रकार के व्यंजन परोस करके भोजन कराने लगे एवं स्वयं धीरे-धीरे उनको प्यार के सहित पंखा झलने लगे। लगभग १० मिनट पश्चात् भगवान ने कमरे में प्रवेश किया। अचानक असमय में भगवान गुरुदेव को पधारते हुये देखकर आपको अत्यंत आश्चर्य हुआ। आप तत्काल माला छोड़ कर उनको विराजने के लिये सिंहासन पर आसन बिछाने के लिये दौड़ पड़े। भगवान गुरुदेव विराजते हुये कहने लगे, "बेटा, क्या करूँ, आज पेट तो बहुत भर गया। क्या करूँ। नित्य तो एक जने का ही प्रसाद रहता था, आज दो-दो भक्तों का प्रसाद रक्खा था। एक के प्रसाद में विविध प्रकार के व्यंजनों के सहित अपूर्व श्रद्धा भक्ति का मिश्रण था। मैं तो श्रद्धा भक्ति देखकर ही तृप्त हो गया। मुझसे भोजन ही नहीं किया गया। ठंडी-ठंडी हल्के-हल्के हाथों से की गई हवा बड़ी ही हृदय-ग्राही थी। बेटा, तुम अपने भगवान को कभी प्रसाद ग्रहण कराने के लिये आग्रह नहीं करते क्या? तुम्हारा मन नहीं लगता कि अपने भगवान को अपने हाथों से भोजन कराऊँ।"

भगवान गुरुदेव अलौकिक पुरुष थे। उनकी सत्ता को कोई नहीं समझ पाया। प्रभु ने प्रथम दर्शन में ही उनको समझ लिया था कि ये कौन हैं। समस्त माताओं से कहते थे कि तुम लोग धोखे में मत रहना, यह बुड्ढे नहीं, इनमें अलौकिक शक्ति विद्यमान है। विश्व में छिपने के लिये इस तरह का स्वरूप एवं आचरण कर रक्खा है। जो कुछ तुम्हारे हृदय में कामना हो उसकी पूर्ति इनके द्वारा कर लो। बड़े भाग्य से तुम लोगों को यह मिले हैं। प्रभु के

वार-वार डंका पीटने पर भी केवल प्रभु ही उन्हें समझ सके, अन्य यों ही हाथ मलते रह गये।

भगवान गुरुदेव की विचित्र लीला थी। भरी जेठ की दोपहरी में एक दिन प्रभु ने देखा कि रजाई ओढ़े अपनी कुटिया में विश्राम कर रहे हैं। इनकी इस लीला को निहारकर प्रभु को बड़ा ही कौतुक हुआ।

भगवान की महान लीलायें अगणित एवं अपरिमित हैं। उनकी व्याख्या करना असाध्य है। नारायण प्रभु को भगवान गुरुदेव का केवल ३ वर्ष तक ही अनमोल सत्संग लाभ हुआ। १९४६ आषाढ़ मास में दर्शन प्राप्त हुआ। १९५० में वैशाख मास में आपने इस चोले का परित्याग कर दिया। उनके गोलोक गमन करने के पश्चात् ही लोगों ने इस बात को प्रभु से बताया कि उन्होंने कुछ वर्ष पूर्व ही इस चोले को त्यागने का संकल्प कर लिया था। आपको परिपूर्ण तत्व का अनुभव कराने के लिये ही उन्होंने इसको स्थित कर रक्खा था।

६ मास पूर्व ही उन्होंने बता दिया था कि अब मुझे इस तन को स्थित रखने की विल्कुल भी इच्छा नहीं है। अतः मैं शीघ्र ही इसका परित्याग करना चाहता हूँ। किन्तु तुम लोग नारायण बेटा से मत कहना। यदि उनको इस बात की जरा सी भी शंका हो जायेगी कि मैं इस तन को त्यागना चाहता हूँ तो वह इस तन को रखने के लिये हठ करेंगे। भक्तवत्सल भगवान गुरुदेव इनकी श्रद्धा प्रेम से अपरिचित नहीं थे।

भगवान गुरुदेव का गोलोकगमन

इधर प्रभु को पूर्ण रूप से विश्वास था कि भगवान गुरुदेव अभी शरीर का त्याग नहीं करेंगे। कम से कम २० वर्ष तक इस तन को मेरे लिये धारण करेंगे। तत्पश्चात् हम उनसे निवेदन करेंगे कि वे कुछ वर्ष तक हम लोगों को और उपदेश देंगे।

महापुरुषों का सत्य संकल्प होता है। वह जो एक बार सोच लेते हैं उसे करके ही छोड़ते हैं।

भगवान गुरुदेव समाधि लेने का सत्य संकल्प कर चुके थे। प्रभु के बहुत विलाप करने पर भी उन्होंने अनसुनी करके जगत से नेत्रों को बंद कर लिया। भगवान गुरुदेव का सत्संग चल रहा था। केवल कुछ इने-गिने भक्त ही थे। आपने महाप्रभु को बुलाया। सब बाहर चले गये। आपने कहा, "बेटा! अब हम तुमको सब कुछ दे चुके। इसी ज्ञान को लेकर लोक-कल्याण करना। अपना शरीर रखना।" आपने कहा, "हम भी हिमालय चले जाते हैं।" गुरुदेव ने कहा, "नहीं बेटा! आपको तो अभी जगत में बहुत बड़ा कार्य करना है, अनेक जीवों का उद्धार करना है, उनको स्वरूप का दान देकर प्रभु से मिलाना है। इसके लिये आपको तो जगत कल्याणकारी लोक-प्रसिद्ध, एक भव्य आश्रम बनाना होगा, जहां से अनेक जीवों को शांति प्राप्त होगी। फिर आप एकांत-वास कैसे कर सकते हैं?"

गोलोक गमन करते समय शेष तत्व रह गया था। वह भी प्रभु को सौंप गये। प्रभु विलख पड़े। जो नहीं सोचा था, वही हो गया। भगवान गुरुदेव की दिव्य मूर्ति पीपल के वृक्ष के तले एक चबूतरे पर रक्खी हुई थी। भक्तों की बड़ी भीड़ चारों ओर एकत्रित थी। प्रभु विलख-विलख कर रो रहे थे। कभी उठते, कभी मूर्छित हो जाते। शरीर की सुधि नहीं थी। भक्त बार-बार चेतना लाने का प्रयत्न करने लगे। बड़ी कठिनता से चेतना आई। सब के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। भगवान गुरुदेव देह त्याग के पूर्व ही अपनी समाधि आदि के विषय में सब कुछ बता चुके थे। वर्तमान में जिस स्थान पर भगवान गुरुदेव की समाधि स्थित है, वह उन्हीं का निर्धारित किया हुआ स्थान है। यहाँ पर ही भगवान गुरु की गुफा थी, जो वर्तमान गंगा जी के किनारे नीम के चौतरे के पास स्थान है। जहाँ नीम का पक्का चौतरा पहले कच्चा प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण स्थान था। यहीं पर बैठकर आप भजन करते थे। आजकल जहाँ दादागुरु की मूर्ति स्थापित है, वहीं पर पहले आपकी कुटिया (विश्राम-स्थल) थी। उसी के पास जहाँ तुलसी का वृक्ष है, वह उनका धुनी रमाने का स्थान था। यहीं आप अष्ट प्रहर दिन रैन बैठे भगवत भजन में लवलीन रहते थे। इसीलिये यह तपस्थली है।

शांत स्वरूप होने पर भी, प्रभु १३ दिन तक रात्रि दिवस बिलखते रहे थे। उनकी सारी चंचलता एवं हँसी विलीन हो गई थी। वैशाख का महीना था। कड़ी गर्मी पड़ रही थी। १३ दिन तक प्रभु ने केवल गंगा जल का ही पान किया। भगवान गुरुदेव ने कुछ वृद्ध भक्तों को इनकी देख-रेख का भार सौंपा था। वह लोग आपको बहुत समझाते थे किन्तु किसी के कुछ भी कहने का असर आपके ऊपर नहीं होता था। गुरुदेव के हृदय में अपार शोक छा गया था। वह कुछ दिन एकदम गुम-सुम खोये-खोये से रहते थे। एक दिन आप समाधि पर बैठे गुरुदेव का ध्यान कर रहे थे। आपको आदेश हुआ, आप लोक-उद्धार करिये और मेरे दिये हुये ज्ञान का प्रचार करिये। प्रभु उनकी ऐसी बातों को सुनकर और भी जोरों से क्रंदन करने लगते थे। उनके ऊपर किसी का कुछ भी समझाने का प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु भगवान गुरु के प्रत्यक्ष आदेश से कुछ स्थिर हो गये। वर्तमान में भी जब कभी स्थिरता से बैठकर भगवान गुरुदेव की स्मृति करते हैं तो उनके अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं।

वर्तमान में नारायण प्रभु की अलौकिक अवस्था है। आपकी बड़ी ही सरल एवं बाल सुलभ प्रकृति है। भक्तों के साथ कोई असमानता का व्यवहार नहीं करते। भक्तों के साथ बच्चों के सदृश व्यवहार करते हैं। उनके अंतरंग भक्त ही उनकी अनुपम लीला को समझ सकते हैं। सत्यता आपके चरित्र का विशेष गुण है। जिस बात के लिये सत्य संकल्प कर लेते हैं, उसको करके ही छोड़ते हैं। चाहे प्राण जाय पर वचन न जाय। अपनी सत्यता की शक्ति पर वह अजयी बने हुये हैं। उनके सत्य संकल्प के संमुख बड़ी-बड़ी शक्ति पराजित हो जाती है। यदि प्रभु में दृढ़ संकल्प अथवा परिश्रम एवं सत्य संकल्प की शक्ति न होती तो भगवान गुरुदेव के अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् ही यहाँ के लोग ही प्रभु की भक्ति को पूर्ण न होने देते। आप अपने पथ से एकदम विच-लित नहीं हुये, वरन् आपको जितना भी दबाया गया, ठेस पहुँचाई गई, उतना ही आप भगवत प्राप्ति के मार्ग में अग्रसर होते गये। आपको प्रभु पर अटल विश्वास था, दृढ़ निश्चय था। उनके इन स्वाभाविक गुणों के संमुख समस्त

शक्तियों को हार खानी पड़ी। आपको छोटे से लेकर बड़े तक से मुठभेड़ खानी पड़ी, किन्तु आज तक प्रभु का वरदहस्त होने के कारण विजयी होते गये। मोहल्ले के कुछ लोगों के द्वारा प्रभु को कितना दु:ख मिला, कितना अपमान किया गया, इसको तो स्वयं नारायण प्रभु जानते हैं या उनके भक्तगण।

गुरुदेव भगवान के गोलोक गमन के पश्चात् प्रभु की छोटी अवस्था एवं अनाथ समझकर बहुत लोगों ने उनको गिराना चाहा, किन्तु नारायण प्रभु की दृढ़ भक्ति के संमुख किसी की कुछ भी नहीं चली। आपके ज्ञान में नर-नारि की मर्यादा का कोई भेद-भाव नहीं है। सत्संग में माता, बहन, भाई सभी लोग एकत्रित होते थे। इस पर भी काफी आलोचना की गई। किन्तु प्रभु ने बड़ी दृढ़ता के साथ आलोचना करने वालों को संदेश भेज दिया कि जिसको नारि को आने देना है या नहीं आने देना है वह स्वयं प्रवेशद्वार पर बैठकर नर को आने से रोक दें एवं नारी को आने दिया करें।

इसके पश्चात् कुछ लोगों ने फिर यह प्रसंग उठाया कि आपके सत्संग में अच्छे बुरे के नाम से अच्छे बुरे सब आ जाते हैं। अच्छे सत्संगी जनों को आना चाहिये, बुरे को नहीं। वही उत्तर आपने दोहरा कर कहला दिया कि जो सज्जन जन इस कार्य को करने की ताड़ना दे रहे हैं वह स्वयं ही अच्छे बुरे का निरीक्षण करके जन-समुदाय को सत्संग में भेजा करें। हमारे सामर्थ्य के परे की कार्यप्रणाली को हम सम्पादन नहीं कर सकते।

दूसरा उत्तर यह दिया, "यदि सत्संग में ही अच्छे बुरे का निर्णय करके व्यक्तियों को प्रवेश करने दिया जाय तो बुरे लोग कहाँ से सुधरेंगे। सत्संग में आने से एवं निरंतर के सत्संग से एक दिन पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। केवल सत्संग ही एक ऐसा साधन है, जिसके प्रभाव से बिगड़े भी सुधर जाते हैं। सुधरे को क्या सुधारना। यदि हमको किसी को भोजन कराना है, तो किसी भूखे को भोजन करायें जिससे उसकी क्षुधा की तृप्ति भी हो एवं आवश्यकता की पूर्ति भी हो। जो अपने घर का स्वयं ही साहूकार है, उसको खिलाया तो क्या खिलाया।"

इसके अतिरिक्त समाज में प्रतिष्ठित गिने जाने वालों के द्वारा प्रभु को ऐसा-ऐसा कष्ट पहुँचाया गया, जिसका स्मरण करके अभी भी प्रभु की सराहनीय सहनशीलता का अवलोकन करके आश्चर्य होता है। इतने कोमल, इतनी छोटी अवस्था, इतने सत्यनिष्ठ भक्त पर कैसे अत्याचार किया गया। क्या उन लोगों का हृदय द्रवीभूत नहीं हुआ ? उसी हाते के सज्जनों द्वारा ही यह दुःख दिया गया, जिनकी आप सदैव शुभकामना करते थे, प्रत्येक प्रकार से सहयोग देते रहते थे। समय एवं परिस्थिति आने पर सब प्रकार से उन लोगों पर दया करते थे। उनके साथ उनके माता-पिता, भाई-बहन, बाल-बच्चों के सदृश व्यवहार करते थे। लेकिन एक दिन सत्य रहस्य का पता लग गया। जिसको अपना साथी और अपना समझा था वे लोग तो भीतर ही भीतर प्रभु की भक्ति की जड़ उखाड़ने को तत्पर थे। प्रभु के संमुख हाथ जोड़ते थे। प्रभु के पीछे अपवाद करके उनकी भक्ति का ग्रसन कर लेना चाहते थे। किन्तु ईश्वर की अपार दया है, वे अपने भक्त को कदाचित कभी भी धोखे में नहीं रखते हैं।

एक दिन भीतर का पाप बाहर प्रगट हो ही गया। जो प्रभु को गोपाल भाव से पूजते, प्रदर्शन करते थे, व्यक्तियों को अपना निजी पुत्र मानने की भावना दिखलाते थे, उन्हीं लोगों ने प्रभु के संमुख खड़े होकर ऐसी अनकहनी-अनकहनी बातें कहकर गालियाँ दीं तथा प्रभु को पाखंडी बताकर उनका तिरस्कार किया। प्रभु तो पाषाणवत अवाक होकर उनकी बातें सुनते ही रह गये। वह समझ ही न सके कि जाग्रत में यह लीला हो रही है अथवा स्वप्न में। वह इस इन्द्रजाल को समझ ही न सके कि यह क्या सुन रहे हैं और देख रहे हैं। माया की रचना से स्तम्भित हो गये। देवी कहकर स्तुति करने वाले की, पुत्री मानकर नमस्कार करने वाले की, गोपाल मानकर पूजा करने वाले की यह अभ्यर्थना। उनके मुख से केवल इतना ही निकला कि आज आप लोगों को क्या हो गया ?

ज्यों-ज्यों आपकी प्रतिष्ठा का विकास होता जाता था, यह लोग भीतर ही भीतर षडयंत्र की कल्पना करते ही रहते थे। एक दिन वही प्रत्यक्ष हो गया। ईश्वर जो करता है सब अच्छा ही करता है। यह समझकर उन्होंने

बड़ी शान्ति के साथ उनकी बातों को सुनकर सह लिया। अपने अपमान एवं घृणाजनक शब्दों के लिये उन्हें कुछ भी नहीं लगा। किन्तु उन्हें सबसे बड़ा विषाद इस बात का हुआ कि आज हमारे होते हुये प्रभु की भक्ति का इतना घोर अपमान हुआ। हमारे जीवन से लाभ ही क्या हुआ। यदि हम अपने प्रभु एवं गुरु की भक्ति की महिमा को असंख्य गुणी न कर दें। यदि मेरे भगवान की भक्ति की महिमा के महत्व का सच्चा प्रदर्शन इन लोगो के सामने नहीं होता है तो हमारा जीवन ही व्यर्थ है।

नाम जप से मूर्छा भंग

यह सोचकर आपने प्रभु के संमुख आकर हृदय-विदारक रुदन किया। ३-४ घंटे तक मूर्छित पड़े रहे, केवल अविरल अश्रु-धारा मोती की तरह झरती जा रही थी। किसी प्रकार वह धारा रुकती नहीं थी। उन दिनों योग-वाशिष्ठ का अनुष्ठान चल रहा था। १० बजे से मूर्छित थे। २ बज गये, भक्तों ने नाम जप प्रारम्भ किया। थोड़ी देर बाद चेतना आई, तब भक्तों के बहुत अनुनय-विनय करने पर आप उठे। किन्तु आपके हृदय की स्थिति ठीक नहीं थी। ५ दिन तक आपने कुछ भी आहार ग्रहण नहीं किया। तीक्ष्ण गर्मी पड़ रही थी। प्रातःकाल ४ बजे प्रभु गंगा जी चले जाते थे। साथ में निर्मल जी, जमुना जी, गोविंद जी एवं गौरी जी जाती थीं। नौ बजे तक गंगा के किनारे जप करते रहते थे। नौ बजे तक बालू एकदम भाड़ जैसी जलने लगती थी। गंगा जी भी फाफामऊ की ओर थीं, लगभग आश्रम से आधे मील दूर पर उसी जलती हुई बालू में बिना खड़ाऊँ के नंगे चरण समाधी पर आते थे। १ बजे तक वहीं समाधी पर बैठे रहते थे। उस समय गुरु समाधी चारों ओर से खुली थी। चारों ओर केवल काँटे के वृक्ष थे। वदन को झुलसा देने वाली गर्म हवा अस्थि तक को सुखा देती थी। लगभग १२ बजे भगवान गुरु को गंगा जल का भोग लगाकर और कुछ जल का चरणामृत बनाकर पी लेते थे। आपके पीछे चार भक्त और थे-गोविंद जी(रानी साहब शिवकोटी), निर्मल जी, जमुना जी,

गौरी जी। उन लोगों से प्रभु का वह कठोर तप सहा नहीं जाता था। अतः उन लोगों ने भी ५ दिन तक कुछ भी ग्रहण नहीं किया। प्रयाग भर में यह सूचना विजली के सदृश फैल गई। निर्मल जी एक महीने पहले से वहुत बीमार थीं। उसी दिन पथ्य शुरू किया था। उसी दिन यह घटना घट गई। अतः चौथे दिन उनके मुख से (गंगा जल तक न पी सकने के कारण) खून गिरने लगा। अतः मूर्छित भी हो गईं। चौथे दिन सिटी मैजिस्ट्रेट मार्कन्डेय सिंह को किसी ने सूचना दे दी, वो आये। उन्होंने प्रभु से करवद्ध विनय की एवं कहा—"आप सर्व समर्थ हैं, आपकी शक्ति को मैं जानता हूँ, लेकिन आप कुछ ग्रहण कीजिये। आपके ऐसा करने से वहुत क्षति होगी। छोटी अवस्था के साधकों को वहुत दुःख होगा।" प्रभु को मैजिस्ट्रेट के साथ वहुत कुछ सहानुभूति होते हुये भी उन्होंने कुछ ग्रहण नहीं किया। तत्पश्चात् जिन लोगों ने प्रभु के साथ अत्याचार किया था स्वयं आकर प्रभु से क्षमा मांगी एवं मैजिस्ट्रेट ने भी वहुत कुछ प्रार्थना की। तव सव भक्तों ने पाँचवें दिन शर्वत ग्रहण किया एवं प्रभु को संतरे का रस दिया गया। उन दिनों प्रभु के मुख-मण्डल की ओजस्विता अद्भुत हो रही थी। तेज का पुंज मुख-मण्डल से वरसता था। शरीर में रत्ती भर भी शिथिलता नहीं आई थी।

आने जाने वालों की भीड़ लगी रहती थी, प्रभु बिना कुछ खाये पीये भी उसी तेजी से सवसे वोलते थे। तीन घण्टे योग वाशिष्ठ के अनुष्ठान का कार्यक्रम भी उसी प्रकार चलता था। दर्शक लोग भी इस आत्म-बल को देखकर हैरान हो जाते थे। मन्दिर में खड़े होकर सज्जन जनों ने मैजिस्ट्रेट के सन्मुख वचन देने पर भी कि अव हम लोग कभी भी इस प्रकार की चाल चलकर इनका अपमान नहीं करेंगे किन्तु उनके हृदय की पाप-बुद्धि का नाश नहीं हुआ था। अतः इन लोगों ने दूसरा षड्यन्त्र निकाला। उन षड्यन्त्रकारियों की भी मजवूत पार्टी थी, लेकिन वह लोग महाप्रभु का क्या विगाड़ सकते थे ? साँच को क्या आंच। जिस प्रकार सर्प अपनी वक्रचाल को नहीं छोड़ता उसी प्रकार तुच्छ बुद्धि वाले भी दूसरे की उन्नति को नहीं देख सकते। उन लोगों ने एक सन्देशा महाप्रभु के पास भेजा कि मन्दिर को त्याग कर कहीं अन्य जगह

चले जायँ। यदि नहीं जाते तो विविध प्रकार की धूमधाम से पूजा-पाठ त्याग दिया जाय। विशाल धर्मानुष्ठान छोड़ दिया जाय। केवल घन्टी बजाकर साधारण गृहस्थ नारी की तरह रहना चाहिये। घन्टा बजाना बन्द कर दिया जाय। बाहर के भक्त नर-नारियों का आना बिल्कुल बन्द कर दिया जाय। ढोलक, हारमोनियम पर कीर्तन करना बन्द कर दिया जाय, लाउडस्पीकर बजाना बंद कर दिया जाय। आश्रम में किसी भी भक्त को न रक्खा जाय। साधिकायें मन्दिर में क्यों रहती हैं। इस प्रकार की शर्त मंजूर है तो इस स्थान में रहकर शान्ति से भक्ति करें, अन्यथा इस स्थान को त्याग कर इलाहाबाद के बाहर जाना होगा। परन्तु उनके सन्देश भेजने से क्या होता था। समुद्र की मछली को यदि कोई एक लोटे में रखकर पालना चाहेगा तो क्या वह पाली जा सकती है?

प्रभु का नियम और साहस :—

क्या आकाश के तारों को भूमि में लाकर दीपक का काम लिया जा सकता है? क्या समुद्र की मोती को नदी में स्थिर रक्खा जा सकता है? प्रभु गुरु के उस अमर आशीर्वाद को प्राप्त कर चुके थे जिसको जन-जन के हृदय में भर कर आत्म-ज्योति जगानी थी। इस प्रकार की तुच्छ बातों को कहकर प्रभु की भक्ति का यह लोग लोप करना चाहते थे अथवा उसको एक सीमित क्षेत्र में बांधना चाहते थे। किन्तु यह क्यों किसी के अधीन रहते। जो भगवान श्याम-सुन्दर का दास बन चुका है वह किसका दास बनेगा? अतः उन लोगों ने प्रभु को नाना प्रकार से कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया। जल को भी सुखा देने वाली गर्मी की ऋतु में नल ही काट दिया। पानी का कोई साधन न होने पर पानी भरने वाले को लगा दिया गया, लेकिन पनभरे को भी अनेक प्रकार से धमकाकर उसको पानी भरने के लिये मना कर दिया। जल कुएँ से निर्मल जी, घनश्याम जी, गौरी जी स्वयं लाती थीं। हरीकीर्तन, रामकीर्तन सुरेन्द्र-नारायण के दो बालक शाम को आकर पानी भरते थे। बिजली भी काट दी, प्रभु कुछ भी नहीं बोले, चुपचाप सहते रहते, और हँसते रहते। प्रभु ने हाथ

से पंखा कराना भी छोड़ दिया था । सत्संग में बैठे-बैठे पसीने से कपड़ा भीग जाता, तब भी आप हँसते ही रहते थे । तब भी किसी से कुछ नहीं कहते थे । दर्शक लोग भी आते थे । उनको भी अनेक प्रकार की धमकियाँ दी जाती थीं । प्रवेश-द्वार पर एक-दो देहाती मोटे पहलवान नौकर बैठा दिये गये कि किसी को भीतर न जाने दिया जाय, किन्तु प्रत्येक प्राणी ईश्वर से डरता है । सब को पता है कि एक दिन उसको काल का कलेवा होकर कर्मों का भोग भोगना पड़ेगा । अतः सब ही पाप करते हुये भी पाप से भय मानते हैं । प्रभु की अद्भुत प्रति भाव सहन-शक्ति को देखकर द्वारपाल भी प्रभु के चरणों में पड़ गये । क्षमा माँगकर उसी दिन नौकरी से छुट्टी लेकर चले गये । तत्पश्चात् एक और आदमी को रक्खा गया कि नारायण के सिवाय अन्य किसी और को अन्दर मत घुसने दो, वह भी इस कार्य को न कर सका ।

अब अनेक प्रकार से नीच कुचालें करनी प्रारम्भ कर दी गईं । मन्दिर में एक दिन दो अण्डे फेंक दिये गये । सेवकों ने प्रभु से जाकर निवेदन किया । प्रभु ने सबको शान्त कर दिया । एक दिन गोश्त का टुकड़ा स्नान की टंकी के पास फेंक दिया गया । प्रभु ने शिष्यों को मना कर दिया कि कोई एक शब्द न बोलना । घण्टा उखाड़कर फेंक दिया । रात्रि को छत में सोने के लिये भक्तों ने एक सीढ़ी बनवा ली थी । दिन भर पंखा न होने से गर्मी से त्रस्त रहने के पश्चात् सायंकाल छत पर चढ़ कर कुछ शान्ति की उपलब्धि होती थी । लेकिन वह लोग यह कैसे सह सकते थे, अतः जिस समय श्री नारायण महाप्रभु भगवान दादा गुरु के पूजन के लिये गये थे, विरोधियों ने कुछ आदमियों को लगा कर सीढ़ी को उखड़वा कर फेंकवाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु ईश्वरेच्छा से सीढ़ी टस से मस न हुई । प्रभु को संताप पहुँचाने का जो प्रयास था वह निरर्थक ही गया । भगवत विरोधियों ने द्वेष के उद्वेग में नीचा दिखाने तथा दुःख देने का प्रयास करते ही रहे, परन्तु प्रभु निर्भीक भाव से हरी भजन करते ही रहे ।

प्रभु की भक्ति का महान अपमान किये जाने पर कुछ दिन तक प्रभु केवल जल ही पीकर रहे । २१ दिन तक प्रभु दिन भर में केवल एक बार एक

गिलास दूध पर ही रहे। ज्येष्ठ का मास था, कड़ी गर्मी पड़ रही थी। दो मील की दूरी पर गंगा जी होने पर भी आप तीन बार गंगा स्नान करने जाते थे। प्रभु की दशा एकदम शोचनीय होती जाती थी। भक्तों ने कुचालियों की चाल और प्रभु का आहार त्यागना देख कर विनय की, किन्तु दृढ़प्रतिज्ञ प्रभु अपने जान की बाजी लगा कर भी प्रभु की भक्ति का महत्व रखना चाहते थे, अतः उन्होंने सबकी बातें अनसुनी करके अपने मन का ही करते रहे।

प्रारम्भ की साधना अवस्था में ही पेट खराब हो जाने के कारण प्रभु को खाली पेट एक समय के दूध का सेवन हानिकारक सिद्ध हुआ। अतः उनको बार-बार शौच जाना पड़ता था। एक दिन संध्या का समय था, प्रभु गंगा जी में स्नान कर रहे थे। पेचिश होते-होते शरीर क्षीण हो जाने से उनके हाथ-पैर ठण्डे हो गये। प्राणान्त जैसी उनकी अवस्था हो गयी। किसी प्रकार से वह जल के बाहर आये। इतनी दूर स्वयं जल लेकर आना कितना कठिन था। अद्भुत साहसी थे, किसी प्रकार प्रभु ने पार कर ही लिया। गुरु समाधि पर पहुँच जाने पर उनको लिटाने का प्रयास किया गया, किन्तु वह किसकी सुनते थे। उसी रुग्ण अवस्था में भी वह भगवान गुरुदेव की पूजा आरती में संलग्न हो गये। आपका आत्मबल बड़ा ही प्रबल था। थोड़ी बात तो क्या, बड़ी-बड़ी बात को भी कुछ नहीं समझते थे। प्रभु का नियम चल रहा था, वह केवल एक ही ब्राह्मणी के हाथ का बना हुआ फलाहारी प्रसाद अथवा जल पीते थे। उन लोगों ने प्रभु के नियम को भंग करने के लिये इस ब्राह्मणी को भी अनेक प्रकार से प्रलोभन देकर प्रयाग से भगा दिया। प्रभु को और भी कष्ट बढ़ गया। स्वास्थ्य क्षीण हो रहा था। कठोर साधना चल रही थी। दूध का सेवन प्रतिकूल पड़ता था, क्षुधा अग्नि मन्द हो गई थी। यो भी केवल भाजी का ही सेवन करते थे। अब आपने भाजी खाना भी छोड़ दिया। एक मास तक केवल मुसम्मी चूस कर ही रहे, क्योंकि उन दिनों फल कुछ भी नहीं मिलता था। केवल मुसम्मी ही थी। समस्या जटिल थी, लेकिन आपके आगे किसी का समझाना-बुझाना बेकार था। साथ में रहने वाले गौरी जी, निर्मल जी, घनश्याम जी भी केवल एक बार काशीफल की भाजी खाकर रहने लगे।

कृष्ण भाव से पूजा करती हुई मुवा जी

अमृत स्नान की एक झांकी। सरों पर मटका लिए भक्तों के वीच में प्रभु जी, कलकत्ता
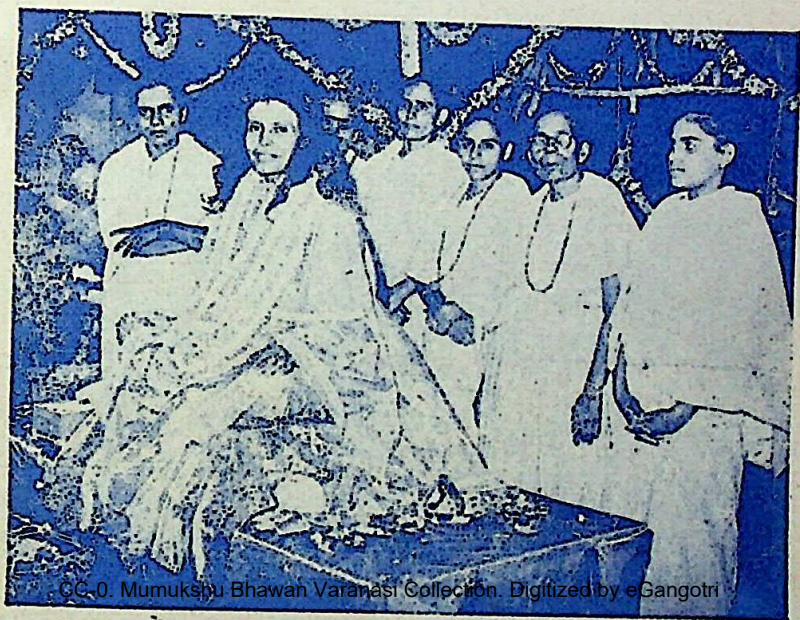
गुरू पूर्णिमा पर भक्तों के साथ

मुसम्मी कितने दिन तक खायी जा सकती है। पहले तो आठ-दस मुसम्मी चूस लेते थे या रस ले लेते थे, वह भी छुट गई। दो मील की दूरी से स्वतः ही जल लाना पड़ता था। ऐसी विकट परिस्थितियों में भी आपने अपने नियम को भङ्ग नहीं किया, तनिक भी घबड़ाते नहीं थे। भक्तों का ताँता सा लगा रहता था। आप सबसे उसी प्रकार मुस्करा कर बातें करते थे। ज्येष्ठ का मास था, भगवान गुरुदेव समाधि पर ही दिन भर रहते थे। चारों ओर से कपड़े का परदा लगा दिया जाता था, किन्तु ज्येष्ठ की लू की ताप परदे से कहाँ रुक सकती थी ? लू में दौड़-धूप करना असहनीय होता था। लू हृदय तक स्पर्श कर लेती थी। ऐसी परिस्थिति में भी आप अपने दृढ़ संकल्प से तिनका भर भी नहीं डिगते थे। अपने नियम में जरा भी दिक्कत नहीं मानते थे। धर्म-कर्म प्रभु की भक्ति की महत्ता को दिखाने के लिये ही था। यह सब देख कर लोगों ने अपनी-अपनी विभिन्न राय देनी शुरू कर दी। किसी ने कहा, आप प्रयाग को त्याग दीजिये। आपको ऐसे स्थान में रहने से क्या लाभ जहाँ अपनी आत्म-शान्ति भङ्ग हो। किसी ने कहा शहर में रहिये। हम लोग आप जैसे महापुरुष को सिर माथे रखेंगे। कोई कहता, फिर भी आप इनका भला ही चाहते हैं तभी तो यह लोग और मद में चूर हैं। सबकी बात सुनकर प्रभु हँसते रहते। उनका लोक-कल्याणकारी दिव्य अनुष्ठान चल ही रहा था। उस परिस्थिति में भी वे कभी हतोत्साहित नहीं हुये। एक मास के लिये त्रिवेणी के अतिरिक्त नगर के बाहर या नगर के इधर-उधर कहीं नहीं जाते थे। रेल, मोटर या अन्य सवारी का प्रयोग नहीं करते थे। केवल नाव का ही प्रयोग करते थे। आश्रम से छः मील दूर त्रिवेणी भी पैदल ही जाते थे। सामान तथा सेवक सवारी पर जाते थे। भक्त लोग पैदल ही जाते थे। उन दिनों मौन व्रत चल रहा था, किसी से कुछ बात नहीं करते थे। कोई अपशब्द भी कहता था तो हँस कर टाल देते थे। आगन्तुकगण इनकी ऐसी कठोर साधना का अवलोकन करके अचम्भित होते थे। प्रभु के ऊपर अकस्मात् ही अनेक विपत्तियाँ आकर गिरती थीं। किन्तु वह लोहे के स्तम्भ की तरह अपनी दृढ़ भावना पर आरूढ़ रहते थे। एक रत्ती भी इधर से उधर नहीं डिगते थे।

"आत्मज्ञः शोक संतीर्णं न विभेति कुतश्चन ।"

आत्म वेत्ता शोक से पार होकर किसी से भी भयभीत नहीं होता । चैतन्य के एकत्व का परिज्ञान हो जाने से शोक और मोह से रहित हो जाता है ।

प्राणी मात्र का कल्याण हो, विश्व में शान्ति और सद्बुद्धि हो, इस विचार से प्रभु ने एक लाख सीताराम की पुस्तक, जिसमें एक हजार नाम हैं, वितरित की थी । ग्यारह पुस्तक नित्य जपना था । समस्त भक्तों ने दो मास के अन्दर में पाँच-पाँच सवा लाख जप किया था । नाम अनुष्ठान सकुशल समाप्ति के उपलक्ष में प्रभु ने बड़े समारोह के साथ इस नाम यज्ञ की पूर्णाहुति का आयोजन किया था, जिसमें जुलूस के साथ भगवान की चौकियाँ निकाली गई थीं । अनेक बैण्ड बाजा हाथी घोड़ा सजा था । उत्सव में विघ्न डाल कर प्रभु का अपमान कराने के लिये उत्सव मनाने के एक दिन पूर्व ही यहाँ के लोगों ने मुकदमा दायर कर दिया कि यह सड़क प्राइवेट है, यहाँ से उत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ होकर समाधि तक नहीं जा सकता । वह तो प्रभु की महान शक्ति थी कि ऐसी जटिल समस्या उपस्थित हो जाने पर भी उन्होंने बड़े समारोह के साथ उत्सव की सब तैयारी ज्यों की त्यों करते रहे । विरोधियों ने समाचार पत्र में समाचार निकलवा दिया कि उनके ऊपर मुकदमा चला दिया गया है । अतः उत्सव का कार्यक्रम कुछ भी नहीं होगा । जो उत्सव में सम्मिलित होगा उस पर गोलियाँ चला दी जायेंगी । मुकदमा दायर हुआ । जज ने बड़ी युक्ति से काम लिया । फैसला भगवान के पक्ष में हुआ । कार्यक्रम ज्यों का त्यों सम्पादित किया गया । प्रभु के मुखारविन्द की प्रसन्नता और भव्य मूर्ति को देखकर कोतवाल भी कुछ न बोल सके । रानी साहब (मुआ जी) राजा साहब दिलीप कुमार ने कहा, हम जुलूस लेकर आगे बढ़ेंगे । देखो, क्या होता है ? ऐसी छोटी अवस्था में ऐसा कठोर व्रत, साधना और व्रत की दृढ़ता साधारण जीवों के लिये दुसाध्य ही था । प्रभु के भक्तों ने महान साहस का परिचय दिया । अन्त में कोतवाल आया और उसने चरण छुये ।

भगवान गुरुदेव की समाधि जिस स्थान पर बनी हुई है वह भी एक दिव्य भूमि है । भगवान केशवानन्द जी के सौ वर्ष पहले से ही संतों की तपःस्थली

ही थी। यहाँ पर पहले केवल ऊँचे नीचे खंडहर की कंकड़ीली भूमि, अनेक खाइयाँ, तुलसी एवं बबूल के वृक्ष, एक कच्ची गुफा, कच्ची कुटी और धुनी थी। अन्तिम संत ब्रह्मचारी जी महाराज नाम के तपस्वी संत थे। जीवन के अंतिम समय में सुन्दर सेठ नामक एक शिष्य को पंचनामा बनाकर दिया कि जब तक कोई योग्य अधिकारी संत न मिले तब तक तुम लोग मिलकर इस भूमि की रक्षा करना। योग्य संत मिलने पर इस भूमि का अधिकार उसी को दे देना। अब श्री नारायण प्रभु जी भगवान केशवानन्द जी की आज्ञा से इस भूमि पर उनकी समाधि बनाकर भूमि को प्रयोग में लाने लायक बनाना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि महाप्रभु को इन सब बातों का ज्ञान भी नहीं था कि यह किसी अन्य की भूमि है, क्योंकि गुरु महाराज क्या, अन्य संत लोग भी यहीं पर निवास करते थे। इसके अतिरिक्त कई अन्य वृद्ध लोगों ने श्री महाप्रभु से प्रार्थना करी कि आपने बड़ा ही कल्याण करा जो इस भूमि का उद्धार कर दिया। यहाँ तो दिन के समय में भी कोई भूल कर नहीं आता। एक दिन ब्रह्मचारी जी का सेवक सुन्दर सेठ आया था, आश्रम की रूप-रेखा को देखकर उसे बड़ी ही शान्ति हुई और उसने कहा कि अब मैं ब्रह्मचारी जी के ऋण से उऋण हो गया। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम समय में पंचनामा बनाते हुये यह आदेश दिया था कि जब तक योग्य संत न मिले तुम पांचो जने मिलकर इस भूमि की रक्षा करना। उनमें सरपंच मुझको ही बनाया था। अब वह कागज हम आपको दे देंगे। अब आप जैसे योग्य तपस्वी, त्यागी, ज्ञान स्वरूपी संत कहाँ मिलेंगे ?

साधु का हृदय सदा साधु ही रहता है। महाप्रभु ने कहा, आपका विचार सुन्दर ही है, लेकिन हम कागज क्या करेंगे ? हमें भी गुरुदेव की आज्ञा का पालन करना है। सद्कर्म करना और कराना है। परोपकार के लिये जीवन मिला है, परोपकार में ही बिताना है। ठीक है, आप भी संत की सेवा से उऋण हो गये, योग्य संत को भूमि जिम्मे लगाकर। हम भी इस भूमि को गुरु की सेवा में लगा कर उऋण हो जायेंगे। भूमि का क्षेत्रफल लगभग साढ़े तीन बीघा था, जिसमें आधा से ज्यादा ऊँची नीची खाइयाँ थीं। महाप्रभु को

जगत की कुबुद्धि का क्या पता था कि मनुष्य कहे हुये वचन को भी बदल लेता है। संतों की वस्तु पर अपनी नियत भी डुबा सकता है ?

भगवान से विरोध करने वालों को जब यह ज्ञात हुआ कि सुन्दर सेठ ने महाप्रभु को भूमि अर्पण कर दी तथा कागज देने को भी कह रहा है, तो उन लोगों के मन में बड़ा ही क्लेश हुआ, अतः धोबी के कुत्ते की तरह उससे जाकर मिले और कुबड़ी मन्थरा जैसे बन गये प्रभु नारायण की भक्ति में विघ्न डालने को। प्रातःकाल गंगा स्नान करने के पश्चात समाधि के पास बैठ कर श्री गुरुदेव जी दासबोध पढ़वा कर भीष्मदेव नामक भक्त से सुन रहे थे। इतने में एक व्यक्ति कुछ कागज लेकर आया और कहा कि हम यहाँ के प्रधान से बात करना चाहते हैं। संकेत के द्वारा उसको बैठा दिया गया। दासबोध का निश्चित अध्याय समाप्त होने पर श्री गुरुदेव भगवान तो समाधि पर पूजा करने लगे, वह सेवक भी पूजा कराने चली गई। भीष्मदेव ने अपने मन से उससे बात करके कागज ले लिया। बाद में वह कागज पढ़ा गया, जिसमें लिखा था कि आप इस भूमि को फौरन खाली कर दीजिये, यह भूमि हमारी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। नालिश भेजने वाला था सुन्दर सेठ। हम लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ऐसी उसकी कुबुद्धि की नोटिस से। महाप्रभु दयालु थे, सच्चे थे, वह ईश्वर के पुजारी और त्यागी थे। उन्हें किसी की जमीन से क्या मतलब ? जिसने अपने सर्वस्व को त्यागने में एक पल नहीं लगाया, उसको तीन बीघे भूमि से क्या प्रयोजन था। लेकिन समस्या यह थी कि उस स्थान पर भगवान गुरुदेव की समाधि बन चुकी थी, अतः सुन्दर सेठ को बुलवाया, उसने अपने पुत्र कमला को भेजा। वह आश्रम देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, कहने लगा, यह तो पता ही नहीं लगता कि यह वही भूमि है जिसमें ब्रह्मचारी जी की कुटिया थी। श्री महाप्रभु ने कहा, "इस प्रकार की नोटिस आपके पिता जी की ओर से आई है। नोटिस के पूर्व तो वह स्वयं आये थे और कह गये थे कि मैं ब्रह्मचारी के ऋण से उऋण हो गया, और पंचनामा का कागज भी आपको ही सौंप दूंगा। बल्कि हमने कहा, कागज की क्या आवश्यकता है, हमको तो आश्रम बनाने की कोई इच्छा नहीं है। इस स्थान पर श्री गुरुदेव भगवान की

समाधि होने से पूज्यनीय एवं शान्तिदायक स्थान इच्छा न होते हुये भी बनाना पड़ रहा है। लेकिन जब आपके पिता जी के द्वारा ऐसी नोटिस आई तब हमको बड़ा ही आश्चर्य लगा। ठीक है, आप पिताजी को कह दीजियेगा, श्री गुरुदेव भगवान की यहाँ पर समाधि होने के कारण इस स्थान में कार्यक्रम तो होंगे ही, इसकी उपयोगिता सदा रहेगी ही। अतः पिता जी की अगर इच्छा नहीं है कि संत की भूमि में सत्कर्म हों तो वह जहाँ चाहें श्री गुरुदेव के पंचतत्व के शरीर के सहित समाधि उखाड़ कर रखवा दें, हम वहीं पर उनकी सेवा करेंगे।" कमला ने कहा, पिता जी को इस प्रकार इतने बड़े संत के समक्ष झूठ नहीं बोलना चाहिये था। यह भूमि तो सन्तों की है, हम लोगों का इसमें कोई अधिकार नहीं है। यह सरकारी परती जमीन पड़ी थी जिसको सरकारी अफसरों ने ब्रह्मचारी जी की भक्ति से प्रभावित होकर उनके नाम कर दी थी। अब हम पिता जी से सब बातों को बतलायेंगे।

विनाश काले विपरीत बुद्धि की युक्ति सिद्ध होनी थी। मुन्दर सेठ कुबुद्धियों की संगत से नीचत्व पर उतर आया था। फलतः उसने मुकदमा दायर कर दिया। प्रयाग के माने हुये प्रतिष्ठित लोगों ने उसको समझाया कि यह तो धार्मिक एवं परोपकारिक संस्था है। ऊँची नीची कंकड़ीली, नाले और खाइयोंदार परती भूमि के लिये आप क्यों वृद्धावस्था बिगाड़ते हो, लेकिन क्या रावण ने विभीषण की नीति को माना? अंत में लोगों ने कहा, आप दस हजार रुपये नगद ले लीजिये और सुलहनामा कर लीजिये, आपकी भूमि इतनी कीमत की तो है भी नहीं। परन्तु उसने किसी की सलाह को नहीं स्वीकार किया। उसका एक कारिन्दा ठाकुर नाम का था। वह बहुत परेशान करता रहता था। महाप्रभु की साधना-स्थली गुरु-समाधि से काफी दूर पर थी। भरी दोपहरी में जब भी हल बैल लेकर समाधि के समीप जोतने के लिये चला आता। इस सेवक और मुन्ना जी को सुनते ही उसको समझाने के लिये आना अनिवार्य हो जाता था। भरी दोपहरी में आओ, फिर दिमाग लड़ाओ, तब वह जाता था। हिन्दू था, इतना तो समझता ही था कि वह अनर्थ कर रहा है, क्योंकि जिस भूमि पर कभी जोताई और बुआई नहीं हुई और जिस मरुभूमि

को सत्संग भजन के लिये उपयोगी बनाया गया है उस पर खेत बोने के लिये प्रयास करना भक्ति में विघ्न पहुँचाना नहीं तो क्या है। सुन्दर सेठ अपनी जिन्दगी भर मुकदमा लड़ता रहा, हाईकोर्ट तक से हार गया, परम धाम को चला गया। फिर कमला भी धन के साथ-साथ मुकदमे का वारिस बनकर लड़ता रहा। दो-चार साल में अपना भी काल का ग्रास बन गया। यह सब है संसार, आते जाते हैं लोग, कर्मों का भोग भोगते रहते हैं। लेकिन चेतना नहीं आती। इसके अतिरिक्त अन्य जो अस्सी बीघा जमीन है, वह सब खरीदी हुई है।

श्री नारायण आश्रम का प्रादुर्भाव :—श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु जी की बिल्कुल ही इच्छा नहीं थी कि वह आश्रम का निर्माण करें। वह स्वतन्त्र एकांतिक भक्ति करना चाहते थे। आपके गुरुदेव भगवान केशवानन्द जी की आज्ञा और आशीर्वाद निरर्थक कैसे जाता ? कुछ लोग जो महाप्रभु से निरर्थक द्वेष रखते थे, जैसे राम से रावण, अनेक प्रकार से भक्ति में विघ्न पहुँचाते रहते थे। इन्हीं सब विघ्न बाधाओं और उपद्रवों को देखकर सुरेन्द्रनारायण अग्रवाल ने बिना गुरुदेव की आज्ञा के गजाधर प्रसाद जी भार्गव से सलाह लेकर गुरु समाधि को श्री नारायण आश्रम संस्था के नाम से रजिस्टर्ड करवा लिया। रजिस्टर्ड कर लेने के पश्चात्, रजिस्ट्रेशन का कागज श्री महाप्रभु के समक्ष रख दिया। प्रभु के पूछने पर कि यह क्या है ? तब उन लोगों ने सब बातें बतलाईं। जो होना था वह हो ही चुका। गुरुदेव जी क्या कहते। लेकिन उन्हें यह सब रुचिकर नहीं लगा। गुरु की इच्छा को कौन टाल सकता है ?

महाप्रभु का जीवन-चरित्र लिखना एक महाभारत ही लिखना है। हम लोग दो-तीन जने भी अंगी बनकर ही इस संसार में आये थे। रानी साहब (मुआ जी) तथा इस सेवक को तो सदा युद्ध करने की ही सेवा करनी पड़ती थी। इतना सब होने पर भी विद्वेषी भक्तों को शान्ति नहीं मिली।

तारीख ४–५–१९५७ को फिर एक घटना घटी। श्री गुरुदेव महाप्रभु का सत्संग हो रहा था। कोई भक्त गुरु समाधि का दर्शन करने आया था। उसने

देखा, समाधि जाने वाली सड़क के ऊपर कई बड़े गड्ढे खोद दिये गये हैं जिससे कि कोई समाधि का दर्शन करने जा न सके। गुरु समाधि पर कोई जाकर पूजा न कर सके। उसी समय मुआ जी वहाँ पर गईं और गड्ढा खोदने वालों को कहा, तुम लोगों को पाप करने में डर नहीं लगता, यह तुम भक्तों के लिये गड्ढा नहीं खोद रहे हो, अपने लिये खोद रहे हो। उसी समय उन्हीं मजदूरों से गड्ढा पटवा कर उन लोगों को भगा दिया।

गुरुदेव की कुटिया में अग्नि :— किसी तरह मामला दो-चार दिन शान्त रहा। उस दिन सायंकाल ६ बजे भगवान गुरुदेव की समाधि का दर्शन करके तो हम लोग आये थे। रात्रि ८ बजे आकर बाबादीन बढ़ई ने बतलाया कि भगवान गुरु की समाधि के पास बड़ी जोर से आग जल रही है। महाप्रभु ने सुनकर भी अनसुनी कर दी। हम लोगों ने सोचा, दुःख दिलाने वाला भी प्रभु है, दिलाता है तो दिलाने दो। योग क्षेम जब करने की इच्छा होगी तब करेगा। प्रातःकाल जब गंगा स्नान करने तथा गुरु पूजन के लिये गये, तब देखा कुटी तो राख के ढेर के रूप में पड़ी थी। लेकिन भगवान गुरुदेव की फोटो और जिस चौकी पर फोटो रखी थी वह और पूजन की आसनी ज्यों की त्यों पड़ी थी। उसमें आग की लपट तक नहीं आई। मुआ जी ने दूसरे दिन मल्लाहों को लगा कर उससे भी अधिक सुन्दर कुटी बनवाई। पुनः उसमें कुप्रवृत्ति वालों ने आग लगवा दी, तत्पश्चात् महाप्रभु ने हम लोगों से कहा, हम तो बनवासी हैं। हमको इसी प्रकार वृक्ष की छाया में बैठकर पूजन भजन करने दो।

शिष्यों से साधन :— महाप्रभु स्वयं तो कठोर से कठोर व्रत करते ही थे, लेकिन साथ में हम लोगों की भी परीक्षा लेने में कसर नहीं रखते थे। एक बार पूस के महीने में जब रात्रि दिन कोहरे के रूप में जल बरसता जैसा मालूम पड़ता था, खौलता हुआ जल भी हाथ में गर्म नहीं लगता था, हम लोग कहाँ तक गुरुदेव की आज्ञा में तत्पर रहते हैं, विचार कर, इस सेवक को, घनश्याम जी और गौरी जी को आज्ञा दे दी कि दिन में एक बार कच्चे पपीते को खाना, और रात्रि को एक बार चाय पी लेना। दिन भर गुरु-

समाधि पर बैठकर गुरु नाम का जाप करना, कुछ निश्चित संख्या का आदेश था जो सात दिन में पूरा करना था। समाधि पर कोई ऐसी रक्षा का साधन भी नहीं था जो बर्फीली हवा से रक्षा करता। भगवान गुरु की शक्ति से वह पूरा हो गया।

कीर्तन में भी रुकावट—जिस दिन साधन समाप्त हुआ उसके दूसरे दिन से ही अड़तालिस घंटे का अखंड कीर्तन गुरु समाधि पर हुआ। भगवान गुरुदेव श्री महाप्रभु जी, कोमल से भी कोमल, नम्र से भी नम्र एवं कठोरसे भी कठोर थे। कीर्तन में लाउड स्पीकर लगाया गया था। रात्रि दस बजे कीर्तन करने वालों में से एक भक्त गुरु समाधि से साधना स्थली में महाप्रभु जी के पास आया और बोला—भगवन्, कुछ व्यक्ति लोग आये हैं और लाउड स्पीकर बन्द करने को कह रहे हैं। महाप्रभु जी परम सरल थे, उन्होंने कहा, भगवान का नाम तो सभी को प्रिय होता है, यदि किसी को कोई दिक्कत होती है तो ४ घंटे के लिये बन्द कर दो न, फिर चला लेना। उन लोगों ने कहा ठीक है। इतने में वह लोग पुलिस को ले आये कि लाउड स्पीकर यह लोग क्यों बजा रहे हैं। जिस समय पुलिस आई लाउड स्पीकर बन्द था। फिर भी यह लोग साधना स्थली पर आये और इस सेवक से पूछने लगे कि यह लाउड स्पीकर किसके आदेश से बज रहा है। हमने कहा प्रभु का कीर्तन है, उसी के आदेश से बज रहा है ताकि सभी के कानों में भगवान का नाम पड़े। भगवान गुरु की समाधि गंगा के किनारे एकदम एकांत में है, बस्ती से दूर है। कहिये क्या बात है ?

वह कहने लगा, कीर्तन कराने का मालिक कौन है ? हमने कहा, जिसके नाम का कीर्तन है, वही इसका मालिक है। यों तो मेरे गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु के आदेश से ही यह कीर्तन हो रहा है। फिर हमने कहा, आप लोगों को तो परम प्रसन्न होना चाहिये कि ऐसे त्यागी, कर्मनिष्ठ संत के द्वारा विश्व-कल्याण के हेतु यह कीर्तन हो रहा है। इतना सुन कर वह चले गये।

कुछ दिन पश्चात् श्री गुरुदेव महाप्रभु ने अपनी साधना स्थली में ४८ घंटे का कीर्तन किया था। लाउड स्पीकर लगा हुआ था, धूम-धाम से परम

आनन्द के साथ कीर्तन हो रहा था। दो सौ के लगभग भक्त बैठे थे। सब प्रेम में तन्मय थे। श्री गुरुदेव जी भी समाधि अवस्था में लीन थे। किसी व्यक्ति ने आकर हमसे कहा, देखिये आपको कोई बाहर बुला रहा है। गुरु सेवा करना ही शिष्य की सारी पूजा और साधना है। ऐसा सोच कर बाहर गये तो देखा, खाकी वर्दी वाले भगवान खड़े हैं। वह कहने लगे, लाउड स्पीकर वाला कहाँ पर है, हम उससे बात करना चाहते हैं। हमने कहा, हम ही लाउड स्पीकर बजाने वाले सेवक हैं, कहिये क्या काम है! खाकी वर्दी वाले भगवान बोले, यदि मैं आपको बड़े घर में पहुंचा दूं तो! हमने कहा, जो मेरे मालिक की कृपा होगी वही होगा, आप मेरे इस शरीर को जरा छूकर तो देखिये। आप हिन्दू होकर विधर्मियों जैसी बातें करते हैं। आपको हिन्दू होने के नाते धिक्कार है। कम से कम भले मनुष्य की तरह सभ्यता से बातें करिये। सब बातें समझिये। इस समय मध्यान्ह है, केवल एक बजे हैं। इस समय का अनुमति पत्र है। आप जिस ओहदे पर नियुक्त हैं वह तो सच्चाई और इन्साफ का स्थान है। बेचारे सज्जन थे, गलती मान ली। उन्हें प्रसाद दिया गया। उसके पश्चात वह भक्त हो गये और कभी-कभी श्री महाप्रभु के दर्शन करने आते थे।

भगवान गुरुदेव महाप्रभू सदा यही कहते हैं कि मानव जीवन महान पुण्य से प्राप्त हुआ है। इसको भौतिक भोग में आसक्त होकर नहीं नष्ट करना चाहिये। खाना, पीना, सोना तो पशु भी करते रहते हैं, अतः ईश्वर के लिये कुछ न कुछ करते रहना चाहिये। बैशाख मास था। आपने ग्रामवासी भक्तों को बुला कर कहा, "देखो, भगवान का अमृतमय नाम जीवन को अमृत बना देता है। प्रभात की वेला में अगर उस नाम का कीर्तन करते हुये ग्राम परिक्रमा करी जाय तो कितना अमर फल देने वाला होगा! नाम की ज्योति प्रत्येक के दिल में जल उठे, उसके मधुर नाम का सब पान करे, हमारी तो सदा यही इच्छा रहती है। भगवान का आनन्दमय नाम जीवन की यथार्थता को आलोकित कर देगा। सहज समाधि की उच्चतम स्थिति पर बैठाने की यही सरल साधना है।" सब लोगों ने सहमत होकर एक स्वर से कहा—हम सभी प्रभात फेरी में सम्मिलित होंगे।

दूसरे दिन से वैशाख प्रारंभ था। प्रभात फेरी का कार्यक्रम हो गया। आगे एक संत हारमोनियम लिये रहते थे, पीछे-पीछे सूरदास नामक ढोलक वाला भाई रहता था, साथ में अन्य साज वाले और लगभग १०० व्यक्ति केवल भाई रहते थे। 'कृष्ण गोविन्द गोपाला, भज मुरली मनोहर नन्द लाला' यही नाम धुनि थी। बाबा जी भगवान के रसिक प्रेमी थे। परम मधुर स्वर से वह कीर्तन करते चलते, पीछे-पीछे अन्य लोग। घर-घर से बच्चे बड़े उठ-उठ कर साथ में हो जाते, लेकिन प्रभु की गजब की लीला है—"प्रभु निराली तेरी शान है आँख वालों को ही तेरी पहिचान है।" पन्द्रह दिन तक प्रभात फेरी का कार्यक्रम निर्विघ्न बड़े ही आनन्द से चलता रहा, उसके पश्चात विघ्न पड़ना प्रारम्भ हो गया। पहले दिन तो प्रभात फेरी वालों को कुछ लोगों ने गालियाँ दीं। उन लोगों ने आकर महाप्रभु से निवेदन किया। प्रभु खूब हँसे और बोले—"देखो, आज भगवान ने आप लोगों के ऊपर कितनी करुणा दृष्टि बरसाई है। आप लोगों के अन्तःकरण का प्रेम प्रभु को आपकी ओर खींच लेगा। ऐसी परिस्थिति में निर्भीकता से हरि का नाम स्मरण करते रहना चाहिये। अपने नियम में शिथिलता नहीं होनी चाहिये।" प्रभु ने प्रसाद मँगवा कर सबको बाँटा। सब लोग बड़ी प्रसन्नता से महाप्रभु का जयकारा लगाते हुये गये।

दूसरे दिन कुछ बच्चों ने कीर्तनकारों के ऊपर छोटी-छोटी कंकड़ियाँ फेंकी और कहा—"फिर आ गये निद्रा भग्न करने के लिये। यह लोग न जाने कहाँ के फालतू हैं, न अपने आप सोते हैं न सोने देते हैं।" कीर्तनकार साधू ने कहा, "भय्या! यह ६ बजे प्रातःकाल की अमृत बेला है। एक क्षण भगवान का नाम लेकर हृदय-गागर में अमृत भर लो। न जाने किस दिन जीवन की संध्या हो जायेगी।" ऐसा कहकर कीर्तन करते हुये भक्तगण आगे बढ़ गये। १ घंटे प्रभात फेरी होती थी। भक्त लोगों ने लौटकर सब घटना का वृत्तांत बतलाया।

श्री महाप्रभु ने कहा, "वह भी हमारे ही भगवान हैं। विरोध करने वालों का भी हमारा स्वागत है। उनको भी हम आशीर्वाद देते हैं। भगवान उनको सद्बुद्धि प्रदान करे।" भक्त गणों को उत्साह मिला, एक नयी चेतना जाग्रित हुई।

महाप्रभु प्रेम के अथाह समुद्र हैं। वह सभी से प्यार करते हैं। बाल्या-वस्था से सघन जंगल, पशु पक्षी एवं नीरव आकाश से वह वार्त्तालाप करते थे। सरोवरों से और सरोवरों की मछलियों से एकांत में बैठ कर प्रेम देते और प्रेम लेते थे। उनको किसी की आवश्यकता नहीं थी। अभी भी प्रभु एकांत में आनन्द मना लेते हैं। गुरु समाधि की मार्गहीन खाइयों पर निर्भीक रूप से विचरण करते थे। दिन भर उस घोर जंगल में बैठे रहते थे जहाँ दिन में एक गौ गंगा जी का जल भी पीने नहीं आती थी। आज उन्हीं की साधना और तपस्या का फल है कि गुरु समाधि श्री नारायण आश्रम नाम से विभूषित होकर जंगल में मंगल हो रहा है। महाप्रभु को लोक-कल्याण में महान संकटों का सामना करना पड़ा।

प्रभात फेरी का कार्यक्रम चल ही रहा था। प्रभु कर्मठशील थे। उन्होंने कभी भी आलस्य से प्रीति नहीं लगाई। महान पुरुषार्थी थे और छोटे से छोटा काम करने में भी संकोच नहीं करते थे। यह आपके चरित्र की महानतम विशेषता है।

प्रभात फेरी समाप्त होने के पश्चात, कुछ और ऐसा रुचिकर और कल्याणकारी कर्म होना चाहिये जिससे जीवों का वास्तविक उद्धार हो। आप प्रेरणा प्राप्त करने के लिये भगवान गुरु की समाधि के समीप विराजे हुए थे कि कुछ भक्त लोग आये जिसमें एक वकील भक्त भी थे, उन्होंने दण्डवत प्रणाम करके श्री गुरुदेव से निवेदन करते हुये बतलाया कि कचहरी में एक मुकदमा दायर किया गया है जिसमें अपराधी महाप्रभु, निर्मल जी, घनश्याम जी और रुक्मणी जी को बनाया गया है। अपराध में यह दिखाया गया है कि इन लोगों ने, मुकदमा दायर करने वालों के कटहल चुराये, ढेले चलाये और दिवाल तोड़ी। यह सुनकर सभी भक्त लोग खूब हँसे। हम लोग भी खूब हंसे। धन्य हो मेरे राम। किस-किस स्वरूप में आप आते हैं और क्या-क्या करवाते हैं। मीरा को तो विष का प्याला ही पिलाया। यहाँ तो चोरी करने के जुर्म में मुकदमा भी दायर करा दिया। दायर करने वालों ने अनेक प्रकार की चाल चलकर

सबको कचहरी में ले जाना चाहते थे, लेकिन भगवान अपने भक्तों की सच्चाई की आन को सदा से रखते आये हैं।

जाको राखे साइयाँ, मार न सकता कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय॥

भगवान गुरुदेव महाप्रभु सवारी पर चढ़ते नहीं थे, वे आश्रम के अतिरिक्त कहीं जाते नहीं थे। जज में दूसरा कोई नहीं, वही मेरा इष्ट है। जज ने मुकदमा खारिज कर दिया। धन्य हो नाथ ! कैसी-कैसी परीक्षा आप लेते हैं। मानव मन की कितनी बड़ी भूल है। जिसे वह अन्धा बनकर, पृथ्वी में दर-दर ढूँढ़ता हुआ ठोकर खाता फिरता है वह अपनी आँखों में ही छिपा बैठा है। वास्तव में वही पुष्प है, वही रस लेने वाला भौंरा है। वह स्वतंत्र है, स्वच्छन्द है, सबमें रमण करने वाला वह दिव्य तत्व सबको अपने इशारे पर नचा रहा है।

उस ईश्वर की लीला अनोखी है। महाप्रभु से अकारण द्वेष रखने वालों ने समाधि जाने का रास्ता बन्द करने के लिये दिवाल बनवा दिया, लेकिन बनी बनायी दिवाल शाम को अपने आप गिर पड़ी। दो बार पूरी दिवाल बनाई गई और सायंकाल वह अपने आप गिर जाती थी। अन्त में कारीगरों ने बनाने से जवाब दे दिया कि हम लोग बाल बच्चे वाले हैं। निस्सन्देह महाप्रभु एक पहुँचे हुये सिद्ध पुरुष हैं। हम लोग दिवाल नहीं बनायेंगे चाहे हमें यहाँ पर रखा जाय या न रखा जाय।

सच में स्वामी राम ने ठीक ही कहा था— हे मेरे परमात्मा ! तेरे ऋषियों की गम्भीर वाणी गुफाओं से निकल कर सोती हुई दुनिया को बुलाती, जगाती और हिलाती है। अत्याचार सिकुड़ कर स्तम्भित हो जाता है। आपके समक्ष देश और काल का घूंघट उघड़ जाता है। आप अपने भक्तों के लिये परम दयालु होकर मार्ग के कंटक अपने कोमल हाथ से सफा कर देते हैं। अपने बाहुपाश को फैलाकर अपने प्यारे भक्तों को उसमें समेट लेते हैं।

स्वामी राम की वाणी और उनका अनुभव सामने नाचने लगा, यह सब सुनते और देखते हुये।

गुफावास—धन्य है इस झंझावात को जो प्रभु के और भी निकट लाकर खड़ा कर देता है। पर्वतों को हिलाने वाले तूफान जैसी परिस्थितियाँ सच्चे भक्त को आत्मा में स्थित करने का सुगम साधन बन जाती हैं। यह इस सेवक का अपना निजी अनुभव है। आज माता-पिता यदि मोहवश भक्ति में न लगने देने की ताड़ना देते तो शायद यह जीवन-सौरभ गुरु के चरण का मकरन्द पान न किया होता। यदि गुरु के द्वारा कठोर से कठोर शासन और ताड़ना न हुई होती तो यह दिल खाली न हुआ होता। अब इसमें कुछ भी नहीं है। यह उन्हीं की परम कृपा है। मेरे गुरुदेव महाप्रभु को लोक-कल्याण करने के लिये भी महान से महान कष्टों का प्रत्यक्षीकरण करना पड़ा। फिर हम जैसे सेवकों की बात ही क्या? भगवान श्रीराम को लोक-हित के लिये कितनी यातनायें सहनी पड़ीं। जगत-माता, जगत-जननी परामबा को ऋषि वाल्मीक के आश्रम में रहना पड़ा। लोक-हित के लिये प्रभु को सरस कोमल वक्षस्थल को वज्र जैसा कठोर बनाना पड़ा।

मेरे गुरुदेव का हृदय भक्ति रस से सरावोर सदा से रहा है। यद्यपि अद्वैत ज्ञान को ही उन्होंने अपना अंग माना है। आपकी आत्म-निष्ठा और उदार व्यवहार गंभीर और सराहनीय है, लेकिन राम नाम उनका प्राण है। प्रभु हँसते हुये कमल थे। भक्त लोग कहते थे कि महाप्रभु के मुँह से फूल झरता रहता है। आपकी चंचल प्रकृति, मनोविनोदी स्वभाव को देखकर तत्वज्ञ गुरुदेव केशव कहते थे, देखो हमारा कृष्ण आ रहा है। जैसी दिव्य भविष्य-वाणी उनकी थी वैसी ही वाणी आपकी। कुछ पूर्व हम लोगों ही से प्रभु कहने लगे थे, देखो जितने दिन का महानन्द है उतने ही दिन का है। इस आनन्द का रसपान जितना जो कर सके कर ले। फिर हम वही नहीं रह जायेंगे। हम लोग बालक कुछ समझ नहीं पाते थे दिव्य पुरुष के गूढ़ भेद को। उनको पूर्णतः एकांत वास करना है यह किसको मालूम था! एक मास पूर्व आपने कहा, देखो १ लाख सीता राम की पुस्तक गीता प्रेस से मँगानी है। समस्त भक्तों को बांटनी है। कम से कम वह लोग नित्य तीन ही पुस्तक का जाप करें। नाम जप ही कलियुग के जीवों को पार उतारने का साधन है। आपने गीता

प्रेस से सीताराम की पुस्तकें मँगवा कर बांटना भी प्रारम्भ कर दिया। एक लाख पुस्तक मँगवायी गयीं। आपको चार मास के लिये गुफा में रहना था। गुफा में जाने के दो दिन पूर्व आपने कहा, यदि हम गुफा में निवास करना चाहें तो कहाँ पर करें ? फिर अपने आप ही मिस्त्री को बुलाकर उसी मंदिर के अंदर अस्थायी गुफा बनाने की बात की। हम लोग प्रभु के भावों को समझ ही नहीं पा रहे थे। शनैः-शनैः आपने अपने भावों को व्यक्त करना प्रारम्भ किया। कहने लगे इस सेवक से, हमको तो चार मास तक एकांत में रहना है, सूर्य के प्रकाश में नहीं आना है, मौन रहना है, किसी भी प्राणी का सामना नहीं करना है, लेकिन हमने पहले से कुछ भी विचार नहीं किया कि हमको तो गुफा वास करना है और दिसम्बर में श्री राम-नाम महायज्ञ करने का भी संकल्प कर लिया है। मन में तिथि भी निश्चित कर चुके हैं। हमने सब हिसाब-किताब किया तब पता लगा कि यज्ञ प्रारम्भ होने के आठ दिन पूर्व ही हम गुफा के अनुष्ठान से निकल पायेंगे। एक मास का यज्ञ होना है। धूमधाम से यज्ञ होना है। सारा प्रबन्ध करना पड़ेगा। गुरु के ऊपर भरोसा रखना चाहिये।

तत्पश्चात् मुआ जी (रानी साहब), जमुना बहन जी को बुलाया और हमको भी बैठाया। भगवान गुरुदेव बोले—"देखो, हम तो पूर्ण एकांत वास लेकर नियम में बध जायेंगे, न किसी के सामने आ सकेंगे, न बात कर सकेंगे, न कुछ प्रेरणा दे सकेंगे। स्थूल रूप से अलग रहेंगे। सबेरे २॥ बजे गंगा स्नान करने जायेंगे जब सारा संसार सोता रहेगा। उस समय तुम लोगों में से एक गुफा की सफाई करना, एक स्नान करके पूजा लगाना, और एक टार्च और वस्त्र लेकर पीछे-पीछे चलना।" भगवान गुरुदेव बार-बार यही कहते थे कि विचार कर चलना। घबराना नहीं, शान्ति रखना। भगवान की भक्ति से द्वेष करने वाले लोग कुछ न कुछ दूषित विचार अवश्य लायेंगे, लेकिन तुम लोग गुरु को हृदय में बैठाकर सब कुछ करना। रात्रि १२ बजे के पूर्व भी एक बार सभी शरणागत भक्तों को बुलाकर समझाया कि तुम लोग न घबड़ाना, शान्ति धारण करना। विष्णू देवी जी, गौरी जी, घनश्याम जी से कहा, "अपनी-

अपनी सेवा सब ठीक प्रकार से करती रहना।" बारह बजने में पाँच मिनट बाकी थे, हम लोग प्रभु के चरणों के समीप बैठे थे, नेत्रों से सबके जल बह रहा था, किसी को कुछ भी चेत अथवा सुध-बुध नहीं थी। सब साष्टांग दंडवत करके पड़े ही हुये थे कि घड़ी ने ठीक बारह बजा दिया। जब मस्तक ऊपर उठाया तो देखा कि प्रभु नेत्रों से अदृश्य हो चुके थे। हृदय में अजीब पीड़ा हो रही थी सभी के, लेकिन करते क्या ?

उस समय न हम लोग बक्स रखते थे न ताला ही बन्द करते थे। प्रभु विशेष वस्तुओं का रखना पसन्द ही नहीं करते थे। एक गठरी में प्रभु के वस्त्र रहते थे। इस सेवक के पास तो गठरी भी नहीं थी। कभी-कभी तो एक धोती भी पहनने को नहीं रह जाती थी। प्रभु केवल तीन धोतियाँ रखते थे। दो पहनते थे, १ असमय में स्नान करके पहनने के लिये रहती थी। इसके अतिरिक्त जितना भी आ जाय सब बँट जाता था। मुआ जी उस समय अपने घर से आती थीं। जमुना बहन जी उसी समय आई थीं। मन्दिर के सब दरवाजे खुले पड़े रहते थे। मन में कभी कोई भय उत्पन्न नहीं हुआ था, न कभी किसी प्रकार की ऐसी घटना हुई थी जिससे कोई आशंका उत्पन्न होती।

मेरे भगवान गुरुदेव की त्याग भावना और सत्यपरायणता की निष्ठा अद्वितीय है। आप गुफा में दिन भर में सवा लाख पुष्पों को चढ़ाते थे, ध्यान तथा जप जो भी कुछ करते थे उसी में लीन रहते थे। इसके अतिरिक्त ६ बार पूजन ही करते थे। दिन भर जल भी ग्रहण नहीं करते थे। रात्रि को दस बजे अल्प सब्जी का सेवन करते थे। आत्मा में रमण करने वाले प्रभु को कहाँ क्षुधा का भान था। वे स्वयं मुक्ति स्वरूप हैं। शारीरिक अहंकार महत्व भी लीन हो चुका था, उनके समक्ष थी केवल भगवत स्मृति, अतः सतत्, सर्वदा सर्व अवस्था में परमात्म चिन्तन और भजन में तन्मय रहते थे।

प्रभु की भक्ति लोकातीत अवस्था पर पहुँच रही है। लोगों से यह भेद कैसे छिप सकता था। सूर्य के उदय होने पर प्रकाश तो फैलेगा ही। प्रभु से वृथा वैमनस्य रखने वाले लोगों से यह उत्कर्ष कैसे सहन हो सकता था ? जिस प्रकार जल की जोंक वृथा अन्यों का खून चूस कर अपने प्राणों को गँवाती है

उसी प्रकार से असद् विचार वाले वृथा में अन्यों के उत्कर्ष को सहन नहीं कर सकते। वह अपनी हानि करके भी दूसरों को दुख पहुँचाते रहने की चेष्टा करते हैं, ऐसा उनका स्वभाव ही होता है। प्रभु की गुप्त वास की साधना को दो मास भी पूर्ण नहीं हुये थे, बीच में ही आपकी बाल्यावस्था से पूजी हुई राधा-कृष्ण की छोटी सी प्रतिमा को मन्दिर से लोगों ने हरण कर लिया। उस दिन प्रभु का स्वास्थ्य कुछ विशेष गड़बड़ था। हम लोगों को गुफा के बाहर से ही पता लग गया था, लेकिन उपाय क्या था? बारह बजे रात्रि तक प्रभु अपनी गुफा में बेचैनी के कारण सोये नहीं थे, अतः बाहर हम लोग भी नहीं सोये थे। प्रातः-काल ३ बजे जब उठे तब देखा कि मन्दिर के अन्दर से मूर्ति लोगों ने उठा ली है। यह कुकृत्य प्रभु को कष्ट पहुँचाने के लिये ही किया गया था, क्योंकि यदि चोरी हुई होती तो मन्दिर में भगवान के समीप पूजा के चाँदी वाले बर्तन तथा बड़ा सा चाँदी का कमंडल था वह भी जाता। प्रभु ने विचार किया, तत्काल उनको ज्ञात हो गया कि किन लोगों के द्वारा यह आघात पहुँचाने की चेष्टा की गई। अनेक प्रकार से मूर्ति की खोज होने लगी, अन्त में एक वर्ष पश्चात् प्रभु ने अपना आहार भी त्याग दिया जो फलाहार आप लेते थे। शनैः-शनैः सब चोरी के गुप्त षडयन्त्र का पूरा भेद खुल गया तथा किन लोगों ने मूर्ति चुरायी उन मूर्ति-चोरों का भी पता लग गया।

प्रभु की सहनशीलता और त्याग की अद्वितीय शक्ति सराहनीय है। आपके चरित्र की विशेषता यही है कि चाहे जैसी भी परिस्थिति समक्ष आ जाये, लेकिन मुख-मंडल पर कभी उदासी नहीं छाती एवं कर्मठशीलता में शिथिलता नहीं आती।

भगवान ने गीता में कहा है—

"सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत"

जो भक्त जिस श्रद्धा भाव से भगवान का भजन करता है उसमें पात्रा-नुसार वैसी ही भक्ति का उदय होता है। प्रभु की अखंड और अद्वितीय भक्ति थी। एक ओर मूर्ति की खोज तो चल ही रही थी, दूसरी ओर आपके गुफा-वास का चार मास पूर्ण हो गया। अनुष्ठान की पूर्ति के एक सप्ताह पश्चात
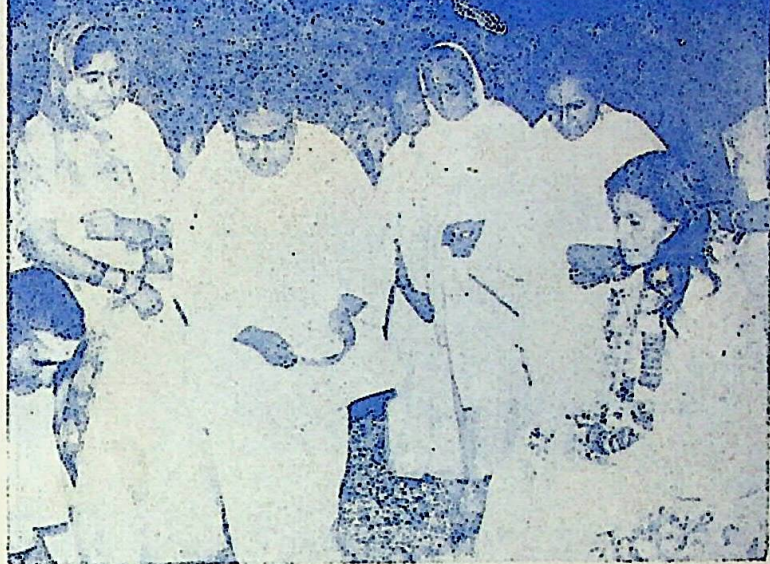
ढाढ़निया जी बनारस में श्री गुरुदेव भगवान का पूजन करते हुए ।

मद्रास में पूज्य गुरुदेव भगवान पुष्पार्चन करते हुए ।

ही श्री श्रीनाम महायज्ञ प्रारम्भ होना था। उनके आदेश, कृपा और वरद हस्त के फलस्वरूप पहले से ही लगभग सब प्रबन्ध हो चुका था।

श्री राम नाम महायज्ञ

गुप्त वास लेने के एक मास पूर्व ही आपने एक विराट महायज्ञ का दृढ़ संकल्प कर लिया था। विगत वर्ष तक आपने १५ हजार व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सवा इक्कीस लाख राम नाम जप कराने का व्रत पूर्ण किया और स्वयं भी चार मास तक गुप्त वास में रहकर भगवान की विशेष रूप से आराधना की। यह व्रत नवम्बर १९५८ में पूर्ण हो गया। इस व्रत की पूर्ति होने के पश्चात आपकी शुभ प्रेरणा से विश्व-कल्याण के निमित्त एक मास का श्री राम नाम महायज्ञ का अनुष्ठान आयोजित किया गया। इस यज्ञ के कार्यक्रमों को चार विभागों में रक्खा गया था। प्रथम सप्ताह द्वादश मन्त्र का अखण्ड कीर्तन, द्वितीय सप्ताह भागवत् सप्ताह, तृतीय सप्ताह मानस सम्मेलन एवं चतुर्थ सप्ताह सन्त सम्मेलन। इस यज्ञ का अद्भुत सौन्दर्य दर्शनीय था। जनता की अपार भीड़ से पुण्य गङ्गा के तट से तेलियर-गंज तक पैर रखने की भी जगह नहीं रहती थी। इक्यावन पंडितों द्वारा एक मास तक आहुति का कार्यक्रम रहा। श्री नारायण महाप्रभु का यह ध्येय है कि शुभ कर्म के द्वारा ही शुभ फल की प्राप्ति होती है। अतः आप लोग स्वयं सदैव कर्म में निरत रहिये जिससे सचित पाप-कर्म की राशि भस्म हो जाय। हृदय में ज्ञान प्रदीप जग जाये। आपका प्रत्येक कर्म इसी हेतु से होता है।

महापुरुषों की शक्ति अलौकिक होती है। वे महान कार्यों को सरलता से कर लेते हैं, क्योंकि प्रभु की सर्वज्ञता एवं अखण्ड शक्ति का उन्हें पूर्ण विश्वास होता है। इतने विशाल यज्ञ के लिये धन का कोई प्रबन्ध नहीं था क्योंकि आश्रम में एक पैसे का चन्दा आज तक लिया नहीं गया है। भगवान गुरुदेव जी का ध्येय है कि जगतपति, त्रैलोक्य के स्वामी भगवान

की आराधना करें और जगत के सामने हाथ पसारें, यह कैसी उल्टी बात है। प्रभु का कार्य तो प्रभु स्वयं सम्हालेंगे। तुम लोग यज्ञ का कार्यक्रम प्रारम्भ करो। गोस्वामी जी ने भी लिखा है—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहि कहाँ विश्वासा।

सर्वप्रथम यज्ञ के पत्रक वितरण के लिये छपने थे। एक भक्त बालक को आज्ञा हुई। उसने भी रुपये की समस्या रक्खी तो सब चुप हो गए। दूसरे ही दिन एक भक्ता श्री महाप्रभु जी की गुफा से पुष्प आदि हटाकर सफाई कर रही थी। उसको फूल में ५००) पड़े हुये मिले। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बस वे रुपये पत्रक छपाई के लिए दे दिये गये। ऐसी ही अनेक घटनायें यज्ञ के अन्तर्गत देखी गयीं। सब कार्य तो धन से ही होता था। अनेक अवसरों पर रुपए के लिए कार्य रुकने वाला होता कि शरणागत भक्तों में खलबली मच जाती। वे सब प्रभु के दृढ़ स्वभाव से परिचित थे कि यज्ञ का कार्य तो होगा ही, भले ही पृथ्वी आकाश में चली जाय, तारे नीचे उतर आयें। साथ ही किसी से कहना भी नहीं है। बस उसी क्षण न जाने कहाँ से ठीक उतना ही रुपया खर्चे के लिये मिल जाता। प्रभु का कार्य भला कहाँ रुकने वाला था। यज्ञ तो निर्विघ्न पूर्ण होना ही था।

यज्ञ की पूर्णाहुति में ५१ ब्राह्मणों को १००००) की दक्षिणा देनी थी। यहाँ एक पैसा भी संचित करके नहीं रक्खा जाता था। बस इधर से आया उधर अनेक भगवत कार्यों में लगा दिया तो १००००) की समस्या कहाँ से सुलझे। बस उसी दिन अचानक १५००) का ड्राफ्ट बाहर के भक्त ने, ५००० का एक ड्राफ्ट विदेश के भक्त ने भेजा। इसी प्रकार इधर-उधर से ठीक १०००० रु० स्वयं आ गया। भगवान की अपार दया को कौन समझ सकता है।

सब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसी प्रकार यज्ञ की समाप्ति में एक विशाल भण्डारा हुआ जिसमें कोई बन्धन तो था ही नहीं, जो आये सो खाये, जितना मन चाहे खाये। प्रातः से रात्रि तक भण्डारा चलता रहा, पता नहीं १ लाख कि डेढ़ लाख लोगों ने प्रसाद पाया। अगम्य भीड़ थी। पूड़ी की

डलिया लेकर लोग चलते तो बीच में ही डलिया लुट जाती। दीन, दु:खी, भिखमंगों को तो मानो स्वराज्य मिल गया हो। आज उन्होंने भोजन से तृप्ति की। इस तरह से सम्पूर्ण यज्ञ में लाखों रुपये खर्च हुए। कहाँ से आये कहाँ गये, कुछ पता नहीं मानो स्वयं भगवान रघुनाथ कुवेर के रूप में दोनों हाथों से अपार धनराशि लुटा रहे हों। यह महाप्रभु जी की कठोर तप, दृढ़ निश्चय, प्रबल आत्म-शक्ति का प्रथम दर्शन जनता जनार्दन के समक्ष हुआ। इस विशाल यज्ञ का विराट सम्पादन (केवल भगवत शक्ति से) देखकर सबने दांतों तले उँगली दबा ली। उसके बाद तो १६ यज्ञ यज्ञादि एव सम्मेलन आदि महाप्रभु जी के कर-कमलों से निर्विघ्न सकुशल सम्पादित हो चुके हैं, लेकिन लोगों का यही कहना है कि श्री राम नाम महायज्ञ जैसा यज्ञ न प्रयाग में हुआ था, सम्भव है न होगा ही। सब भगवान गुरु की कृपा है।

श्री नारायण महाप्रभु की अद्वितीय साधना

प्रति वर्ष त्रिवणी में माघ मास में कल्पवास में आप लगातार २५ वर्ष से जाया करते हैं। त्रिवेणी से लौटने के पश्चात् आपकी दशा परिवर्तित होने लगी। आपका स्वभाव बाल्यवत था। अहोरात्रि बालकों के सदृश मुस्कराते रहते थे, भक्तों से खेलते रहते थे, किन्तु अब स्थिति बदलने लगी। मुखमंडल पर अद्भुत तेज राशि बरसने लगी। भाव एकदम शान्त हो गया और गम्भीर रहने लग। विशेष रूप से एकान्त पसन्द आने लगा। कुछ सोचते रहते थे। इसी प्रकार दो मास चलता रहा। वैशाख लगने के दो दिन पूर्व ही उन्होने आश्रमवासी सब भक्तों को एकत्रित किया और कहा, "तुम लोग भक्ति करने मेरी शरण में आये हो, अतः जो हम कहें वही तुम लोगों को करना चाहिये। तुम लोगों को परम विरक्त होना चाहिये। यदि कोई परिस्थिति ऐसी आ पड़े कि खाने के लिये केवल नमक पानी मिले तब भी तुम्हें परम प्रसन्न होकर गुरु-सेवा में तत्पर रहना चाहिये। अपने मन का कार्य न करके गुरु के अनुकूल होना चाहिए।"

इस वार्तालाप के दो दिन पश्चात् अचानक ऐसी घटना घटी कि प्रभु ने फलाहार का भी त्याग कर दिया। दो दिन तक तो केवल जल पीकर ही रहे। तीसरे दिन भक्तों के बहुत आग्रह करने पर प्रातः मट्ठा और सायंकाल केवल चाय लेनी प्रारम्भ कर दी। पूरे १६ वर्ष हो चुके, अपने दस सेवकों के साथ आप इसी प्रकार शरीर को धारण कर रहे हैं। आपकी साधना सबसे कठोर हैं। कुछ शिष्यों को आपने आदेश दिया कि तुम लोग दिन में एक बार फल ले लिया करो, किन्तु आप स्वयं बीच में शरबत या मिश्री या नींबू का पानी भी सेवन नहीं करते। इस सूक्ष्म आहार पर आप कठिन परिश्रम करते रहते हैं। प्रातः ४ बजे से उठकर रात्रि १२ बजे तक नाना कर्मों में रत रहते हैं। यह आपके प्रबल आत्मबल का ज्वलन्त उदाहरण है।

१०५° ज्वर में भी आप उसी मट्ठे का सेवन करते हैं। माघ के ठिठुरते जाड़े में भी आप केवल वही मट्ठे को लेकर रहते हैं। १ दिन नहीं, २ दिन नहीं, लगातार १६ वर्षों से इस कठोर व्रत का आप निर्विघ्न पालन करते चले आ रहे हैं। फिर भी आपका मुख कभी मलिन नहीं देखा गया। स्वयं भगवतस्वरूप होने से ही इस घोर कलिकाल में आप अपने संकल्प पर अडिग हैं। लोगों ने बहुत समझाया बुझाया, लेकिन आप सबकी बातों को काटकर आज भी दृढ़ता से अपने व्रत में संलग्न हैं। महापुरुषों की यही महानता है। वे अपने वचन के, संकल्प के पक्के होते हैं।

प्राण जाहिं पर वचन न जाहीं।

अध्यात्म केन्द्र

सन् १९५९ की १९ अप्रैल को श्री नारायण आश्रम शिवकोटी में अध्यात्म केन्द्र की स्थापना हुई। अध्यात्म केन्द्र की स्थापना श्री गुरुदेव भगवान ने जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर की है। त्रिवेणी के पुण्य क्षेत्र में अनेक भक्त माताओं को इधर-उधर भटकते देखकर श्री नारायण महाप्रभु का हृदय करुणा से द्रवित हो गया और उनके अन्तःकरण में एक ऐसी कल्याण-

कारी भावना जाग्रत हो उठी जिसके फलस्वरूप उक्त अध्यात्म केन्द्र की स्थापना हुई। आपने देखा कि कितनी मातायें इधर-उधर भटकती रहती हैं। केवल गंगा स्नान करती हैं व हर एक सन्त के यहाँ जाकर उनका दर्शन करती हैं, कौन किस सन्त से अच्छा है, इस बात की विवेचना में ही अनमोल जीवन का एक मास व्यतीत कर देती हैं। अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को न जानकर दुःख पाती हैं। मोह-माया में जकड़ी हुई हैं। अपने हीरा रूपी अनमोल मानव जीवन को कौड़ी के मोल व्यर्थ गँवा रही हैं। यदि एक दुधारी गाय के सदृश किसी सत्‌गुरु संत के चरण में एक निष्ठा रूपी खूँटे में अपने मन को बांध देतीं तो कितना कल्याण होता। आत्मस्वरूप होकर स्वयं अज्ञानी बनी हुई हैं। इधर-उधर खोज करती हैं। धनी का पुत्र अज्ञानता के कारण निर्धन बना फिरे, यही गति इन लोगों की है। आज इनका सत्य पथ प्रदर्शक कोई नहीं है, जिससे यह सत्य को जानकर शांति प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की भावनाओं से प्रेरित होकर आपने अध्यात्म केन्द्र की स्थापना की।

जब अध्यात्म केन्द्र के प्रथम वर्ष का उद्‌घाटन हुआ तो लगभग सौ माता-पिता जिज्ञासा लेकर श्री नारायण महाप्रभु के जिज्ञासालय में तृष्णा से छुटकारा पाने के लिए उपस्थित हुये। अध्यात्म केन्द्र की कक्षा प्रत्येक रविवार एवं बुधवार को लगती है। इन दोनों दिन सरकारी नगर बस आश्रम के लिए विशेष तौर से आती है। साधारणतया दो बस आती हैं, लेकिन विशेष उत्सवों में ७ बस तक हो जाती हैं जो प्रत्येक स्थानीय बस केन्द्रों से जिज्ञासुओं को लाती हैं। इस केन्द्र में वर्ष में दो महोत्सव मनाये जाते हैं। १९ अप्रैल एवं १९ नवम्बर उसकी तारीख है।

अध्यात्म केन्द्र का उद्देश्य—अध्यात्म केन्द्र स्थापित करने का प्रभु का यही उद्देश्य था कि मानव जिस कर्म को करता है, सर्वप्रथम उसके करने की विधि को समझना चाहिये। जब तक कर्म करने की विधि का ज्ञान न होगा तब तक कर्म का यथार्थ फल नहीं प्राप्त हो सकता। भक्ति का मार्ग निरुपद्रव है क्योंकि भक्तवत्सल भगवान स्वयं भक्त की समस्त विघ्नों से रक्षा करते हुये भक्तिनिष्ठा का परिपालन करते रहते हैं एवं

सर्वदा भक्तों का योग क्षेम करते रहते हैं। इसीलिए भक्ति को अत्यन्त सुलभ एवं समस्त सुखों की जननी का मूल स्रोत बतलाया गया है। विश्व का कोई भी बड़े से बड़ा देव दानव एवं सम्राट् भक्त का अनिष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि भक्त का विरोधी भगवान का विरोधी है और भगवान का विरोध करने वाले की रक्षा कोई नहीं कर सकता। भक्ति तो सब ही करते हैं और कर रहे हैं, परन्तु करने की विधि नहीं जानते। जब तक निश्चयात्मक बुद्धि के द्वारा एकनिष्ठ भक्ति नहीं करी जायेगी तब तक यथार्थ फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। कर्म अथवा भक्ति को करने के तरीकों को जानना ही ज्ञान है। फिर उसी ज्ञान भक्ति के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है और जीव अपने सत्स्वरूप को समझता है। प्रभु का प्रेम एवं ज्ञान अमृतमय है, लेकिन जब तक जीव और शिव की दूरी का द्वैत का पर्दा नहीं हटता तब तक अमृत स्वरूप भक्ति का अमर आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता, इसीलिये उस तत्व तक पहुँचाने एवं समझाने के लिये ही अध्यात्म केन्द्र की स्थापना की गई।

श्री महाप्रभु की आत्म-भावना :—यह घटना १९५७ की है। महाप्रभु की साधना स्थली से भगवान गुरुदेव की समाधि का स्थान जो वर्तमान में नारायण आश्रम के नाम से विख्यात है, काफी दूर पर है। वर्तमान में आश्रम में हिमालय नाम की जो भक्तों की निवास स्थली है उसके उत्तर में अब भी तीन महुये के विशाल वृक्ष हैं। इनकी भी आत्म-कथा पढ़ने से आपको महाप्रभु की आत्मीयता का ज्ञान होगा। जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन की रात्रि की बात है। मेरे गुरुदेव नारायण महाप्रभु ने स्वप्न में देखा कि वह गंगा स्नान करने जा रहे हैं। मार्ग में बहुत लम्बे-लम्बे तीन व्यक्ति अर्ध मूर्छित अवस्था में पड़े हुये हैं, तीनों श्वेत चादर ओढ़े हुये हैं, तीनों के नेत्रों से अश्रु की धारा बह रही है। महाप्रभु को देखते ही उन लोगों ने उठने की चेष्टा करते हुये कहा कि आप जैसे आत्मज्ञानी महापुरुषों के समक्ष हमारी यह दुर्दशा, आपके अतिरिक्त हमारा कोई भी रक्षक नहीं है। रक्षा करिये, रक्षा करिये कह कर तीनों ज्यों के त्यों गिर पड़ते हैं। चौंक कर आपकी आँख खुल

गईं, आप विचार करते रहे, यह कैसा स्वप्न है ? किसने अपनी रक्षा की दुहाई दी है। २-२॥ बज चुके थे, निर्मल जी, जमुना जी, गोविन्द जी उसी शयन-कक्ष में सो रही थीं। महाप्रभु की निद्रा भंग होने से सभी उठकर बैठ गये, लेकिन महाप्रभु १० बजे तक मौन रहते थे, अत: वह दिन में १० बजे के पूर्व स्वप्न की चर्चा कैसे करते। इसी प्रकार प्रात: ४ बज गये। सब लोग गंगा स्नान के लिये चले गये। समाधि से थोड़े पहले मार्ग में उन्हीं तीनों वृक्षों को कटे हुये पड़ा देखा। आपको तत्काल रात्रि के स्वप्न का स्मरण हो आया। आपने इशारे से एक पास में रहने वाले खटिक को बुलवाया और वृक्ष को काटने वाले का पता पूछा। वृक्ष के मालिक का नाम पूछकर उस बगीचे वाले को आदेश दिया कि तुम यहीं बैठे रहना। जब पेड़ काटने वाला आये तो उसको काटने से रोक देना, एवं मंदिर में हमारे पास भेज देना। अंत में १० बजे मौन खुलने पर, मुसलमान लकड़हारे को बुलवाया जिसने पेड़ खरीदा था। बातचीत के द्वारा मुसलमान को बहुत समझाया गया, तब उसने २५५) अपनी खरीददारी का रुपया तथा कुछ अधिक रुपया लेकर उस वृक्ष को जितनी कटी अवस्था में था उतने में ही छोड़ दिया। महाप्रभु ने लकड़ी भी उसी लकड़हारे को दे दिया और कहा देखो, तुम तो समझते नहीं हो, इन वृक्षों में उसी प्रकार आत्मा है जैसे हमारे तुम्हारे में है। इन लोगों ने हमसे जीवन दान मांगा है इसीलिये हम इनकी रक्षा कर रहे हैं। दया धर्म का मूल है, सब पर दया करना मानवमात्र का कर्तव्य है। इतना सब कुछ हो जाने के पश्चात किसी नास्तिक ने मुसलमान को बहका दिया। वह रुपये लेकर महाप्रभु के पास आया और बोला—"लीजिए अपने रुपये, हमारी लकड़ी तो हजार रुपये से कम की नहीं होगी।" रानी साहब (गोविन्द जी) ने उसको बहुत प्रकार से समझाया और डाँटा, लेकिन वह लोभ के वशीभूत होकर बार-बार बात बदल देता था। अन्त में गजाधर प्रसाद जी श्री गुरुदेव जी के भक्त एवं वकील भी थे, उनको सन्देश भेजा, वह आये और उसको कहा, तुम सीधे-साधे रास्ते में नहीं आते तो कानूनी कार्रवाई से हवालात में बन्द हो जाओगे। हिंदू कानून के हिसाब से सड़क के हरे महुआ, नीम, पीपल का पेड़ काटना कानूनी

अपराध है। जो सरकार के बनाये हुये कानून को भंग करता है वह जेल की यात्रा करता है। महाप्रभु तो महापुरुष हैं, सन्त हैं, तुमको रुपया भी दे रहे हैं, कटी लकड़ी ले जाने को भी कह रहे हैं। अब इन वृक्षों का जितना हिस्सा बदलें से बचा हुआ है वह छोड़ दो। जेल में जाने के डर से वह विरोधी लोगों की बातों में न पड़कर चुपचाप चला गया।

उसी दिन तारीख २ को एक भक्त मिसेस टकरू आईं और गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करने लगीं कि गुरुदेव, आपकी महान कृपा हमारे ऊपर हो जाये, हमारे पति मि० टकरू जज हो जायें, यही आशीर्वाद हमको प्रदान करिये। श्री गुरुदेव भगवान बड़ी जोर से हँसे और कहा, वह तो जज हो गया, आप क्या कह रही हैं। वह कहने लगीं, भगवान, चुनाव तो कल है। महाप्रभु ने कहा, हमने आज ही चुनाव कर दिया। जिस दिन चुनाव हुआ, सायंकाल ५ बजे दो अन्य भक्त आये और कहने लगे कि प्रभु मि० टकरू तो चुनाव में नहीं आये। महाप्रभु ने कहा—"ऐसा तो नहीं होना चाहिये, उनको अवश्य जज होना चाहिये।" वह लोग अपनी-अपनी बातें कहते रहे, लेकिन गुरुदेव भगवान को विश्वास ही नहीं होता था कि कहीं ऐसा हो सकता है? इतनी ही देर में श्रीमती टकरू और श्रीमान् टकरू फल का टोकरा बड़ा सा व दो हार लेकर आये और भगवान गुरुदेव को बार-बार प्रणाम करते हुये शुभ सूचना सुनाई कि गुरुदेव, आपने तो कल ही चुनाव कर दिया था।

बाई के बाग का उमेश नाम का एक बालक था, वह दसवें दर्जे की परीक्षा में फेल हो गया। बहुत दुःखी होकर श्री गुरुदेव भगवान के पास आया और गुरुदेव को देखते ही रोने लगा। हम लोगों ने बहुत समझाया तथा सान्त्वना दी कि अपने दुःख का कारण तो बतलाओ। बहुत धैर्य देने पर बोला—"मेरे पिता जी नहीं हैं, कई भाई बहन हैं, मैं इस प्रकार से फेल हो गया। यदि मैं पास नहीं होऊँगा तो मेरी माता जी मुझे आगे नहीं पढ़ायेंगी और मेरा भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा।" श्री गुरुदेव भगवान ने कहा—"अब तो तुम्हारी परीक्षा दूसरे वर्ष होगी।" उस बालक ने कहा—"यह तो ठीक है, गुरुदेव, लेकिन आपकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। यद्यपि

मेरा नाम सप्लीमेंटरी में तो आया नहीं है लेकिन यदि आप चाहें तो आपके आशीर्वाद से कुछ अनुत्तीर्ण बालक उत्तीर्ण किये जायेंगे, मेरा नाम उसी में आ जाये।" श्री गुरुदेव करुणासिन्धु का हृदय उमड़ पड़ा, नेत्रों में आँसू डबडबा आये, एक सीता राम की पुस्तक देते हुये कहा—"तुम हनुमान जी के मन्दिर में बैठकर कल तक में एक सवा लाख नाम जप करो, उसके बाद भगवान का प्रसाद लेकर घर जाना। भगवान गुरु की कृपा से तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायेगी।" दो तीन दिन बाद वह बालक आया और बोला—"भगवान, आपकी महान कृपा से उत्तीर्ण लड़कों की लिस्ट में मेरा नाम आ गया।" भगवान गुरुदेव ने कहा—"बेटा, भगवान ने तुम्हारे जीवन को बनाया है, तुम उनको कभी न भूलना। सन्त महात्मा तो जगत की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझते हैं। जगत के दुःख को अपना ही दुःख समझते हैं, इसीलिये जड़ चेतन जितने भी जीव हैं, सबकी आत्मा को शान्ति देना चाहते हैं।"

श्री महाप्रभु का अटल सिद्धान्त—श्री नारायण महाप्रभु ने भक्ति के प्रारम्भ काल से ही इस बीहड़ पथ पर अनेक असाध्य ठोकरों को सहते ही चले आये। वह ठोकरों से कभी नहीं घबराये न घबराते हैं। उनका अटल सिद्धान्त और उपदेश है कि जीवन की प्रत्येक ठोकर जीवन में उत्थान चाहने वालों को आगे बढ़ाती चलती है। दो वस्तुओं के संघर्ष से तीसरी नवीन वस्तु की उत्पत्ति होती है। संघर्ष से जीवन निखर आता है, इसीलिये हम लोगों से सदा कहते रहे कि हमारी परीक्षा में अनुत्तीर्ण न होना। भक्ति के पथिक को उद्यमी और साहसी होना चाहिये।

श्री भगवती महायज्ञ—१९६०—दिव्य बारह वर्ष तक एक निष्ठा से दोनों समय गङ्गा स्नान करने के अनुष्ठान की समाप्ति के उपलक्ष में श्री भगवती महायज्ञ करने की आयोजना की गई थी। यह यज्ञ त्रिवेणी के परम पुनीत तट पर किया गया था। 'त्रिवेणी' प्रयागराज का वह महत्वपूर्ण एवं पावन तट है जहाँ गंगा, जमुना और सरस्वती परम प्रेम से आलिंगन करती हैं। इन तीनों पावन नदियों के संगम में स्नान, दान तथा यज्ञादि करने

का अद्वितीय महत्व हमारे वेदों ने बतलाया है। प्राचीन काल में बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि तीर्थराज प्रयाग में प्रभु के चरणों में सर्वस्व अर्पण करके तपस्या में रत रहते थे। महाराज हर्षवर्धन प्रत्येक वर्ष प्रयागराज में आकर सर्वस्व त्याग कर देते थे। मेरे भगवान गुरुदेव नारायण महाप्रभु जीवन में त्याग का सबसे बड़ा महत्व देते हैं। वह सदा कहते हैं, देखो श्वेत रङ्ग भगवान को कितना प्रिय है, शरद पूर्णिमा की श्वेत चाँदनी में भगवान ने रास रचाया, सरस्वती जी ने श्वेत हंस को अपना वाहन बनाया। काला रंग अशुभ समझा जाता है, उसको कोई नहीं पसन्द करता, क्यों ? श्वेत रंग अपने में सबको पचा कर दूसरे के अस्तित्व को जगत की दृष्टि में प्रदर्शन करता है। कितनी बड़ी दिल की महत्ता है। अपनापन मिटा देना साधारण लोगों के सामर्थ्य के परे है। काला अपनापन रखता है, अपने समक्ष किसी के अस्तित्व को नहीं मानता। निष्कर्ष निकला, वह त्यागी नहीं, महान स्वार्थी है। यह संसार ईश्वर का है, ईश्वर त्याग स्वरूप है, अतः जिसमें त्याग है, उसका सब में वास है। एक बीज अपने अस्तित्व को मिटा कर वृक्ष को आगे बढ़ा देता है फलतः उसके त्याग की भावना से प्रेरित होकर वृक्ष एक बीज के स्थान पर असंख्य बीजों के अस्तित्व को स्थायी रखता है।

श्री गुरुदेव महाप्रभु का दिल परम त्यागी और सत्यपरायण है। वह स्वयं सत्य स्वरूप हैं। आत्म-निर्भरता उनके चरित्र का महान गुण है। भगवती महायज्ञ त्रिवेणी के परम पुनीत तट पर किया जायेगा, यह पूर्ण निश्चय हो चुका था। माघ मेले का पर्व प्रारम्भ होने के १५ दिन पूर्व से, त्रिवेणी के पावन तट पर सरकार की ओर से सफाई का काम, जमीन की दरेसी का, बिजली का, पुलिस का प्रबन्ध होना प्रारम्भ हो जाता है। उसके पूर्व वहाँ अन्धकार पड़ा रहता है। कलियुग में कुछ साधु वर्ग ज्यादा हो जाने से आठ-दस वर्षों के मध्य त्रिवेणी के प्राचीन रूप से अब के रूप में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। अब तो बाँध के ऊपर बहुत से मन्दिर बन गये हैं। हनुमान रोड बन गई है, बिजली लग गई है। लेकिन जिस समय की यह चर्चा है उस समय माघ मेले के अतिरिक्त त्रिवेणी क्षेत्र में घोर अँधेरा रहता था।

माघ के प्रारम्भ होने के वाइस दिन पूर्व ही श्री गुरुदेव जी ने इस सेवक को बुलाकर आज्ञा दी कि कल तुम दो नौकरों को लेकर त्रिवेणी जी में माघ का प्रवन्ध करने के लिए चली जाओ। साथ में एक उम्र वाला साथी चाहिये, इसीलिए विष्णु देवी को भी लेती जाना। हमने कहा, प्रभो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, लेकिन अभी तो २२ दिन बाकी हैं, न वहाँ पर अपनी जमीन कटी है न अभी वहाँ सरकारी प्रवन्धकों का कोई डेरा लगा है। हम लोग अभी से जाकर क्या करेंगे? गुरु के तत्व को कौन समझ सकता है। प्रभु ने कहा—तुम डरती हो क्या, तुम्हारे में आत्म-विश्वास की कमी मालूम पड़ती है। अपने को पहचानो। तुमको कल जाना है और स्वयं जाकर भूमि कटवाना। ५१ पंडितों के द्वारा पाँच हवन कुण्डी का भगवती महायज्ञ होगा, अतः विशाल यज्ञ-मंडप भी बनना है। जब तुम अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकोगी तो दूसरा कौन करेगा? जो स्वयं अपने आत्म-वल को लेकर चलता है वह सदा विजयी होता है एवं अन्य लोग भी उसकी सहायता करने आ जाते हैं, उसके लिए कोई वाधा और विघ्न नहीं है। निस्सन्देह कल तुम लोगों को जाना ही है।

जैसी गुरु आज्ञा। १९६० दिसम्बर का आखिरी मास था। हमें आज भी याद है वह दिन, पूस का मास मङ्गल का दिन, कड़कड़ाती ठंढक। रात्रि १० वजे त्रिवेणी क्षेत्र में पहुँच गये। केवल गंगा जमुना का कल-कल शब्द नीरवता को फाड़ रहा था। चारों ओर घनघोर अंधकार छाया था, नभ-मंडल में तारे टिमटिमा कर अपनी सौन्दर्यता का प्रदर्शन कर रहे थे। हम लोगों ने सामान गंगा के समीप के मैदान में उतार लिया। मन में सोचा, यदि रात्रि भर केवल नभ-मंडल के नीचे योंही बैठे रहेंगे तो गुरु की सेवा में वाधा न उपस्थित हो जाय। शरीर में अन्न की गर्माहट तो थी नहीं। केवल फल का आहार था। कन्हैया और मसुरिया नाम के दो सेवक और विष्णु बहन जी साथ में थीं। भगवान गुरु की दया अवर्णनीय है, महिमा अवर्चनीय है। हम लोग बैठे ही हुये थे, अचानक एक भक्त आ पहुँचे देखने के लिए कि हम लोग आ गये क्या; क्योंकि उन भक्त ने सुना था कि हम लोग त्रिवेणी जाने वाले हैं। अंधकार में वह आये भी और लौट भी गये। पुनः थोड़ी देर में दो

छोलदारी लेकर आ पहुँचे और कहा—"आप लोगों को बहुत ठंड लगेगी, रात्रि किसी प्रकार काटिये। अभी तो यहाँ पर जमीन भी नहीं कटी। कल प्रातःकाल जैसी गुरुदेव की इच्छा होगी सब होगा ही।"

वाह रे मेरे स्वामी ! तुम जिससे जैसा चाहो वैसा करा लेते हो। किसी को रुलाते हो, किसी को हँसाते हो, किसी को बनाते हो, किसी को दीन-दुनिया से रहित कर देते हो, किसी को माया में बाँधते हो, किसी को बन्धनमुक्त कर देते हो। इस जगती में तेरा ही तमाशा चल रहा है। जानने वाले इस तत्व को जान कर पार हो जाते हैं। न जानने वाले रोते ही रह जाते हैं। किससे अनुराग करें ? किससे विराग ? इससे भला है कि हृदय में सदा वैराग्य की अग्नि जलती रहे। शरीर से गुरु की सेवा होती रहे।

श्री गुरुदेव जी सत्यप्रतिज्ञ सदा से हैं। हिन्दू धर्म की सत्य परम्परायुक्त रक्षा के लिए ही उनका अवतार हुआ है। वह इस धरातल पर धर्म की मर्यादा का स्थापन करके परोपकार करने और कराने, प्रेम की नदी बहाने के लिए ही आये हैं। प्राचीन धर्म संस्कृति को जीवित रखना है। यह आप सदा कहते रहते हैं। चार-पाँच दिन कोशिश करने के पश्चात् नारायण आश्रम के कैम्प बनाने और यज्ञ मंडप बनाने के लिए भूमि प्राप्त हो गई। सबेरे यज्ञ मंडप का निर्माण था। यज्ञ मंडप बनने के पूर्व भूमि शोधन होता है, तत्पश्चात् भूमि पूजन करके मंडप बनाना प्रारम्भ किया जाता है। भूमि शोधन करके सरकार से मिली भूमि पर यज्ञ मंडप के निर्माण के लिए पूजन हो गया। सोना तपाया न जाय तो उसकी चमक बढ़े कैसे ? मनुष्य अधर्म न करे तो नरक बसे कैसे ? भूमि पूजन होने के पश्चात् मेला मैनेजर आये और कहने लगे, इस भूमि पर तो हम लोग मोटर पार्किंग बनायेंगे। आप लोगों को यह भूमि खाली करनी पड़ेगी। हमने कहा, मैनेजर भय्या ! आप तो स्वयं पंडित हैं, भूमि पूजन हो चुका है, अब यहाँ पर यज्ञ करना अनिवार्य है। यज्ञ मंडप यहाँ पर बनाकर यज्ञ करना कर्तव्य है। या तो आप पहले से ही भूमि विचार कर देते या आप अपनी रूप-रेखा बदलिये। आप समझदार हैं, पहले ही आपने भूमि निर्धारित कर दी थी, उस पर चार कुटी बन जाने के पश्चात

आपने कहा—हमने भूल से यह जमीन दे दी थी। आप लोगों को दूसरी जमीन दी गई है। हम लोगों ने भी यह सोचकर कि मनुष्य ही भूल करता है, अपने को कष्ट ही तो सहना है, थोड़ा अर्थ और व्यय करना होगा, लेकिन यदि एक आत्मा को सुख मिलता है तो चलो सह लो। यहाँ पर अब पूरा प्रबन्ध हो जाने पर आप फिर कह रहे हैं कि तीसरी जगह बदलिये। अब भूमि पूजन हो चुका है, अब कुछ नहीं हो सकता। रात्रि को ११ बजे, तीन-चार सरकारी कर्मचारी आये और कहने लगे, हमको मैनेजर साहब ने भेजा है, आप अपना कैम्प खाली करिये। हमने सोचा, अब इसको सांप के फुफकार की आवश्यकता है ? कितना मूर्ख है ! महिला संत हैं, विशेष प्रबन्ध करना तो दूर रहा, जाति का ब्राह्मण होकर पूरा रावण ही बन रहा है। हमने कहा ठीक है, यदि आपकी ताकत हो तो खाली करा लीजियेगा। धर्म न हो गया खेल तमाशा आप लोग समझ रहे हैं। यदि शासन करने की बुद्धि नहीं है तो आपको माघ का प्रबन्ध करना ही नहीं चाहिये। यहाँ तो धर्मात्मा लोग आते हैं और धर्म की रक्षा करते हैं। उस समय तो उन लोगों को कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी और चले गये। तत्पश्चात् यह सन्देशा लेकर भगवान गुरुदेव के पास रात्रि १० बजे गये। धर्मज्ञ गुरुदेव ने कहा—"मंडप उसी भूमि पर बनेगा, यज्ञ वहीं पर होगा। भूमि पूजन होने के पश्चात् अब जगह नहीं बदली जा सकती।" आपने व्रत ले लिया कि जब तक यह निर्णय नहीं होगा, हम जल का भी सेवन नहीं करेंगे। भक्तों का तांता लग गया। कमिश्नर के पास हम लोग गये, मुआ जी, गायत्री जी को लेकर पैदल ही त्रिवेणी गई। उस समय हम लोगों का नियम था सवारी पर चढ़ते नहीं थे, गर्म कपड़ा पहनते नहीं थे। इधर-उधर दौड़-धूप होने के पश्चात् ४८ घंटे के बाद, समस्त सरकारी नक्शा को बदल कर फिर उसी भूमि पर यज्ञ मंडप बनाया गया। इकतीस दिन का ऐसा विशाल यज्ञ हुआ जैसा कि कभी भी त्रिवेणी पर नहीं हुआ था। बीच-बीच में अनेक विघ्न बाधा लोगों ने पहुँचाना चाहा। परन्तु भगवान के समक्ष कोई कुछ भी क्षति नहीं पहुँचा सका। यज्ञ में वर्णित पंडितों की कुटी में किसी ने आग लगाना चाहा था, लेकिन माँ भगवती की परम कृपा से अग्नि

वहीं की वहीं बुझ गई। अंत में यज्ञ की पूर्णाहुति के उपलक्ष में माँ गंगा के चरण-कमलों में श्री गुरुदेव जी ने इस पार से उस पार तक की अखंड माला समर्पित करी। श्री गुरुदेव जी कहते थे, मेरी माँ कितनी उदार हैं, सबके पापों को अपने में धारण करके भी माँ सदा दोनों हस्तों से आशीर्वाद बरसाती रहती हैं। हम बालक उनके ऋण से कैसे उऋण हो सकते हैं। प्रभु सदा यही कहते, तुम लोग माँ से उदारता का पाठ सीखो, माँ से शान्ति की शिक्षा लो, वह सब कुछ सहकर भी सदा कर्मयोगी की तरह आगे बढ़ती ही चलती हैं। अनवरत चलती हैं कभी नहीं थकती।

माघ से लौटकर आने के पश्चात आपकी स्थिति बदलती ही चली गई। आपका विशाल हृदय और अनुपमेय मस्तिष्क हर समय कार्य करता रहता था। एक पल भी आप बैठते नहीं थे। लोक कल्याण कैसे हो? भक्ति की महिमा का प्रसार कैसे हो, शीघ्र ही सद्वृत्त जन-जन में कैसे जागे? इन्हीं सब भावनाओं में आप गोते लगाते रहते थे। समस्त सद्कर्मों में यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है जो ईश्वर में तद्रूप कर देता है तथा बहुतों का लाभ होता है, ऐसा शास्त्रों में बतलाया गया है, अतः इसी भावना से प्रेरित होकर आपने अब तक बीस यज्ञ सम्पादित किया।

श्री विष्णु महायज्ञ १९६२—दस हजार व्यक्तियों से दस-दस हजार तुलसी पत्र उनके घरों में और एक हजार यज्ञ मंडप में चढ़वाया गया था। इसी तुलसी अर्चन अनुष्ठान की समाप्ति के उपलक्ष में श्री विष्णु महायज्ञ का आयोजन किया गया था। प्रभु का संकल्प जो हो जाता है, उसको वह पूर्ण करके ही रहते हैं। भगवान् विष्णु के सहस्र नाम पर सहस्र तुलसी पत्र चढ़वाने में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तुषार पड़ने से सब स्थानों में तुलसी के वृक्ष जल गए थे, नगर में तुलसी का अभाव था। महाप्रभु का संकल्प हो गया। भक्तों ने तुलसी अर्चन करना प्रारम्भ कर दिया। पांच हजार तक तुलसी चढ़ चुकी थी, आगे के लिये तुलसी कहाँ से उपलब्ध हो, सभी इसी सोच में पड़े थे। उसी दिन रात्रि को एक माली जो काले रंग का

दुवले-पतले शरीर का था आया और कहा, हम आप लोगों की समस्या का सुनकर आये हैं। आप लोगों को जितनी भी तुलसी की आवश्यकता पड़ेगी हम सव पूर्ण करेंगे। हम तुलसी वन के ठेकेदार हैं, हमारे पास वहुत तुलसी है। रात्रि को तो वह वात करके गया, प्रातःकाल ही तुलसी पत्र का ढेर लगा दिया। उस दिन के पश्चात् जव तक यज्ञ की पूर्णाहुति नहीं हुई वह बरावर आवश्यक्तानुसार तुलसी पत्र लाता रहा। तत्पश्चात् आज़ तक वह नहीं आया। ९ मई वैशाख सुदी षष्ठी से यज्ञ प्रारम्भ हुआ था। ग्यारह दिन का महायज्ञ था। यज्ञ स्थली से कुछ दूर पर मां गंगा की धारा मन्द गति से प्रवाहित हो रही थी, गंगा मय्या की श्वेत स्वच्छ वालुका रजत कण के सदृश भासित होती थी। मध्य गङ्गा की वालुका ढेर में यज्ञ मण्डप का निर्माण किया गया था। उस भीषण ग्रीष्म की वेला में भी यज्ञ-स्थली से आश्रम तक भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। हम लोग भी बिना पद-त्राण के वालू की जलती रेत में यज्ञ स्थली से आश्रम तक दौड़ लगाते रहते थे, न कहीं गर्मी, न धूप, न लू, किसी का कुछ भी पता नहीं था। दिन भर तुलसी अर्चन करवाने एवं यज्ञ का समारोह रहता था। एक ओर से वैद-मन्त्रों का शव्द, दूसरी ओर से विष्णु के सहस्र नामों का शव्द आकाश मंडप में गूंज-गूंज कर वायुमंडल को पवित्र करता था। रात्रि भर अखंड कीर्तन चलता था जो सायंकाल ६ वजे प्रारम्भ होता था तथा प्रातःकाल ६ वजे समाप्त होता था। इस प्रकार से यह यज्ञ भी अपने ढङ्ग का अद्वितीय रहा।

श्री संकीर्तन महायज्ञ—१९६२ में सम्पादित किया गया। यह महायज्ञ भी त्रिवेणी के पुण्य तट पर ही हुआ। इस महायज्ञ में नाम संकीर्तन का विशेष कार्यक्रम रहता था। इकतीस दिन तक अनवरत रूप से अखंड नाम सकीर्तन की ध्वनि से त्रिवेणी क्षेत्र गुञ्जारित होता था। नास्तिक से नास्तिक का हृदय हिल जाता था। माघ मेले के आफिसर लोग आकर कहते थे कि हम लोगों का हृदय भगवान के मधुर नाम से खिचता रहता है। कीर्तन तो वहुत सुनते हैं लेकिन एक रस से अनवरत अटूट धारा

परम प्रेम से जो बहती रहती है उससे हम लोगों का दिल स्वतः ऐसा कहता रहता है कि चलो, महाप्रभु के शिविर में चलो। हम लोग बाहर से ही दर्शन करके चले जाते हैं।

एक मास तक वैकुंठ में बैठे हैं, ऐसा आभास होता था। भगवान श्री सीता-राम जी की युगल मूर्ति के समक्ष अखण्ड दीपक जलता रहता था। हरे राम, हरे राम की मंगलमय नाम-ध्वनि अन्तः के मैल को धोकर प्रभु के प्रेम-रस में डुबो देती थी। मध्याह्न में श्री रामचरित मानस पर प्रवचन होता था। इस प्रकार धर्म कर्म ज्ञान से परिपूर्ण यह यज्ञ सम्पूर्ण हुआ।

इसके पश्चात श्री गुरुदेव जी ने त्रिवेणी क्षेत्र में एक बार ऐसा नियम लिया था कि प्रातःकाल ५ बजे आरती करके अनुष्ठान में बैठ जाते थे। १५ घन्टे तक एक आसन से मंडप में ही विराज कर दो घन्टे तक भजन फिर दो घन्टे तक सत्संग पारी-पारी से करवाते थे। मकर मास की शरीर को शीतांग करने वाली सर्दी की परवाह न करके भी श्री गुरुदेव जी बिना जल के अपने अनुष्ठान में रत रहते थे, कभी-कभी रात्रि के कार्यक्रम की समाप्ति में ९बज जाते थे। उसके पश्चात सायंकालीन स्नान करके रात्रि ग्यारह बजे तक कुछ दूध और सूखा फल ग्रहण करते थे। लेकिन आपका इतना प्रबल आत्मबल था कि न आपको क्षुधा की पीड़ा होती थी न अन्य किसी प्रकार का कष्ट होता था। दिन भर के पश्चात अनुष्ठान से उठने पर आपको जरा सी भी थकावट का आभास नहीं होता था। जन्म-जन्मान्तर के वासना-पिपासु जो भी शरण में आ जाते थे उनके जीव भावों को गूढ़ातिगूढ़ ज्ञान देकर हरि चरणों में लगाने का अथक प्रयास रहता था। आप बड़े ही मनोविनोदी और स्पष्टवादी हैं। कभी आप कहते, देखो हम तो भगवान के दलाल हैं, तुम लोगों को ईश्वर तक हमें ले जाना है। हम तुम लोगों की भवव्याधि को मिटाने के लिये ही तो यहाँ पर आये हैं। धर्मालोक प्रदान करने के लिए आप अब भी बड़े ही अनोखे ढङ्ग से धर्मोपदेश अथवा ज्ञानोपदेश देते हैं।
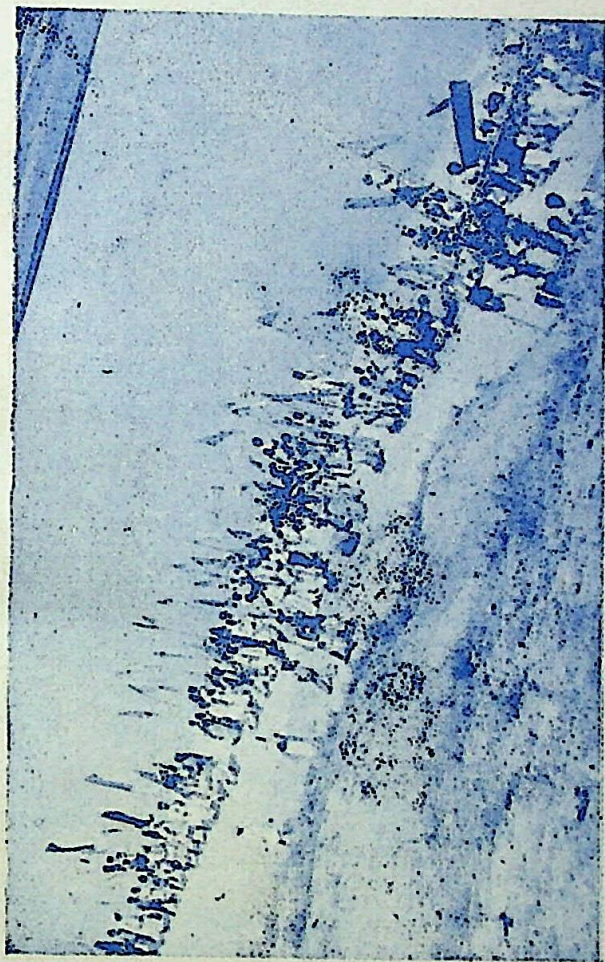
श्री राम नाम का जुलूस
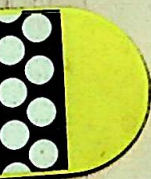
श्री राम-राम महायज्ञ १९६३—यह यज्ञ भी त्रिवेणी के परम तट पर सम्पादित किया गया था। एक लाख राम-राम के पन्ने लिखने के लिये वितरित किये गये थे। एक वर्ष के अन्दर, अपने निजी अभ्युदय, कल्याण, भगवत प्राप्ति के हेतु एक सवा लाख राम-राम लिख कर प्रभु के युगल चरणों में चढ़ाना था। लगभग सभी भक्तों ने परम श्रद्धा और प्रेम के साथ राम-राम लिख कर भेजा था। प्रयाग निवासियों ने तथा आस-पास के नगर वालों ने स्वयं आकर के भी चढ़ाया था। इस प्रकार से यह महायज्ञ भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी एवं पुण्य नवीन संस्कार को बनाने वाला था।

श्री गुरुदेव जी कहते हैं सर्व सद्कर्मों में श्रेष्ठ यज्ञ कर्म है। यज्ञ ईश्वर तक पहुँचाने का प्रशस्त मार्ग बना देता है। जीव की प्रकृति ऐसी संकीर्ण होती है कि उसको अपने सुख आराम के लिये समय, शरीर और धन तीनों ही प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन परलोक की चिन्ता से वह मुक्त रहता है। अतः वह प्रेरक बनकर भी जीवों को यथार्थ पथ का दिग्दर्शन कराने में संलग्न रहते हैं। आप कहते हैं, "संसार का दोष मत देखो, उसको किस प्रकार सद्मार्ग में लाया जाय यह विचार करो। अज्ञानी जीव वृथा के अहंकार से जर्जरित अपनी शक्ति और तेज को क्षीण कर बैठा है, उसकी बुद्धि और मन की संकीर्णता को मिटा कर निज स्वरूप को बतलाने की चेष्टा करनी चाहिये। आत्मज्ञान प्रदान करने वाले ही गुरु सच्चे गुरु हैं। वह अध्यात्म विषयक बुद्धि को जाग्रित करके सुदृढ़ बनाते हैं। इन्द्रिय और मन को सांसारिक विषयों के चिन्तन से हटाकर ईश्वर-चिन्तन में तत्पर कर देते हैं।"

"न वासुदेवात्परमास्ति किंचित्"

वासुदेव से भिन्न अणुमात्र भी नहीं है। इस सर्वात्म दृष्टि से ही जीव समस्त पापों से मुक्त होकर ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

श्री राम चरित्र मानस महायज्ञ—१९६४ में एक मास का यह यज्ञ किया गया था। एक हजार भक्तों ने मानस के दोहों और चौपाइयों का एक वर्ष तक पारायण किया था, साथ में ५१ हजार राम-राम लिखा था।

इसी के उपलक्ष में यह यज्ञ सम्पादित किया गया था। यज्ञ के समय में नवाह परायण की आयोजना की गई थी। रामायण के पाठ में भाग लेने वाले समस्त भक्तों की निवास के साथ-साथ भोजन की भी व्यवस्था की गई थी। १०८ पंडितों के द्वारा ५ कुंडों का यज्ञ करवाया गया था। ब्राह्मणों को गरम वस्त्र आदि देकर पूर्ण सन्तोष किया गया। इसके अतिरिक्त गरीब एवं अनाथों को भी भोजन वस्त्र आदि का वितरण किया गया था। प्रभु स्वयं तो आत्मा में ही सन्तुष्ट रहते हैं लेकिन अन्य जीवों के लिये अथवा लोक-शिक्षा के लिये कर्म करना और कराना अनिवार्य हो जाता है।

अष्टादश पुराण सम्मेलन १९६३

लोक कल्याण के हेतु श्री गुरुदेव जी अनेको कर्म की रचना बरावर करते ही रहते हैं। अपनी भारतीय संस्कृति का उत्थान हो, जन-समाज पुराणों के तत्वों को जाने समझे आदि उद्देश्य से दो बार अष्टादश पुराण सम्मेलन करवाया था। काशी के माननीय इने गिने विद्वानों में से अठारह विद्वानों ने पुराणों के ऊपर प्रवचन किया था। एक विद्वान एक पुराण का प्रवचन करता था। एक विद्वान एक दिन में तीन घंटे तक एक ही पुराण पर अपना वक्तव्य देता था। अठारह दिनों तक अठारह विद्वानों द्वारा यह सम्मेलन किया गया। स्व० अनन्त शास्त्री फड़के जो उस समय काशी विद्यालय में संस्कृत के प्रधानाचार्य थे, इस सम्मेलन के सेक्रेटरी थे। श्री नारायण महाप्रभु ही इसके अध्यक्ष थे। उनकी संरक्षता एवं व्यवस्था में सम्मेलन सफल बनाया गया। यह सम्मेलन भारत के लिये प्रथम देन थी। विद्वानों ने बतलाया कि सम्मेलन तो बहुत होते रहते हैं लेकिन अष्टादश पुराण सम्मेलन आज तक नहीं हुआ था। इसीलिये हम लोगों को इस सम्मेलन के लिये काफी परिश्रम करना पड़ा।

अष्टादश पुराण सम्मेलन के दो मास पश्चात् आश्विन मास में श्री विश्व मानस सम्मेलन सम्पादित किया गया। इसमें भारत के सुप्रसिद्ध मानस मर्मज्ञों

का आगमन हुआ था । अपने-अपने विचारानुसार सभी ने अपने-अपने मतों को प्रकट किया ।

श्री जगदम्बिका अवतरण समारोह—१९६५ में हुआ । किसी प्रकार से भी जीवों का समय भगवान की आराधना में लगे, अतः प्रभु ने पांच हजार देवी स्तोत्र का वितरण करवाया था । उसी अनुष्ठान की समाप्ति के उपलक्ष में यह समारोह हुआ था जिसमें भारत के प्रत्येक प्रांत के संतों को बुलवाया गया था । सभी पधारे और अपनी अमृत वाणी से जनता को तृप्त किया । मुख्य संतों में श्री संत तुकड़ो जी महाराज, श्री काली कमली वाली माता, श्री माता मैत्रेयी देवी, श्री भजनानन्द जी, धर्मानन्द जी, श्री वासुदेवानन्द जी, श्री विवेकानन्द जी नैमिषारण्य, श्री वेदी जी वाराणसी, श्री सीताराम-शरण जी अयोध्या, श्री संत रामदासी जी अयोध्या, श्री वेदव्यास जी उत्तरा-खंड, श्री गोविन्द प्रकाश जी, देहरादून आदि आदि ।

तुलसी समारोह

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के द्वितीय अध्याय में अपने श्री मुखारविन्द से अर्जुन को धर्म के विषय में समझाते हुये बतलाया है कि ज्ञानी जनों का कर्त्तव्य है कि अज्ञान से मोहित, कर्म वासना से ग्रसित जीवों के मन को कर्म-मार्ग से चलायमान न करे बल्कि यदि कर्म की ओर उनकी आस्था है तो उसी की ओर फल की आशा का प्रलोभन दिखा कर मन को लगा दे । शनैः-शनैः उनकी बुद्धि शुद्ध होती जायेगी और वह अध्यात्म की ओर अग्रसर होंगे । श्री गुरुदेव महाप्रभु ने एक बार कार्तिक मास में तुलसी समारोह का आयोजन किया था । नगर से सैकड़ों नर-नारि नित्य आते थे और समारोह में भाग लेते थे । गुरुदेव कहते थे, जिस प्रकार भी आयें प्रभु के दरबार में आयें तो। तुलसी और कृष्ण का एकादशी के दिन विवाह हुआ । बैंड बाजे के साथ बरात आदि भी निकली थी । लोगों में बड़ा ही उत्साह देखा गया इस प्रकार के आयोजन में । किसी ने गुरुदेव भगवान से पूछा—"प्रभो ! आप इस प्रकार के

कर्म मार्ग में क्यों प्रवृत्त होते हैं। आप तो इस संसार-वृक्ष की आशा रूपी शाखा से परे तत्व-स्वरूप हैं, फिर यह कैसा कर्म का जाल ?"

श्री गुरुदेव जी ने कहा—"हम पहले से ही समझते थे कि हमारे इस प्रकार के कर्मों के सम्पादन को देखकर लोगों को भ्रम हो जायेगा, लेकिन आपको समझना चाहिये कि भगवान गुरु ने ऐसे ही हमको यह पदवी नहीं दी है। जो बुद्धि प्रवृत्ति (बन्धन मार्ग) एवं निवृत्ति मार्ग (मोक्ष मार्ग) को ठीक-ठीक समझती है तथा जो विधि और निषेध रूप से करने और न करने योग्य क्रियाओं को भी समझती है, क्या वह यह नहीं समझती कि वह इन कर्मों को क्यों कर रही है। निष्काम रूपी कवच को पहनाने के लिये जीवों को कर्म करना अनिवार्य है। पनडुब्बे दूसरे को तैरना सिखाने, डुबकी लगाना सिखाने के लिये पहले स्वयं अपने शरीर में हल्दी लगा लेता है फिर सीखने वाले को भी लगा देता है क्योंकि हल्दी लगा कर डुबकी लगाने से पानी का असर नहीं पड़ता। उसी प्रकार ज्ञानी जन ज्ञान रूपी कवच को धारण करके ही कर्म मार्ग में प्रवृत्त होकर अन्यों को उसी कर्म के सहारे से ज्ञान की सीमा तक पहुँचाते हैं। अब आपको किसी प्रकार भी शंका नहीं होनी चाहिये।" उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर अपराध के लिये क्षमा मांगी।

जन कल्याण हेतु बीच-बीच में कई यज्ञ सम्पादित किये गये जो एक ही कुंड के थे और ग्यारह वैदिक ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराये गये जिसमें दो बार तो रुद्र यज्ञ हुआ। चाणी ग्राम के समीप भी रुद्रयज्ञ हुआ था। ग्रामीण जनता ने बहुत उत्साह प्रदर्शित किया। त्रिवेणी क्षेत्र में विष्णु यज्ञ छोटे रूप में ग्यारह वैदिक विद्वानों के द्वारा कई बार किये गये।

गुरुदेव जी को ग्रामीण जनता से बहुत प्रेम है। एक बार वह एक मास तक आश्रम से नित्य जाकर ग्राम-वासियों को सत्संग कराते थे, कीर्तन भजन कराते थे। उनको भी भक्ति की प्राप्ति हो, वह भी मानव जीवन के तत्व को समझें, कूप-मण्डूक की तरह बेचारे पड़े हुये हैं, यह सोच कर उनका हृदय द्रवीभूत हो जाता था। वह उनके कल्याण की भावना से ओतप्रोत होकर भाव-विह्वल हो जाते थे। सत्य में शास्त्रकारों ने लिखा है कि यदि महान पुरुष ही धर्म को

प्रतिपादित नहीं रखेंगे तो उनके अनुगामी क्या करेंगे ? धर्म की स्थापना के लिये तो वे अपने प्राणों की बाजी तक लगा देते हैं। यही तो उनकी विशेषता है।

इसके अतिरिक्त असत्य षड़यंत्रकारी प्रभु को नीचे गिराने के लिये बराबर कुछ न कुछ जाल रचते रहते थे, किन्तु आप उन सबको प्रभु के भरोसे सहते ही रहते थे। वे दृढ़ता से प्रत्येक परिस्थिति का सामना निडर होकर करते रहे। जब बहुत दुख लगता तो केवल यही कहते–"हे प्रभु, शीघ्र ही इन लोगों को अपने चरणों का अनुरागी बनाकर मानवता का पाठ पढ़ा दो।" क्योंकि यज्ञ के समय भी ढेला पत्थर इन लोगों ने चलाया था, पर प्रभु ने मौन रह कर ही इन लोगों को जवाब दिया। प्रभु की प्रकृति बड़ी ही सरल एवं कोमल है। आप में बालवत स्वभाव की विशेषता है। सत्य के लिये प्राण देने को भी तत्पर रहते हैं। अपनी धारणा के संमुख एक अडिग पर्वत बन जाते हैं। जिस समय किसी बात का निश्चय कर लेते हैं उस समय पत्थर गिरने, अग्नि बरसने पर भी अपने ध्येय से एक तिल भी इधर-उधर नहीं होते। प्रेम की बाहुल्यता आपका विशेष गुण है। प्रत्येक से स्वाभाविक ही प्रेम करते हैं। छोटे-छोटे ग्रामीण भोले-भाले बच्चे तो आपको बहुत प्रिय हैं। अभी भी उनको एकत्रित करते और खेलते हैं। आप कहते हैं कि ये लोग मुझे वृन्दावन के ग्वाल बाल जैसे लगते हैं कितना सादा, सरल और शुद्ध हृदय है इनका। आप में विलक्षण प्रेम-तत्व है। छोटे-छोटे बच्चे भी इनसे अपने साथी के सदृश प्यार करते हैं। वे लोग इन्हें खिलौने ला-लाकर देते हैं एवं इनके साथ खेलते हैं। कभी-कभी ढेर सारे बच्चों को एकत्रित करके उन लोगों से गेंद खेलते हैं और सबको खूब छकाते हैं।

ग्रामीण बच्चों के लिये ही आप एक बार नित्य मोटर द्वारा आस-पास के ग्रामों में जाया करते। किसी पेड़ के नीचे गाड़ी खड़ी करके सब बच्चों को एकत्रित कर लेते। उनके मध्य में खुब फल, लेमनचूस लुटाते। उनसे जयकारा लगवाते, फिर बिचारे गरीब बच्चों को वस्त्र आदि देते। उनसे पूछते, तुम्हें क्या चाहिये तो सब अपने-अपने मन की बात उन्हें बतलाते। दूसरे दिन आप

वही सब सामग्री गाड़ी में भरकर ले जाते और उन्हें बांटकर उनसे खेल कर चैतन्य महाप्रभु की तरह हाथ उठाकर हरी बोल करा के रात्रि तक वापस लौटते। प्रभु की दयालुता को देखकर सब चकित रह जाते। किसी को भी मुँहमाँगा दान देना, या अन्य वस्तुयें, वस्त्र आदि देना आपकी स्वाभाविक प्रकृति है। देते समय कोई बीच में बोल उठे तो उलटे आप उसी को रोक देते हैं। कहते हैं, तुम क्या जानो इसका रहस्य, इनमें भी वही मेरा भगवान ही तो है। बिचारों को हम ही नहीं देंगे तो देगा ही कौन ?

लड़कियों के साथ गंगा जी में खूब उछल-कूद मचाते हैं, किन्तु आपकी प्रकृति की विशेषता यह है कि एक क्षण में संयोगी तथा एक क्षण में वियोगी हो जाते हैं। अपने गिरधर गोपाल की सेवा के अतिरिक्त इन सब कार्यों में बहुत समय नहीं व्यय करते थे।

कभी-कभी भक्त लोग पूछते हैं—"प्रभु, आप इतने छोटे बच्चे एवं लड़कियों से क्यों खेलते हैं ?" वे हंस पड़ते हैं और कहते हैं—"तुम क्या जानो ?"

तुम जानती नहीं, सीधे धर्म कर्म में लगाने से या राम-राम जपाने से बच्चे कहना मानते नहीं। खेल-कूद करने से वह मुझे प्यार करने लगेंगे। जब मुझसे प्यार हो जायेगा तब जो आज्ञा देंगे वह उनको करना ही पड़ेगा।

कहाँ जाय मछली मेरी धेड़िया।

अतः वात्सल्यावस्था से ही इनमें धार्मिक नींव पड़ जायेगी। आगे चलकर यह चाहे जैसी संगत में पड़ जायें, किन्तु पहले का बोया हुआ वह धार्मिक बीज एक दिन अवश्य ही काम देगा।

प्रभु में ज्ञान एवं प्रेम का निरुपम सामंजस्य है। कहीं-कहीं तो प्रेम की साकार मूर्ति का दिग्दर्शन कराते हैं। प्रेमी भक्त उसी में डूब जाते हैं। कहीं ज्ञान की प्रतिमा का दिग्दर्शन कराते हैं। फिर दोनों तत्व का एकत्व स्थापित करते हैं। प्रभु में भावों की अभिव्यंजना शक्ति बड़ी ही तीव्र है। आकर्षण शक्ति की विशेषता है। सब के साथ सहृदयता एवं भाईचारे का व्यवहार है। आपके दर्शन मात्र से ही लोग शान्ति का अनुभव करते हैं। सत्यता आपके गुण का आभूषण है। जो कह देते हैं उसको करना उनके लिये पत्थर की

लोक हो जाता है। उनके गुणों एवं चरित्रों का वर्णन करना हंस के आगे कौये का बोलना है।

घनश्याम जी (गुरुदेव की शिष्या) को आस-पास के ग्रामों में भेजा करते थे कि उन लोगों को रहने का ढंग सिखाओ। कुछ धर्म और ईश्वर के विषय में समझाओ। वह लोग बिल्कुल मूर्ख और अज्ञानी हैं। वास्तव में यह बात सत्य ही निकली। जब घनश्याम जी ग्रामों में जातीं और बच्चों को बुलातीं तब कितनी ग्रामीण मातायें बच्चों को आने न देतीं एवं कहतीं कि क्या करेंगे इन सब बातों को सुनकर व सीखकर। हम लोगों के लिये गय्या गोबर ही भला। कभी बरसात के दिनों में ग्रामों में बरसाती नालों के द्वारा पानी भर जाता था तब भी वह उसी बरसात में भरे हुये नालों को पार करके गुरुदेव जी का वचनामृत सुनाने जाती थीं। श्री महाप्रभु का सदा से यही कहना है कि प्राणियों में ही परमेश्वर का वास है। इसलिए उदार हृदय से अपने शरण में आने वालों का कष्ट निवारण करना चाहिए। यह जीवन धर्म करने के लिए मिला है, जो कुछ हो सके यथाशक्ति, धर्म, दान एवं परोपकार करते रहना चाहिए।

गुरुदेव निर्गुण सगुण दोनों को ही मानते हैं :— वह सब से यही कहते हैं कि देखो, पथ भले ही अलग-अलग हो, लेकिन गन्तव्य स्थान तो एक ही है। सब साधनाओं एवं परम्पराओं का अन्तिम तथ्य एक ही है। एक आत्मा एक वस्तु है और वह हो तुम। वह यही सदा कहते हैं कि कोई भी ईश्वर से अलग नहीं है, तुम शरीर के केन्द्र में रहना छोड़ दो। जब शरीर चेतना अर्थात् चर्म-दृष्टि की भावना तुम्हारे अपने मन से छूट जायेगी तब ईश्वर चेतना अर्थात् दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जायेगी। त्याग को गुरुदेव बहुत महत्व देते हैं। उन्होंने जीवन में सच्चाई और त्याग को ही विशेष स्थान दिया है। गुरुदेव कहते हैं कि वही निर्गुण गुणातीत ही सगुण रूप से गुणों को अपना कर संसार में रम रहे हैं। प्रभु का स्मरण ही जीवों को ईश्वर बना देता है। महाप्रभु मेरे गुरुदेव से किसी ने प्रश्न किया कि ब्रह्मज्ञान का अधिकारी कौन है? श्री महाप्रभु ने इस प्रकार उत्तर दिया।

मेरे गुरुदेव भगवान केशवानन्द जी यजुर्वेदी से एक बार कुछ भक्तों ने इसी प्रकार का प्रश्न किया था। वह लोग नित्य श्री गुरुदेव से वेदान्त ज्ञान समझने के लिए आते थे। एक दिन उन लोगों के अन्तःकरण में मुझे ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देते हुए देखकर भ्रमात्मक बुद्धि उत्पन्न हो गई और उन्होंने गुरुदेव से कहा—"प्रभो ! क्या नारि ब्रह्मज्ञान की अधिकारी हो सकती है ?" भगवान सब कुछ समझते हुए भी असमझे से बनकर पूछने लगे कि तुम लोग क्या कह रहे हो ? उन लोगों ने सोचा, भगवान गुरुदेव प्रश्न को नहीं समझे, अतः उन्होंने पुनः अपने प्रश्न को दोहराया। भगवान गुरुदेव प्रश्न को सुनते ही पहले तो बड़े जोरों से हँसे, फिर उन्होंने कहा—"पहले तुम लोग यह बतलाओ कि नारि किसे कहते हैं ?" सब भक्त पाषाणवत मूक होकर बैठे रहे। किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला, तब भगवान गुरुदेव ने कहा—"तुम लोग अपनें को ज्ञानी समझते हो, वेदान्त ज्ञान को पढ़ते हो, लेकिन अपने प्रश्न से तुम अपनी अज्ञानता का परिचय दे रहे हो, क्योंकि "एकमेवाद्वितीय ब्रह्म" ब्रह्म सब में सर्व रूप से एक ही व्याप्त है, दूसरा नहीं है। "असङ्गोह्ययं पुरुषः" ब्रह्म मायामय मिथ्या इन्द्रजाल के सदृश द्वैतभाव में नहीं है, उसमें नानात्व का अभाव है।

"अभेद दर्शनं ज्ञानम्" ज्ञान में अभेदता है जो "सर्वमिदमहं च वासुदेवः" जो समस्त संसार में वासुदेव दृष्टि रखता है वही वासुदेव रूप गुरु से वासुदेव को प्राप्त कर सकता है। देहाभिमानी मूर्ख अव्यक्त अद्वैतात्मक प्रपञ्चातीत सदा एक रस रहने वाले निर्विकार ब्रह्म को भी प्रपंच में डालते हैं। तुम लोग ज्ञान के जिज्ञासु हो, लेकिन देहात्मवादी विपरीत दर्शी हो। अतः ब्रह्म को वही प्राप्त कर सकता है जो हरि के शरणापन्न होकर उन्हीं को सर्वस्व समझकर जगत में एकात्म रूप से सबमें उन्हीं का दर्शन करे। आगे श्री गुरुदेव भगवान ने कहा—"अच्छा तुम लोग यह बतलाओ कि जगतमाता श्री पार्वती जी कौन हैं ? उनको शंकर जी ने कैसे ज्ञान दिया ? क्या भगवान शंकर ने शास्त्र का उल्लंघन किया ? विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती कौन है ? गार्गी कौन थी ? मैत्रेयी ने क्यों ब्रह्म जिज्ञासा किया और मैत्रेय ऋषि ने उनको क्यों ज्ञान

दिया ? माता मदालसा ने कैसे ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया और अपने बच्चों को कहाँ से ज्ञानोपदेश दिया ? महारानी चुड़ाला कैसे ब्रह्मज्ञ हुई ? इस प्रकार से समझाते हुए भगवान गुरु ने बतलाया ।

भगवान बोले—ज्ञान में निम्नांकित बातें नहीं मानी जातीं—

१. रूप-कुरूप
२. नर-नारी
३. मान-अपमान
४. जात-कुजात
५. वाल-वृद्ध
६. पाप-पुण्य
७. दुःख-सुख
८. गरीब-अमीर

एक वही पुरुषमय विश्व है अथवा सम्पूर्ण विश्व में वही एक आत्मा रम रही है । फिर नर अथवा नारी का भेद कहाँ से आया । अज्ञानी को ही हम तो नारि कहते हैं । तुम लोग अज्ञान की बातें करते हो, अतः तुम लोग नारि हो ।

विश्व की गुरु, ज्ञान की अधिष्ठाता, त्रिलोक पार्वती श्री सरस्वती जी भी तो नारि थीं, उनको क्यों विश्व का गुरु बनाया गया । भगवान गुरुदेव की वाणी सुनकर सम्पूर्ण भक्तगण स्तम्भित हो गये । किसी के मुख से एक भी वाणी नहीं निकल सकी । सबकी वाणी मूक हो गई । इस प्रकार से हम देखते हैं कि नारायण प्रभु ज्ञान की अधिष्ठाता थीं, वह ईश्वर को पहचानती थीं, वह भगवान गुरु में ईश्वर का साकार दर्शन करती थीं । गुरु भगवान के प्रथम दर्शन में ही इनके अंतःकरण में यह भावना उत्पन्न हो गई थी कि कहीं भक्त-वत्सल भगवान ही तो मेरे लिए वृद्ध वेष में साकार रूप धारण करके नहीं आये हैं । जब आप गुरु में पूर्णतः ईश्वरत्व की कल्पना करके उनका उसी स्वरूप में दर्शन करने लगते थे तब तत्काल आप ऐसी माया ज्योति-लीला करके प्रभु के ऊपर माया का परदा फेर देते थे कि प्रभु को यह लगने लगता था कि

क्या वास्तव में यह ईश्वर हैं। लेकिन अल्पकाल के सत्संग में भ्रम का नाश हो गया।

गुरुदेव की साधना अनवरत रही :—सर्व सम्पन्न हो करके भी गुरुदेव का हृदय वैराग्य से जर्जरित रहता था। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तो उनके सामने अपने अस्तित्व का प्रदर्शन नहीं कर सकते थे। प्रज्ञान अवस्था की मंजिल पर पहुँच कर भी श्वास-श्वास पर वह हरि के नाम के सिवा कुछ नहीं चाहते थे। इतना विशाल आश्रम जिसमें देहादि सुख की समस्त व्यवस्था सम्पन्न थी, लेकिन उनके लिए कुछ भी नहीं था। वैराग्य से प्रेरित होकर वह एक वर्ष तक गंगा के किनारे-किनारे विचरण करते रहते थे। सन् १९६६ की घटना है। मकर मेले के समाप्त होते ही आपने विचित्र स्वरूप धारण कर लिया। उनके व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता था, मानो हम लोग उनके सेवक अथवा अनुचर नहीं बल्कि कोई बहुत दूर के अपरिचित अनजान हैं। अभी माघ के मास का शिविर त्रिवेणी क्षेत्र में लगा ही हुआ था, अनुष्ठानिक कार्य-क्रम समाप्त हो चुका था, श्री गुरुदेव जी ने हम लोगों से कुछ कहना, सुनना, बातचीत करना, देखना सब बन्द कर दिया था। हम और जमुना बहन जी पुराने सेवकों में थे, बाकी सब कुछ वर्ष पूर्व के ही थे। कुछ समझ में ही नहीं आता था कि क्या करें, क्या न करें। बड़ी विकट समस्या थी। एक बिल्कुल नवीन भक्त को ही अपना निजी सेवक बना रखा था। उसी से बस बातें करते थे।

परीवा का दिन था, रात्रि नौ बजे थे। सायंकालीन डेढ़ घंटे का नित्य नियम का कीर्तन हो रहा था। यह सेवक भी कीर्तन में ही थी। अचानक देखा कि श्री गुरुदेव जी और वह नवीन साधिका फाटक से बाहर निकल गये। एक पल हमने सोचा, यह क्या है। लेकिन विचार समाप्त न होने के पूर्व ही टार्च लेकर बाहर निकल गये, और श्री गुरुदेव जी के पीछे-पीछे चलने लगे। अर्ध-कुम्भ का मेला था। सरकार की ओर से झूंसी से त्रिवेणी संगम पर जाने के लिए कई पुल बने थे। पहले नम्बर के पुल पर पहुँच कर श्री प्रभु रुक गये

और नवीन साधिका को कहा—देखो, कोई नाव वाला हो तो संगम पर हमको पहुँचा दे। बिचारी नई साधिका क्या करती, आवाज दी, कोई भी नहीं बोला। हमने सोचा, जो कुछ भी हो, भगवान को स्वयं परिश्रम करना पड़ेगा, अतः तुम ही आगे बढ़ जाओ, उनके चरणों में जीवन समर्पण हो ही चुका है, जो कुछ भी कहेंगे, वह भी भक्ति की परीक्षा ही होगी। यह सेवक खेत में आगे बढ़ गया, थोड़ी दूर पर मल्लाह और मल्लाहिन का जोड़ा बैठा हुआ भोजन बना रहा था। आवाज सुनते ही बोला—"क्या है भय्या, क्या काम है ?" गुरु का आश्रय लेकर उसको बतलाया कि भय्या तुम जरा नाव संगम पर ले चलो। श्री नारायण महाप्रभु जायेंगे। उससे बात करते समय तत्काल स्मरण हो आया, वृन्दावन की नौका लीला का कथानक। धन्य है प्रभु तुम्हारी अलौकिक लीला का रहस्य। वह नाविक रात्रि दस बजे नाव लेकर संगम पर पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर दो-तीन नाव मिल गईं। प्रभु को नाव पर विराजमान करके फिर झूंसी नारायण आश्रम के शिविर में आये। शयन करने का विस्तर, प्रातःकाल स्नान करने का वस्त्र लेकर आये। जमुना बहन जी, गायत्री जी आदि सभी साथ में संगम पर गईं। शयन करने की सब व्यवस्था मिल जाने पर प्रभु ने नई साधिका से कहा—"तुम इससे पूछो, यह यहाँ पर आई क्यों ? और अब भी खड़ी है, हमारी समझ में नहीं आता अब यह क्या करना चाहती है ?" हृदय पर पत्थर रखकर हम लोग शिविर पर रात्रि डेढ़ बजे पहुँचे। रात्रि भर निद्रा देवी तो दूर खड़ी रही। कुछ समझ में ही नहीं आता था क्या करें ? आगे का कार्यक्रम भी नहीं पता था कि प्रभु क्या करेंगे ?

प्रातःकाल ४ बजे संगम पर पहुँचे। हम लोग किनारे पर खड़े थे। प्रभु ने हम लोगों की ओर देखा भी नहीं। मल्लाहों से पूछा—"गुरुदेव ने तुम लोगों से कुछ बात करी है।" उन लोगों ने कहा—"हाँ, आश्रम नहीं जायेंगे। चार नाव तय करी है, जहाँ मन लगेगा, वहाँ पर गंगा के किनारे-किनारे चलेंगे और बीच-बीच में विश्राम करेंगे।"

गुरुदेव जी तो बोलते नहीं थे, मल्लाहों से हम लोगों ने कहा—"तुम लोगों को समझाना चाहिए था कि गुरुदेव जी, आप मट्ठा लेकर रहते हैं, कुछ अन्न,

फल या भाजी का सेवन करते नहीं। अतः आपको महान कष्ट होगा।" उन लोगों ने कहा—"हम लोग यह सब बातें कैसे कह सकते हैं ? वह परमहंस महात्मा हैं, सब कुछ कर सकते हैं।" उन अज्ञानियों को क्या कहते। प्रभु जी के स्वभाव को भी हम लोग अच्छी तरह समझते थे कि उनके मन में जो आ जायेगी, करके ही छोड़ेंगे, हठयोगी हैं, समझाना निरर्थक ही है। सब साधिकाओं ने प्रभु को प्रणाम किया। हम लोग पुनः शिविर में आये, दिल नहीं माना कि जल के भीतर गऊ मिल भी जायेगी तो उसका भोजन कहाँ मिलेगा ? मल्लाहों की चिन्ता प्रभु को करनी पड़ेगी। अतः जितना भी अधिक से अधिक सामान हो सकता था, भेजा गया।

हम लोग सब सामान लेकर शिवकोटी आश्रम में आ गये। किसी प्रकार से दिल को चैन नहीं मिलती थी। पल-पल में एक अनुपमेय बेचैनी हो जाती थी कि वह कैसे होंगे ? नाव में कितना कष्ट सहना पड़ रहा होगा। दूसरे दिन से पानी ने विकराल रूप धारण कर लिया। अखंड मूसलाधार पानी बरसता रहता था, ठंड मकर मास से भी ज्यादा बढ़ गई। भगवान दादागुरु की समाधि पर बैठकर नेत्रों से अश्रु बरसाते हुए सभी ने नाम जप करना प्रारम्भ कर दिया कि किसी प्रकार से आप सन्देशा मंगवा दो कि वह कहाँ पर हैं ? इतने में हम लोगों ने देखा, एक अधेड़ उम्र के साधू विभूति रमाये, मृग-चर्म लिए चले आ रहे हैं। उनको सम्मान के सहित आसन देकर बैठाया गया, तथा भोजन कर लेने के लिए कहा गया। उन्होंने कहा—"मैं तो पूर्ण तृप्त हूँ, पर आप लोग यह बतलाइये कि यही शिवकोटी नारायण आश्रम है।" हम लोगों ने कहा—"जी हाँ, यही है।" थोड़ी देर वह चुप रहे फिर बोले—"आपके स्वामी श्री नारायण महाप्रभु जी क्या जल-यात्रा में पधारे हैं ?" हम लोगों ने कहा—"हाँ।"

पुनः वह महात्मा बोले—"हम यहाँ पर इसीलिये आये हैं कि आप लोगों को आपके गुरु का सन्देशा दे दें। आप लोग बच्चे हो, उनकी याद में व्याकुल और चिन्तित होंगे, क्योंकि बरसात ज्यादा हो रही है। हमने उनको कल नीमी नामक गाँव के पास एक टापू के मध्य देखा था। रात्रि के अंधकार,

ठंडक तथा हवा में भी वह अकेले ही नाव पर बैठे हुये नाम जप कर रहे थे। वह ध्यानावस्थित थे। उनके साथ तीन नाव थीं। एक में वह स्वयं विराजमान थे। वर्षा के कारण गाय नहीं मिली थी। मल्लाह लोग परेशान थे, गाय के लिए।" हम लोगों के नेत्रों से अश्रु की धार झरने लगी। आश्रम में तीन गऊ हैं और आज आपको भगवान राम की तरह अपने ही संकल्प से वनवासी बनना पड़ा। एक छटांक दूध भी उपलब्ध नहीं हो रहा है जिसको गरम पानी में डाल कर आप पी सकें? उसी समय भाई रामकीर्तन को बुलाया गया। वह उसी पानी में आया। हम लोगों ने कहा—"भय्या, तुम नीमी ग्राम की ओर जाओ, गंगा के किनारे-किनारे जाना, हम लोगों का नाम मत बतलाना और जो कुछ भी व्यवस्था की आवश्यकता हो करके आना। प्रभु कोमल बालक के सदृश हैं। उनका सुकुमार शरीर साधना करते-करते क्षीण हो चुका है, दिन में केवल एक बार मट्ठा और रात्रि में एक ही बार चाय लेकर प्राण-रक्षा कर रहे हैं। साधन में भी साधन करते रहते हैं।

इस प्रकार प्रभु छह मास तक नौका ही नौका के द्वारा भगवती गंगा के किनारे-किनारे भ्रमण करते रहे। उसी मध्य में १०८ बार अखंड गीता पाठ करने का अनुष्ठान भी लिया था।

प्रभु का इतना त्यागी और तपोमय दुर्बल शरीर होने पर भी हिमालय जैसा अटल अडिग सत्य, कर्मठशील भावनायें भक्तों को सहज ही अपने चरणों में झुका लेती थीं। भगवत भावना की एकांत परोपकारिक लौ अक्षय रूप से उनके अन्तःकरण में जलती रहती थी। भक्तों की भीड़-भाड़ से दूर रहकर ज्ञान आदित्य को अपने अन्तःकरण में ओत-प्रोत करने के लिये आपने हम सेवकों से ऐसा रुख बदला था। भागीरथी के पावन तट की बालुकाओं पर गीता ज्ञान को अपने हृदय-प्रदेश में समावेश करने के लिये उस पावन ज्ञान का अनुष्ठान आपने किया। लगातार कई-कई दिन कई-कई रातें नाव चलती ही रहती थी। नाविक जब थक जाते थे तब कुछ घंटों के लिये विश्राम कर लेते थे। जल-यात्रा करते-करते आप एक बार चाणी ग्राम के समीप पहुँच गये। रात्रि हो चुकी थी, नाविक क्लान्त हो चुके थे, वहीं पर नाव ठहरा दी

गई। अर्द्ध रात्रि होने लगी थी। किसी ने आकर कहा—"आप लोग कौन हैं ? इस प्रकार इस ग्राम के समीप ठहरना उचित नहीं, क्योंकि यहाँ पर अच्छे लोगों का वास नहीं है।" श्री गुरुदेव जी ने कहा—"जगत में बुरा कौन है ? सब रूपों में मेरे श्यामसुन्दर ही तो हैं। तुम्हारे लिये कोई बुरा है कोई भला है। हमारे लिये न कोई बुरा है न भला, सब रूपों में गुरु है।" ज्ञानोपदेश देते समय गुरुदेव प्रभु कभी-कभी कहते भी हैं—

'तुम स्वयं निश्चय के सुमेरु बनो। प्रभु-चरणों का प्रेम एवं गुरु-चरणों की निष्ठा तुमको सुमेरु के समान चमकदार, हीरे की प्रभा के समान लुभावनी, अतुलनीय मनोहर बना देगी। तुम अपनी निश्चयात्मक बुद्धि के द्वारा, गुरु-कृपा का अवलम्ब लेकर अपने अन्दर ही अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात् करने की चेष्टा तो करो। जिस दिन तुम उस आत्मा का साक्षात् कर लोगे उसी दिन सारी सृष्टि मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक, शस्य श्यामल पृथ्वी से लेकर नीलाम्बर तक, जगती का प्रत्येक प्राणी तुम्हारे स्वागत के लिये तत्पर रहेंगे। वायु तुम्हारा स्वागत करेगी, इन्द्र अनुकूल बन जायेगा, कोई तुम्हारी अवज्ञा का साहस नहीं कर सकेगा।"

इस व्यक्ति के जाते ही तीन अन्य नवयुवक आये। प्रभु की नाव बीच टापू में थी, वह जल को पार करके नाव के समीप पहुँचे। साष्टांग दंडवत करके प्रभु से कहने लगे, "भगवन्, हम आपके सेवक हैं, सब कुछ सेवा करने को तैयार हैं। यह ग्राम आपका ही है, हमारे बड़े भाग्य हैं जो आप जैसे महापुरुष का हमको दर्शन प्राप्त हुआ। आपके नाम की ख्याति तो हमने बहुत सुनी थी, लेकिन दर्शन का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। आज वह मनोरथ भी पूर्ण हो गया।" इस प्रकार से ग्रामीण भक्तों की अवर्णनीय श्रद्धा, प्रेम और शुद्ध भाव से प्रेरित होकर प्रभु वहाँ पर लगभग एक मास रहे। गंगा के किनारे मेला लगा रहता था। टापू तक जाने आने के लिये पन्द्रह बीस नाव खड़ी रहती थीं। प्रभु के प्रेम-भेंट में ग्रामवासियों ने अखंड कीर्तन अर्पण किया। श्री गुरुदेव जी ने पूरे ग्राम का भंडारा करवाया। गरीबों के बच्चों को वस्त्र, अन्न, मिठाई तथा खिलौनें दिये। सभी गदगद थे।

इसी प्रकार विचरण करते हुये नीमी ग्राम के समीप पधारे। वहाँ पर बड़ी मारी आँधी आ गई। वालू के पहाड़ उड़-उड़ कर मानो नौका को डुबो ही देंगे। उस तूफान के बीच में नौका झूला झूलती थी। नाविकों ने अपनी सच्चाई का सराहनीय परिचय दिया। गुरुदेव जी की नाव को पकड़ कर नाविक लोग बैठ गये। प्रभु वीरासन से बैठकर ध्यानावस्थित हो गये। शनैः-शनैः तूफान समाप्त हो गया। भगवान केशवानन्द जी की पादुका जो प्रभु की पूजा में थी, तूफान के घमासान में बह गई थी, लेकिन प्रभु की ऐसी चरणों के प्रति प्रेम भावना थी कि वह पादुका वहीं वालू में जम गई। तूफान समाप्त भी न होने पाया था कि प्रभु को पता लग गया कि पादुका भी तूफान के चक्कर में पड़ गई। अतः शीघ्र ही मल्लाहों से जल में ढुँढ़वाया। आधे घंण्टे में ही पादुका मिल गई। इन्द्रजाल फैला, लेकिन प्रभु का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

कुछ दिन प्रभु शंख माधव जी में रहे। प्रयागराज में चौदह माधव हैं, उनमें से शंख माधव का मन्दिर भी प्राचीन एवं धार्मिक दृष्टिकोण से माननीय है। गीता का अनुष्ठान बरावर चलता ही रहा। प्रातःकाल चार बजे से १२ बजे तक अनुष्ठान में रहते थे। पूजा के पश्चात लगभग १ बजे मट्ठा पान करते थे। तीन बजे से पुनः स्नान आदि से निवृत्त होकर पूजन में बैठ जाते थे। प्राचीन मूर्तियों के प्रति श्री प्रभु को बड़ी ही आस्था रहती है। वह शिला के एक खंड को भी दुखी देखना नहीं चाहते। शंख माधव जी में बहुत ही सुन्दर लगभग पांच फिट की लक्ष्मी नारायण की संगमरमर की मूर्ति है, पूजा सफाई की अव्यवस्था होने से वस्त्रहीन मूर्ति योंही पड़ी थी। श्री गुरुदेव जी ने मूर्तियों को नींबू तथा खटाई साबुन से स्नान करवा कर नवीन वस्त्रों को धारण करवाया। मंदिर की मरम्मत और सफेदी करवाई। वहाँ पर २४ घंटे का अखंड नाम संकीर्तन तथा भंडारा हुआ।

जमुना जी की धारा में निवास—इसी प्रकार वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात जमुना जी की बीच धारा में एक मास तक निवास किया। नेपाल के प्राइम मिनिस्टर सूर्यबहादुर थापा प्रभु के दर्शन के लिये आये थे, लेकिन आश्रम में न होकर प्रभु तो यमुना की गोद में विराज कर जगत को

आत्मा का प्रकाश देने की साधना में लीन थे। आनन्द मग्न प्रभु से बहुत प्रकार से अनुनय विनय करने पर उनको वहीं पर दर्शन करने की आज्ञा मिल गई। वे बड़े ही सन्तुष्ट हुये उस ज्योतिर्मय प्रभु का दर्शन पाकर। उन्होंने प्रभु से भगवान के विषय में कुछ प्रश्नों को पूछा था। प्रभु ने अनेक प्रकार के ज्ञान को समझाते हुये कहा—

"ज्ञान के वास्तविक तत्व को समझना चाहिये। मन को प्रसन्न करने वाले सम्बन्धों का एक दिन अवश्य ही नाश होता है। यह ध्रुव सत्य वेदोक्त एवं अनुभव वाणी है। इसीलिये इस संसार में रहते हुये भी मन की डोर संसार के लुभावने तालाबों से हटाकर आदि स्रोत जो चिर स्थिर आत्मा है, तक पहुँचाने की चेष्टा करनी चाहिये। कुछ दिन में सूख जाने वाली नदी के बहते स्रोत में मन को फँसाने से दुख ही हाथ लगेगा। यह जीवन दियासलाई की कांटी के सदृश है, एक दिन जल कर राख का ढेर बन जायेगा। धन्य है वह जिसने स्थायी रूप से जला लिया है। शरीर को शास्त्रों ने रेल का इंजन भी कहा है। कर्म और संस्कार रूपी कोयला और भाप जब तक हैं तब तक वह चलता रहेगा, अतः बुद्धिमान और भाग्यवान वही है जो कोयला और भाप के खत्म होने के पहले ही स्टेशन पर पहुंच जाते हैं अर्थात् ईश्वर तक पहुँच जाते हैं।"

फिर प्रभु ने कहा—"आप आये, बहुत अच्छा हुआ। संत महापुरुषों के प्रति ऐसी ही श्रद्धा भक्ति बनाये रखना चाहिये।"

प्रभु का आश्रम में पदार्पण :—प्राणिमात्र को झुलसा देने वाली गर्मी पड़ने लगी थी। यद्यपि प्रभु की कोई आज्ञा नहीं थी कि हम लोग प्रभु के पास जायें, लेकिन मंत्री जी से वार्तालाप करने के लिए प्रभु ने एक बार एक दिन के लिए बुला लिया था, क्योंकि उनका मौन अनुष्ठान चल रहा था। थोड़ा सा साहस बढ़ गया। यह सेवक, जमुना बहन जी, मुआ जी, गायत्री जी, श्री जी आदि भक्त प्रभु का दर्शन करने जमुना जी पर गये। प्रभु अन्तर्यामी सब हमारे मन की बातों को समझ गये। लेकिन बेरुखी दिखलाते हुये नाव वाले से कहा—"इन लोगों से कहो, यह लोग यहाँ क्यों आये हैं? इनको

भक्तों को प्रभु जी गीता उपदेश देते हुए (इलाहाबाद)
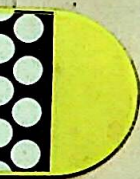
यहाँ पर किसने बुलाया है ? आश्रम लौट जायें और वहीं पर भगवान का भजन करें ।" धन्य है गोपिकाओ, महारास की पूर्णिमा के दिन तुमने कैसे हृदय पर पत्थर रख कर काले कन्हैया की बातें सहीं कि तुम यहाँ क्यों आई हो ? लेकिन तुम तो फिर भी प्रश्न उत्तर कर सकीं । परन्तु हम लोगों से कौन बोल रहा था, बीच में एक मल्लाह था । हम लोग ढिठाई करके प्रभु की नौका के समीप अपनी नौका लेकर गये । केवल अश्रु के अतिरिक्त हमारे पास था ही क्या ! एक घंटे तक अश्रु सबके बहते रहे । तपस्यामय गौरवर्ण का शरीर श्याम वर्ण हो चुका था । क्षीण शरीर देखा नहीं जाता था । ग्रीष्म के सूर्य की प्रखर रश्मि से झुलसाने वाली वायु हम लोगों को झुलसाये दे रही थी, फिर प्रभु का क्या हाल होता होगा ? हम लोगों ने प्रभु से प्रार्थना करी--"आप आश्रम में पधारिये, आप आश्रम के झमेलों से दूर रहना चाहते हैं तो केवल अपनी कुटी में ही रहिये । हम लोग आपके योग्य नहीं हैं तो हम लोग आपके समक्ष नहीं आयेंगे, लेकिन इस कोमल शरीर को इस प्रकार कष्ट क्यों दे रहे हैं ?" प्रभु मौन होकर सब सुनते रहे । संध्या होने लगी, प्रभु का आदेश हुआ, अब तुम लोग जाओ । आदेशानुसार सब लौट आये, यह सेवक वहीं रह गया । जब मौका मिलता तब चरणों में प्रार्थना-पत्र चढ़ाते । करुणा-सिन्धु का हृदय पिघल ही गया । आश्रम पधारने की स्वीकृति मिल गई । आश्रम में यह संदेशा पहुँचाया गया । भक्तों में मंगल छा गया । सब के हृदय हरे-भरे हो गये, शव जीवित हो गया । आनन्द महानन्द छा गया । प्रभु आश्रम पधार गये । गीता का अनुष्ठान समाप्त हो चुका था । प्रभु के पधारने की खुशी एवं अनुष्टान की समाप्ति के उपलक्ष में महोत्सव मनाया गया ।

पौष मास की शीत में प्रभु का गंगा जी में निवास :—

श्री गुरुदेव ईश्वर की व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही सत्ता को मस्तक नवाते हैं । सभी देवी देवताओं का समादर करते हैं । एक साकार गुरु की मूर्ति को सभी में व्याप्त दर्शन करते हैं । आप कहते हैं, जब तक साकार पर-मात्मा को नहीं पहिचान सकेंगे तब तक निराकार परमात्मा तक पहुँचना

दुस्तर है। जो ईश्वर का दर्शन करना चाहता है, वह पहले सर्वप्रथम अपनी आत्मा को जगत की आत्मा के साथ तादात्म्य तो कर ले। मूर्ति में मंत्र के द्वारा प्राण संचार करके हम भगवान मानते हैं। ईश्वर की बनायी हुई प्रकृति जिसमें उसकी साकार सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है, उसको ही मान लें। उस दिन बहुत ठंड पड़ रही थी। शरीर बर्फ हुआ जा रहा था। ठंडी बर्फीली, तूफानी वायु शरीर को बाण के सदृश बेधे डाल रही थी। प्रातःकाल श्री गुरु-देव जी गंगा जी में स्नान करने के पश्चात् बहुत समय तक माँ को अपलक दृष्टि से निहारते रहे। जब अपनी पूजा स्थली में पधारे, आपकी मुस्कराहट में एक दिव्य मस्ती भरी हुई थी। उनके प्रत्येक अंग से तेज-पुंज बरस रहा था। हम लोगों ने प्रभु को देखा, पर ठीक से देख नहीं सक रहे थे। उनके नेत्रों से सहस्र सूर्यों का प्रकाश बरस रहा था। मुखारविन्द रक्त-कमल जैसा प्रतीत हो रहा था। हमने मस्तक झुका कर प्रणाम किया। दस बजने के पश्चात् श्री प्रभु ने कहा—"देखो, तुम्हें धर्म-प्रचार के लिये कल ही बाहर जाना है, जमुना तो जा ही चुकी है।" थोड़ी देर पश्चात् बोले—"हम तो बाहर जाते ही नहीं, न मोटर में ही चढ़ते हैं। अतः हम पन्द्रह दिन तक नौका में ही रह कर माता गंगा को अपनायेंगे।" हमने कहा—"प्रभो! आप अपने स्वरूप को उनसे छिपाइयेगा जो आपको नहीं जानते, अपने शरणागत सेवक की आँखों में क्यों पट्टी बांधते हैं, इसके अतिरिक्त शीतलहरी चल रही है, नौका पर दही जमना कठिन हो जायेगा, तपस्या से यह शरीर योंही क्षीण हो चुका है। आपको क्या प्राप्त करना है जो इस प्रकार से शरीर को कष्ट देते रहते हैं।" प्रभु खिलखिला कर हँस पड़े। दो दिन पश्चात् ही पन्द्रह दिन के लिए प्रभु ने गंगा माँ की गोद में तपश्चर्या करना प्रारम्भ कर दिया। आप तो खेलते-कूदते अपनी नौका पर जाकर विराज गये। भक्तों के अश्रु माँ के अम्बर को गीला कर रहे थे। बड़ी आश्चर्यमय घटना यह घटी कि आश्रम में तूफान जैसी ठंडी हवा चलती थी। नगर में शीत के प्रहार से सैकड़ों लोग ठंडे होकर निज लोक को चले गये, लेकिन नौका के आस-पास तक वायु की एक लहर भी नहीं आई। दही भी अच्छी तरह जम जाती थी। नौका के आस-पास का वायु-मंडल जैसे किसी

ने गरम कर दिया हो। इस प्रकार से पन्द्रह दिन की तपश्चर्या प्रभु ने हँसते-हँसते पूर्ण की और आश्रम में पधारे।

वन-यात्रा :— कभी-कभी हमको लगता है कि क्या इनको कोई समझ सकेगा? साधारण व्यक्ति तो समझने में अवश्य ही भूल कर देंगे, क्योंकि कभी-कभी आप साधारण जिज्ञासु के सदृश चरित्र करने लग जाते हैं। ज्ञानानुभूति की चरम सीमा पर पहुँच कर भी, ज्ञान-पिपासु साधक जैसे कर्म का आचरण करते हैं। आपने पूर्ण वैरागी वाना को धारण कर लिया। दूर-दूर अलग-अलग रहना प्रारम्भ कर दिया। कुछ पूछने पर अथवा कहने पर जवाव देना वन्द कर दिया। कोई वाहर के भक्त दर्शन करने आते, तव उन्हें अच्छी प्रकार ज्ञान समझाते हुये कहते, "देखो! तुम प्रभु को ही अपना प्रेमी प्रियतम बना लो, ऐसा भाव उनके साथ जोड़ने की चेष्टा करो। प्रभु के साथ नाता जोड़ना आवश्यक है। कोई भी नाता लगाओ, लेकिन लगाओ अवश्य। तुम्हारे सच्चे भाव से ही वह भाव का उपासक उन्हें अपना लेगा। तुम्हारे पीछे-पीछे फिरेगा। कोई साधना न वन सके तो कीर्तन ही करो। नाम कीर्तन से हृदय पवित्र हो जायेगा। मन प्रभु के प्रेम से सरावोर हो जायेगा।" इस तरह से वातें करके उन्हें पूर्ण सन्तुष्ट करते। हम लोगों के समक्ष गुम हो जाते थे। हम लोगों को वड़ी परेशानी होती थी। इस सेवक को तो ऐसा अनुभव होता था कि जीवन में इष्ट का वेरुख हो जाना ही सबसे वड़ा कष्ट है। महीनों कच्चे पपीते को उवाल कर जव खाते थे, महीनों केवल शर्वत पीकर रहते थे, मूली का पत्ता खाकर रहे, तव भी कभी दुःख अथवा कष्ट नहीं प्रतीत हुआ था। हृदय पर एक पवित्र प्रेम का रंग चढ़ा रहता था। कभी-कभी ऐसा अवसर आ जाता था कि मूली का पत्ता तक न उपलब्ध होता, उस समय भी किसी प्रकार का मानसिक कष्ट नहीं हुआ था। लेकिन जव प्रभु वेरुख हो जाते हैं तो ऐसा लगता है मानो मुसीवत का पहाड़ टूट कर माथे के ऊपर आ पड़ा। कुछ अच्छा नहीं लगता। लेकिन उपाय क्या है? कर्तव्य कर्म करना अनिवार्य है। प्रभु का मन उदास पागल जैसा रहता था। ऐसा लगे पहाड़ जैसा कष्ट कौन से पाप के वदले माथे पर आ गिरा है।

जब प्रभु ने वन-यात्रा करने की चर्चा प्रारम्भ कर दी, तब हम लोगों की समझ में आया कि यह इतने कठोर और बेरुखे क्यों बने थे ? जब आप दूर रहना चाहते हैं तब इस प्रकार का व्यवहार करना प्रारम्भ कर देते हैं। यह आपकी नीति अद्भुत ही है। फाल्गुन लगते ही आपने कहा—"हमको त्रिवेणी स्नान कराने वाले सरजू मल्लाह को बुलाओ, हमको उससे बात करनी है।" उससे अपने आने जाने की बात स्वयं मिला ली। राधेश्याम जी, द्रोपदी जी और जगदम्बिका जी को संकेत कर दिया कि तुम लोगों को लेकर हम बाहर जायेंगे। हम लोग सब समझ गये, लेकिन कौन क्या कह सकता था ? प्रभु के साथ जाने वाले सामान की व्यवस्था कर दी गई। हम लोगों के मन में यही था कि हम लोगों को अलग रहने में ही उनको प्रसन्नता है तो ठीक ही है। उनको हमारे द्वारा किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिये। इस प्रकार मन को सान्त्वना दिया गया। यद्यपि हम लोग सभी प्रभु को दया एवं उनकी बहुमुखी दिव्य प्रतिभा से अपरिचित नहीं थे। क्योंकि कुछ मास पूर्व ही यह सेवक बहुत ज्यादा अस्वस्थ हो गया था, जीवन के बचने की कोई आशा नहीं थी, न जीवन रखने की इच्छा ही थी। क्योंकि संसार की नश्वरता को अच्छी प्रकार समझ लिया था। नाक से इतना पानी बहता था कि बड़े-बड़े मोटे रोयेंदार तौलिये भीग जाते थे, लगातार घंटों छींक आती ही रहती थी, जिससे एक दिन अचेतन जैसी अवस्था हो गई। होम्योपैथिक चिकित्सक ने कहा—"आपको आहार में परिवर्तन करना चाहिये। [illegible] एक बार फल खाकर रहने का जो नियम है, उससे आप कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकतीं।" हमने कहा, "जाना है, रहना नहीं, मरना बीसो बीस, फिर जरा से जीवन की रक्षा के लिए नियम क्यों भंग करें ?" अचेतन अवस्था में देखा कि चार-पाँच व्यक्ति आये हैं और कह रहे हैं कि आपको लेने आये हैं, अब आप शीघ्र तैयार हो जाइये। हमने कहा—"अच्छा ठीक है, चलने में हमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन गुरुदेव की आज्ञा के बिना हम कोई भी काम नहीं करते। अतः आज्ञा लेकर आते हैं।" इतने में प्रभु बड़े रोब में पधारे और बोले—"तुम लोग कौन हो ? कहाँ ले जाना है ?" प्रभु को देखते ही वह लोग भाग गये। इतने में हमारी

तन्द्रा भंग हो गई। तबियत एकदम हल्की मालूम पड़ रही थी। उस दिन से रोग बिल्कुल भाग गया एवं शरीर स्वस्थ हो गया।

प्रभु यात्रा में पधार गये। किसी को संकेत तक नहीं किया कि किस ओर जा रहे हैं, लेकिन भगवान को ढूँढ़ते हुये मनुष्य वैकुंठ लोक पहुँच जाता है। फिर यह तो इसी मृत्युलोक की बात थी। जहाँ चाह है वहाँ राह है। हम लोगों को गुरुदेव भगवान किस ओर पधारे, कैसा स्वास्थ्य है, सब पता लग जाता था। ज्योतिर्मय प्रभु अपनी अप्रतिम प्रभा को बिखेरते, बनवासियों को सुख और आनन्द देते हुये जंगलों के किनारे-किनारे नौका में फिरते रहते थे। केवल लोक-कल्याण की भावना आपको जंगलों की ओर ले जा रही थी, स्वार्थ का कहीं लेशमात्र चिह्न नहीं था। ब्रह्म भाव से ओत-प्रोत हृदय में अपने शरीर की रक्षा का भी ध्यान नहीं था। जंगलों के मध्य गाय का आना और जमुना तट पर गऊ का दुहना दु:साध्य था।

जमुना जी का जल घट गया :—गुरुदेव जी की नौका गऊ घाट से कुछ दूर पर मध्य जमुना जी में खड़ी थी। पानी इतना अधिक था कि बांस का गाड़ना असम्भव था। अत: तीनों नौकाओं के लंगरों को जमुना जी में डाल कर एक साथ बांध दिया गया, जिससे कि सब का भार एक साथ रहे। द्रोपदी जी ने अपने मन से दो नौकाओं के बीच में कपड़े सुखाने की डोरी को बांध लिया और कपड़ें सुखाने लगीं। दोनों नाव के बीच में उनका पैर आ गया और वह उस अथाह जल में गिर पड़ीं। जल में गिरते ही बड़ी जोरों की आवाज आई कि गुरुदेव बचाइये। श्री गुरुदेव भगवान पूजा में विराजे थे, वह पूजा से उठ नहीं सकते थे, एक ओर अनुष्ठानिक नियम दूसरी ओर एक भक्त की प्राण-रक्षा। इतने में क्या देखते हैं कि द्रोपदी जी कमर भर पानी में खड़ी हँस रही हैं। नाविक लोग आश्चर्य में पड़ गये कि यह असम्भावी घटना कैसे घट गई।

राधेश्याम जी और द्रोपदी जी को भी कुछ दिन पश्चात् लौटा दिया गया। अत: हम लोगों का दिल नहीं माना। मुआ जी से सलाह लेकर हम और गिरधर जी सेवा के हेतु पहुँच गये।

जगदम्बिका जी को कुछ ठंड लग गई। पहले तो साधारण बुखार आया, पर उसी ज्वर ने मियादी ज्वर का रूप धारण कर लिया। नौका पर ठीक उपचार हो न सका। रोगी के अनुकूल कोई भी व्यवस्था नहीं थी। बुखार बढ़ता ही गया, शरीर क्षीण होता ही गया। रात्रि आठ बजे का समय था। श्री गुरुदेव जी पूजा में बैठे हुये थे, यह सेवक सब सेवा से निवृत्त होकर जमुना जी में ज्यों स्नान करने के लिए उतरा त्यों ही गुरुदेव भगवान को अचानक आत्मा में आया कि कहीं जगदम्बिका की तबियत ज्यादा खराब तो नहीं हो गई। आश्रम से राधेश्याम जी को बुलाकर तिमारदारी के लिये रख दिया गया था। प्रभु ने आवाज दी, राधेश्याम जगदम्बिका सीताराम! गुरुदेव जी का यह मौन संकेत था कि वह कैसी है? राधेश्याम जी ने कहा—"गुरुदेव, वह तो बिल्कुल ठंडी पड़ गई, हिल-डुल नहीं रही है।" ज्यों गुरुदेव अपनी नाव से कूदकर उसकी नाव में गये, मरीज की नाव में जलता हुआ स्टोव और उसका तेल लुढ़क गया। मरीज की नाव चारों ओर कांसे से छायी हुई थी। गुरुदेव जी को कूदते देखकर हम भी गीले ही शरीर नाव पर चढ़ गये, देखा कांसे से बने टट्टर के पास ही जला हुआ स्टोव गिरा पड़ा है, मिट्टी का तेल लुढ़का पड़ा है, मरीज अलग बेहोश पड़ा है। परन्तु भगवान गुरुदेव की अद्भुत कृपा, न तो टट्टर में आग लगी न अन्य कोई नुकसान हुआ। भगवान दादा गुरुदेव का चरणामृत साथ में था, उसको मरीज के मुँह में डालकर समस्त शरीर में लगा दिया गया, फौरन उसने आँख खोल दिया और संकेत किया कि दिल बैठ रहा है, तत्काल गरम दूध दिया गया, वह ठीक हो गई। सच में भगवान ने ठीक ही कहा है। वह जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा--

"अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जन प्रियः॥"

मैं सर्वथा भक्तों के अधीन हूँ और अस्वतन्त्र की तरह हूँ। मेरे साधु हृदय भक्तों ने मेरे हृदय को अपने हाथ में कर रक्खा है।

"पराभवतान्न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्नशङ्करः ।
न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गा न गणेश्वरः ।।
न ब्राह्मण न वेदाश्च न वेद जननी परा ।
न गोपी न च गोपाला न राधा प्राणतः प्रियाः ।।"

अर्थात् मेरे भक्तों से श्रेष्ठ न तो मेरा प्राण है और न लक्ष्मी न शंकर, न भारती न ब्रह्मा, न दुर्गा न गणेश्वर, न ब्राह्मण न वेद न वेदों की माता सावित्री न गोपी न गोपाल न प्राण की प्रिय राधा ही है ।

सत्य में भगवान ने कहा है—"भक्ताधीनो दिवानिशिम्" ऐसी ममता भगवान के हृदय में भक्तों के लिए न होती तो बिना विचारे जल में खड़ी एक नाव से दूसरी नाव पर दौड़ कर जाते ? यदि योग क्षेम का वहन न करते तो मिट्टी का तेल, जलती अग्नि और बांसे का टट्टर साथ ही था, नाव में आग न लग जाती ? अच्छे लोग कूद भी सकते थे, अचेतन अवस्था का रोगी क्या करता ?

इसी प्रकार की एक घटना का और स्मरण हो आया ।

गुरुदेव की सर्वव्यापकता :—यह घटना आज से २१ वर्ष पूर्व की है । हमारा भक्ति का प्रथम वर्ष था । विश्वविद्यालय से निकले हुये विद्यार्थी की गहन विचार-धारा, वैराग्य से बोझिल हृदय, ईश्वर-प्राप्ति की जिज्ञासा । संसार की किन्हीं भी वस्तुओं के प्रति न आसक्ति थी, न किसी प्रकार की वासना, न किसी से ममता थी । केवल एक लगन, एक धुन, वह थी ईश्वर की प्रसन्नता और उसका मिलन । गर्मी का दिन था । खाना-पीना कुछ अच्छा नहीं लगता था, कोई व्यक्ति भी अच्छा नहीं लगता था । मन की गति कुछ समझ में नहीं आती थी । खाली पेट धूप में चलना फिरना, लू लग गई, बुखार आ गया और इसी में पेचिश पर पेचिश शुरू हो गई । महाप्रभु से अपने किसी प्रकार के कष्ट को कहने में दिल में ठेस जैसी लगती थी कि उनके कोमल दिल को कहीं हमारी ओर ध्यान न देना पड़े । दिन भर प्रभु से कुछ न कहकर सेवा में तत्पर रही, ज्यों-ज्यों संध्या होती गई ताप तीव्र गति से

बढ़ता गया, साथ में पेचिश की ऐंठन विचित्र किस्म की होती था जो १८ वर्ष की अवस्था तक कभी नहीं हुई थी। कहीं प्रभु को कष्ट न हो यह सोचकर हरि मन्दिर के बगल में एक छोटी सी कोठरी थी उसी में जाकर लेट गये। इधर प्रभु ने भी कुछ ध्यान नहीं दिया। उधर रात्रि भर एक वस्त्र से बार-बार शौच-गृह में जाती, बार-बार स्नान करती, ज्वर तेज, सिर उड़ा चला जाता था। मालूम पड़ता था बदन टूट कर गिर जायेगा। इसी तरह प्रातःकाल चार बज गये। रात्रि भर जरा सी भी नींद नहीं आई। विचित्र बेचैनी थी। वहाँ पर कोई अपना नहीं था। सबसे नाता तोड़ दिया था, नेत्रों से पानी की बूंदें गिरने लगीं और हृदय में गाने की लाइन याद आ गई--

अब सुनो टेर हे नाथ हमारे।
तुम बिन कौन है मेरो ॥
निज मन को तुझमें अर्पण कर।
नयनों में छबि तेरी भर कर।
जाऊँ कहाँ मैं मेरो ॥तुम॥
जग कहता तू है दयालु घट-घट।
हम कहते तू कहाँ है नटखट।
आकर दर्शन दे जा मेरो ॥तुम॥
निर्मल नयनन से नीर झरत है।
रोम-रोम में गुंजार करत है।
काहे लगाये तू बेरो ॥तुम॥

नेत्र बन्द थे, इतने में प्रभु गंगा स्नान करके पधार गये। उस बन्द कोठरी को खोल कर भीतर प्रवेश किया और बोले--तुम्हारी तबियत कैसी है? यहाँ क्यों लेटी हो? हमारे मन में लगा, यह यहाँ कैसे आ गये? हम तो छिप कर लेटे हैं। यह जाग्रिति की लीला है या स्वप्न की। प्रभु जोर से हंसे और बोले, क्या सोच रही हो? थोड़ी देर बाद पसीना आकर बुखार उतर गया। तबियत हल्की मालूम पड़ने लगी।

यों तो इस प्रकार की जीवन में अनेक घटना घटी हैं, लेकिन एक घटना और स्मरण हो आयी जो अपने ऊपर बीती है।

माघ का मास था। हम लोग सब त्रिवेणी क्षेत्र में थे। अर्ध कुम्भ का वर्ष था। स्नान करने का बड़ा ही टेढ़ा हिसाब सरकार की ओर से था। किसी ने कहा, माघ मास में सरसों का तेल बीमारी की अवस्था में भी नहीं लगाया जाता। भीड़ अधिक होने से एक दिन ६ बार स्नान करना पड़ा। सवेरे बहुत दूर त्रिवेणी जाने के लिये नाव मिलती थी। सरकारी प्रबन्ध ही ऐसा था। पहले दिन ६ बार स्नान करने के कारण सीने में ठंड लग चुकी थी। लेकिन हमने कुछ ध्यान नहीं दिया। फलतः सीना जकड़ता चला गया। बाल-बुद्धि हमने सोचा सीने में तेल नहीं लगा सकते तो क्या है, घी ही लगा लेते हैं। घी को भी गरम नहीं किया। सोते समय ठंडे घी को सीने में लगा लिया। बस अब क्या था, सीना एकदम भारी हो गया, ऊपर की सांस ऊपर, नीचे की सांस नीचे। सांस न आती थी न जाती थी। खाँसी आना चाहे लेकिन खांस न सकें। ऐसा प्रतीत होता था कि सीने के ऊपर किसी ने एक बड़ा विशाल पत्थर रख दिया है जो हिलता नहीं। बुद्धि काम न करे कि क्या करें? हमारी कुटी में दुर्गा जी सो रही थीं। मुँह से आवाज निकालना तो दूर रहा, हिला ही नहीं जाता था। नेत्रों में आँसू, मन में प्रभु का स्मरण, मुख में गुरु नाम का जप चलने लगा। सोचा, ठीक है, एक दिन तो मरना ही है, लेकिन यहाँ पर मरने से गुरुदेव के अनुष्ठान में विघ्न पड़ेगा, अतः हमारा मरना केवल गुरुदेव के लिये ही नहीं बल्कि जगत के लिये भी हानिकारक होगा, क्योंकि विश्व-कल्याण के लिये यज्ञ चल रहा है। सभी शुभ कर्मों में विघ्न पड़ेगा। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बस इतना मन में आया, गुरुदेव, तुम क्यों देर लगा रहे हो, इतना सोचने भी नहीं पाये थे कि दुर्गा जी जाग गईं, बिना कुछ इशारा करे ही कहने लगीं, बहन जी, सीने में दर्द हो रहा है क्या? हमसे तो हिला भी नहीं जा रहा था। सीने में पत्थर रखा प्रतीत सा होता था, उनको जवाब कौन देता? दुर्गा बहन अपने मन से ही, पुराना घी, विक्स और कपूर निकाल कर लाईं, सीने में मल कर अग्नि से सेंक दी। दस मिनट में ही सीने

का दर्द पता नहीं कहाँ चला गया और हमको ऐसी नींद आई कि सवेरे त्रिवेणी स्नान करने के लिये जाने के समय नींद खुली। प्रातःकाल प्रभु को हमने कुछ भी नहीं बतलाया। वह स्वयं कहने लगे, अब तो दर्द ठीक हो गया? हम कुछ भी नहीं बोले, रात्रि की घटना सब समक्ष आ गई। धन्य है प्रभु आपकी सर्वमुखी शक्ति को। आप कहाँ-कहाँ फिरते रहते हो, भक्तों की गलियों की खाक छानते रहते हो।

इसी प्रकार की घटना शिवा बहन भी बतला रही थीं कि भक्ति-मार्ग में आने के कुछ दिन पूर्व ही उनके हाथों में खुजली हो गई थी। पहले तो उन्हें कुछ पता नहीं चला, अतः उपचार भी नहीं किया। भक्ति-मार्ग में आने के कुछ मास पश्चात् उसने विकराल रूप धारण कर लिया। श्री महाप्रभु ने अनेक चिकित्सकों को दिखलाया, होम्योपैथिक, ऐलोपैथिक तथा वैद्यक, पर वह किसी प्रकार से जड़ नहीं छोड़ रहा था। दो-चार दिन कम जैसा प्रतीत होता फिर जैसे का तैसा। लगभग एक वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हो गया। एक दिन उनको हार्दिक मानसिक वेदना हुई, सारा पैर और हाथ दानों से भर गया था। वह फूट-फूट कर खूब प्रभु की फोटो के आगे रोईं और ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं कि मैं ऐसे जीवन को लेकर क्या करूँगी, जो न गुरु की ही सेवा के योग्य है न अपनी ही। सायंकाल का समय था, व्यथित हृदय से बैठी थीं, इतने में भगवान गुरुदेव टहलते हुये उनके पास तक पहुँच गये और कहने लगे, तुम्हारी खुजली कैसी है? गुरु क्या नहीं कर सकता? राई को पर्वत तथा पर्वत को राई करने की सामर्थ्य रखता है। दुखी होना, रोना घबड़ाना अज्ञानियों का काम है। एक पुष्प देते हुये कहा, लो ठीक हो जायेगा, सब रोग में फेर लो। ऐसा कह कर चले गये। हम लोग हैरान हो गये। क्या है प्रभु तेरी अद्भुत शक्ति? क्रमशः ठीक होते-होते अब वह रोग जड़ से ही चला गया।

जगदम्बिका बहन भी इसी प्रकार की एक घटना बतला रही थीं। यों तो सबके संग अनेकों घटना घटती होगी, लेकिन सब तो अवर्णनीय है। वह हमसे एक दिन कहने लगीं, देखिये प्रभु कितने अन्तर्यामी हैं। वह नई-नई आई थीं, प्रभु का शासन बड़ा ही नियंत्रित और कठोर कभी-कभी हो जाता है। जिस

समय वह रुद्र शक्ति को अपनाते हैं तब भक्तों की नस-नस ढीली कर देते हैं। उसी रुद्र शक्ति अपनाने के समय वह आ पहुँची थीं। एक दिन उनका मन बड़ा ही विक्षिप्त हुआ कि हम तो परस्पर में भक्तों का प्रेम देखकर ही यहाँ आये थे, लेकिन श्री गुरुदेव जी ने कैसा स्वरूप धारण कर रखा है। मन की स्थिति ठीक नहीं थी, वह बैठी सीता राम जप रही थीं। इतने में श्री गुरुदेव जी पहुँच गये और बोले—"क्यों, क्या हुआ? तुम्हें देखकर हमें भी दया आती है, दुख लगता है, लेकिन हम क्या करें। जिस समय प्रभु ने नरसिंह अवतार धारण किया था उस समय लक्ष्मी की ओर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया, अतः दुखी न होकर सब स्थितियों में समान रहना चाहिये।" गुरुदेव जी के दो वचन से उनके हृदय में शान्ति का साम्राज्य छा गया।

भक्तों की एक-एक बात लिखें तो एक-एक पोथी तैयार हो जाय, लेकिन जो घटना स्मृति में आ गई उसे बिना लिखे लेखनी मानती नहीं। रामेश्वर यात्रा में जमुना बहन जी बहुत बीमार हो गईं। मद्रास में उनको बड़ी माता निकल आईं। समस्त शरीर में यहाँ तक कि आँख के अन्दर भी मोती जैसी जल भरी माता निकल आईं, बेचारी को बहुत ही कष्ट था, लेकिन जब आँख की पुतली पर भी निकल आईं तब तो उनकी मानसिक वेदना भी बढ़ गई कि नेत्रहीन होकर जगत में जीवित रह कर क्या करेंगे, बल्कि संसार से जाना ही ठीक है। इस प्रकार के नाना विचारों के यातायात में ही उनकी आँख लग गई। तन्द्रावस्था में उन्होंने देखा, श्री गुरुदेव जी उनके कमरे में पधारे हैं और आँख में अँगुली लगाते हुये कह रहे हैं, लो इस डोरे को निकाल देते हैं। इतने में तन्द्रा भंग हो गई। उन्हें महसूस हुआ जैसे नेत्रों की जलन बिल्कुल ठीक हो गयी और पुतली पर निकला हुआ दाना भी नहीं था।

मुआ जी का टयूमर अपने आप ठीक हो गया :—मुआ जी को नित्य बुखार हो जाता था और पेट में दर्द। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे बुखार और पेट का दर्द ठीक होगा। मुआ जी की परिचित लेडी डाक्टर सामन्त उनसे मिलने के लिये आई थीं। उस समय मुआ जी बुखार से पीड़ित थीं। डाक्टर होने के नाते वह नहीं मानीं। मुआ जी का पेट देखा, एकदम

अवाक् होकर बोलीं, "यह क्या रानी साहब ? आपके पेट में तो नारियल के बराबर ट्यूमर है। आप फौरन पेट का आपरेशन करवा कर ट्यूमर को निकलवा दीजिये, नहीं तो आपका बचना मुश्किल हो जायेगा।" ऐसा कह कर सामन्त जी तो चली गईं। मुआ जी ने किसी से कुछ नहीं कहा। मन ही मन सोचने लगीं कि लाला गोपाल (प्रभु को कहती थीं) को कहेंगे तो कहीं वह घबड़ा न जायँ (क्योंकि उनकी वात्सल्य उपासना है), न हम अस्पताल ही जायेंगे। वृद्धा अवस्था में दूध पीकर रहते हैं, वहाँ जाने से अपने सारे नियम खंडित हो जायेंगे। इतने में देखती हैं कि महाप्रभु सामने से आ रहे हैं, आकर मुआ जी की धोती पकड़ कर खड़े हो गये, और कहने लगे—"गोविन्द ! हम तुम्हें अस्पताल नहीं भेजेंगे, अपने आप गुरु की कृपा से ठीक हो जायेगा। तुम रोज भगवान गुरु का चरणामृत पिया करो और पेट में लगाया करो। अपने आप ठीक हो जायेगा। ईश्वर के चरणों में अटल विश्वास सदा बनाये रखने से समस्त क्लेश अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं।" रात्रि को स्वप्न में मुआ जी ने देखा, "श्री गुरुदेव भगवान पाँच वर्ष के बालक के स्वरूप में एक लकुटी लेकर आये हैं और कह रहे हैं, देखें तुम्हारे पेट में क्या है, इसी लकुटी से उसको कोंच देंगे।" ऐसा कहते-कहते मुआ जी के तख्त के ऊपर घुटने टेक कर बैठ गये और पेट के ऊपर अपनी लकुटी रख दी। मुआ जी की आँख खुल गई। उसी दिन से बुखार उतर गया और पेट का दर्द कम होना शुरू हो गया। शनैः-शनैः बुखार और दर्द बिल्कुल ही मिट गया। छह मास पश्चात् लेडी डाक्टर सामन्त फिर मुआ जी से मिलने आई और पूछने लगीं, "कहिये रानी साहब ! आपने अपना ट्यूमर निकलवा दिया ?" मुआ जी ने कहा, "हम तो किसी को दिखाया भी नहीं। निकालने की बात ही दूर है।" वह बड़े आश्चर्य से बोलीं, लेकिन आप तो ठीक मालूम पड़ रही हैं। यदि वह गोला पेट में रह जायेगा तो फट कर शरीर में जहर फैला देगा। ऐसा कह कर उसने मुआ जी का पेट देखा, गोला तो गोल हो चुका था। वह हैरान हो गईं और कहने लगीं, क्या शक्ति है आपके गुरुदेव में।

दिल्ली के भजन लाल भार्गव के पिता जी को टाइफाइड हो गया था। टाइफाइड रिलैप्स कर गया और उसमें १०५ डिग्री बुखार हो गया। उन्होंने सोचा,

अब जीवन की अंतिम सांस है। थोड़ी-थोड़ी उनकी चेतना जाग्रित थी, नेत्रों से अश्रु बहने लगा। गुरुदेव की स्मृति जाग उठी, मन में कहने लगे, गुरुदेव अब मैं चला संसार से। आपके सिवा मेरा कौन रक्षक है। तीव्र बुखार के कारण अर्द्ध चेतन अवस्था थी, उसी में आपने देखा, डेढ़ वर्ष के बालक के रूप में गुरुदेव पधारे हैं। खूब मोटा सुन्दर डेढ़ वर्ष का बालक है, लेकिन छवि श्री गुरुदेव जी की है। उनके पेट के ऊपर बैठकर खेलने लगा। थोड़ी देर तक खेलने के पश्चात. तीन बार पेट के ऊपर इधर से उधर पार किया और स्पष्ट कहा—"तुमको क्या हुआ है, वृथा परेशान हो।" वह चौंक कर कहने लगे, कहाँ हैं गुरुदेव! माता जी सिराहने बैठी थीं, उन्होंने सोचा, बुखार बहुत ज्यादा है, इसीलिए बड़बड़ाने लगे क्या। "हारे को हरि नाम" गुरुदेव का चरणामृत सारे शरीर में लगाया। पिता जी स्वस्थ व्यक्ति की तरह बोलने लगे, क्या कर रही हो? मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ। अभी मैंने गुरुदेव को बालक रूप में अपने पेट पर चढ़े देखा था। वही पूछ रहा हूँ कि वह कहाँ गये। माता जी ने थर्मामीटर लगाकर टेम्परेचर लिया, निन्यानवे था। उसी दिन से स्वस्थ होने लगे और दो-चार दिन में पूर्ण स्वस्थ होकर रोटी खाने लग गये।

प्रिन्सिपल साहब के बालक को गोद में लेकर प्राण-दान :—गुरुदेव की भक्तवत्सलता का कहाँ तक बखान करें। कहते हैं, प्रभु द्रोपदी की लाज बचाने के लिए नंगे पाँव दौड़ कर गये। हम लोगों ने तो क्या नहीं देखा। इसीलिए तो श्रीमद्भागवत में कहा है, सद्गुरु मेरा ही स्वरूप है। उसमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। जो मुझमें और तत्वज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ गुरु में भेद बुद्धि रखते हैं, वह नरकगामी होते हैं।

गोमती देवी जी प्रिन्सिपल साहब वृज बिहारी श्रीवास्तव की धर्मपत्नी रविवार के दिन आश्रम में आई हुई थीं। घर में चार वर्ष के बालक को नौकर के ऊपर छोड़ आई थीं। नौकर किसी काम से नीचे चला गया। बालक खेलता हुआ दो मंजिल के ऊपर से नीचे गिर गया। आश्रम में फौरन फोन आया। घर में माता पिता कोई नहीं था, केवल बच्चे ही बच्चे थे। उनकी अपनी मोटर खड़ी थी, दस मिनट में घर पहुँच गईं। घर पहुँचकर देखा, बच्चा

बिल्कुल ठीक था। माँ को देखते ही कूद कर गोद में चढ़ गया और बोला—"अम्माँ ! हम छत की मुड़ेर पर चढ़ रहे थे, पता नहीं कैसे पैर फिसल गया और हम गिर पड़े। जब हम गिरने लगे तो गुरुदेव भगवान ने हमें अपनी गोद में ले लिया और हमको,जमीन में सुलाकर चले गये।" गोमती देवी के नेत्रों से प्रभु की सर्वव्यापकता और दयालुता को समझकर अश्रु बहने लगा।

एक मास तक प्रभु गंगा जी की गुफा में रहे :—जब प्रभु की नौका सइदा गंज के पास पहुँची तो घने जंगलों को देखकर प्रभु ने कहा—"हम तो इसी जंगल में रहेंगे।" नाविकों ने बतलाया—"इस जंगल में गंगा के तट पर अन्दर ही अन्दर गुफा भी है। स्थान तो रमणीक है, लेकिन आपके निवास करने के योग्य नहीं है, क्योंकि इस स्थान में डाकुओं की बस्ती है।" प्रभु ने कहा—तुम लोग बड़े मूर्ख हो। डाकू में भी तो उसी प्रभु का निवास है।

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छा० उ०)

सब कुछ ब्रह्म ही है। ब्रह्माकार वृत्ति बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। जब तक ब्रह्माकार वृत्ति नहीं होती, उपासना पूर्ण नहीं कहलाती।

"भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णु:" (पुराण)

सब भूत और सब भुवन में सर्वरूप धारी भगवान हैं तो इन डाकुओं में भी तो वही हैं। हम सबसे प्रेम करेंगे तो सब हमसे करेंगे। जब हम किसी से वैर ही नहीं करेंगे तो हमसे कौन वैर कर सकता है। श्री गुरुदेव भगवान नौका से उतर कर गंगा के तट पर खड़े हो गये। थोड़ा बालू के टीले पर चढ़कर गुफा बनी थी, आप गुफा में पहुँच गये। यों तो गुफा स्वच्छ थी, भीतर ही भीतर तीन कमरे मिट्टी को काटकर बनाये गये थे। प्रभु अभी आकर खड़े ही हुये थे कि वहाँ का छोटा डाकू और दो उसके नौकर खड़े हो गये। कहने लगे—महाराज ! आज्ञा प्रदान करिये, क्या सेवा करें ? डाकू की खड़ी-खड़ी लम्बी-लम्बी तावदार मूँछ व मुख की आकृति से प्रभु समझ गये कि बड़ा ही सुन्दर स्वरूप धरकर प्रभु पधारे हैं। अत: उससे बोले—"भय्या ! मुख्य सेवा तो यही है कि यहाँ की सफाई करा दो।" वह बोला—सफाई आदि तो आवे

घंटे के अन्दर हो जाती है, पानी वाला पानी भर जायेगा, महाराज के प्रवचन के लिए ऊपर मंडप की व्यवस्था हो जायेगी। आप लोगों की सुरक्षा के लिए हमारे दो आदमी हर समय रहेंगे। हमारी भाभी रात्रि को यहीं पर सोया करेंगी। हम भी आपके सेवक हैं, अपना ही दास समझिये। इतने में दो व्यक्ति और आ गये, मूँछ वाले व्यक्ति को देखते ही वह लोग बड़ी नम्रता से उसको जयराम जी की किया और परस्पर कहने लगे—"स्वामी जी महाराज को कोई कष्ट नहीं होना चाहिये। हमारे बड़े पुण्य और भाग्य उदय हुये हैं जो नारायण महाप्रभु हम पापियों की गुफा में पधारे हैं।" इतने में नाविक ने कहा—"हजूर! गुरुदेव जी दोपहर को मट्ठा और रात्रि को सिर्फ चाय लेते हैं, अन्न, फल, भाजी कुछ भी नहीं खाते। बाजार का दूध भी नहीं लेते। अतः गय्या का भी प्रबन्ध होना चाहिये।" उन लोगों ने कहा—"बस आज्ञा की देर है, अभी-अभी सब कुछ प्रबन्ध हो जाता है।" ऐसा कहकर वह लोग सब चले गये। उन लोगों के जाने के पश्चात नौका वाले ने कहा—"गुरुदेव जी! यही मूँछ वाला बड़े डाकू का छोटा भाई है।" प्रभु ने नौका वाले को डांटा और कहा—"चुप रहो, अपनी नीच बुद्धि की बात हमारे सामने मत किया करो। जैसा चश्मा लगा लो वैसा संसार दिखाई पड़ेगा। दृष्टि शुभ बनानी चाहिये। संसार मंगलमय है, वह तो हमारा सेवक है। वह सेवा पूछने के लिए आया था और तुम उसे शत्रु बना रहे हो।"

सायंकाल तक यह सूचना हवा की तरह ग्राम में फैल गई। छोटे वाले का बड़ा भाई भी आया। सब शुभ दृष्टि लेकर आये, वहाँ के ग्राम मुखिया ने बहुत सेवा की। गुरुदेव जी नित्य प्रति उन लोगों को सत्संग देते, ज्ञान की बातें समझाते एवं कीर्तन करवाते थे। सब बहुत ही प्रसन्न थे। सब लोग गुरुदेव जी के चरण छूने की बड़ी इच्छा रखते थे, क्योंकि प्रभु नित्य किसी का स्पर्श नहीं करते। बहुत आग्रह करने पर प्रभु चरण छुआने के लिए मान गये।

ग्रामवासियों की विशुद्ध भक्ति :—ग्राम, निवासियों ने चरण स्पर्श करने की निश्चित तिथि पूछ कर नगर में चरण स्पर्श समारोह का ढिंढोरा

पिटवा दिया। हम लोगों को इस बात का कोई भी ज्ञान नहीं था। गुरुदेव जी की गुफा भागीरथी के एकान्त तट के एक टीले पर थी। उस ओर कोई स्नान करने भी नहीं आता था। जिस दिन चरण स्पर्श करने को रखा गया था प्रातः-काल से मेला जैसा लगा हुआ था। सब लोगों ने नवीन-नवीन बढ़िया-बढ़िया चमकीले वस्त्रों को धारण कर रखा था एवं स्नान करने के बाद स्वतः ही मंडप में आकर लाइन लगा कर बैठ गये थे। जब श्री प्रभु पूजा से निवृत्त होकर ऊपर सत्संग मंडप में आये, इन लोगों की शुद्ध श्रद्धा देखकर उनका दिल गदगद हो गया। हमने उन लोगों से पूछा, "आज क्या है? आप लोगों ने नये-नये वस्त्रों को पहन रखा है।" उनमें से एक ग्रामीण महिला ने कहा, "तुमका नाहीं मालुम? आज से बढ़कर कौन खुशी का उच्छव होई! महाप्रभू नारायण के गोड़ छुये के मिली, ई का कम भाग की बतिया है। बड़े-बड़े महात्मन् के देखा सुना लेकिन ऐसे मट्ठा पी के सीधे वैकुंठ से आने वाले महातमन् के नाहीं देखा। आज गोड़ धराई का दिन है, यही बरे हम पचन गंगा जी में नहाय धोय के नया कपड़ा पहिन के आये हैं।"

हम लोगों को भी इनकी विशुद्ध श्रद्धा को देख कर बड़ा ही आनन्द आया।

राम नाम से ग्रामीण बालकों का सुधार :—जिस टीले पर श्री गुरुदेव जी की गुफा थी, उसके सामने ही गंगा जी के तट का पानी काफी कम था। प्रातःकाल ग्रामीण बालक खेतों में काम करने के लिये पानी में हिल कर जाते थे और सायंकाल वापिस आते थे। जितना समय आने जाने में लगता था वह लोग गंदी-गंदी गाली बोलते हुये, समय गुजारते थे। पहले दिन तो कुछ समझ में नहीं आया कि यह लोग क्या बोल रहे हैं। दूसरे दिन पूछताछ करने पर पता लगा कि इन लोगों का अभ्यास ही ऐसा है कि गाली बकते हुये नदी के इस पार से उस पार जाते हैं। प्रभु का दिल बेचैन हो गया, उनको सुधारने के लिये। उनका अनमोल जीवन गाली बकने में ही समाप्त हो जायेगा, यही विचार उनके मस्तिष्क में घूमता रहा। सायंकाल बाजार से बच्चों को बाँटने के लिये मिठाइयाँ मँगवाईं तथा खिलौने मँगवाये।

वम्वई में यज्ञ के अवसर पर भक्तगण तथा पंडितों के साथ श्री गुरुदेव भगवान ।
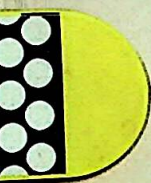
ग्राम-बालकों को एकत्रित करके खूब धर्म के जयकारे लगवाये, कीर्तन करवाया, मिठाइयाँ बाँटीं। दूसरे दिन प्रातःकाल बालक नदी पार करते हुये वही रात्रि को बुलवाये हुये धर्म के जयकारे लगाते जा रहे थे। अब श्री गुरुदेव जी नित्य उन लोगों को बुलवाते, उनको अच्छे-अच्छे उपदेश दिलाते, जयकारा लगवाते, प्रसाद देते। फलतः उनका गाली बकना बन्द हो गया।

भंडारा—चलते समय ग्राम-वासियों का भंडारा करवाया गया। समस्त सेवा उन्हीं असद् वृत्तिवालों की तरफ से की गई थी। बाद में तो वह लोग पूर्ण सद्वृत्ती के बन गये और सदा गुरु-सेवा में तत्पर रहते हैं।

राम नाम से राजरोग के मरीज ठीक हो गये

एक बार श्री गुरुदेव जी ने ग्यारह दिन के लिये जल में निवास किया था। जल के मध्य जिस स्थान में गुरुदेव जी का अनुष्ठान चल रहा था, उससे कुछ दूर पर नगर के एक किनारे पर टीबी हास्पिटल था। राज रोग से पीड़ित मरीज, जीवन से निराश होकर, नित्य सायंकाल, माँ गगा से आशीर्वाद लेने तथा उनकी शुद्ध वायु का सेवन करने आते थे। दो-चार दिन पश्चात् उन लोगों को पता लग गया कि कोई दिव्य पुरुष अगहन पूस की शीत में जल-प्रवास कर रहे हैं। आशीर्वाद की इच्छा से नित्य वह लोग आते और जब तक गुरुदेव जी का दर्शन नहीं हो जाता था बैठे रहते थे। ६ बजे सायंकाल दर्शन देने का नियम था। अनुष्ठान समाप्त हो जाने के पश्चात् श्री महाप्रभु ने उनसे पूछा—"आप लोगों ने ग्यारह दिन तक नित्य नियम से दर्शन किया है, अतः आप लोगों की क्या इच्छा है?' सभी मरीजों ने कहा, "हम लोग शीघ्र ही स्वस्थ होकर इस अस्पताल के नरक कुंड से छुटकारा पा जायें, वर्तमान में हमें यही आशीर्वाद चाहिये।" प्रभु की कृपा व आशीर्वाद के फलस्वरूप एक सप्ताह के पश्चात् उनके रोगों की परीक्षा की गई। सभी की रिपोर्ट पूर्ण स्वस्थ की आ गई और उन लोगों को अब उस रोग-जाल से छुट्टी मिल गयी।

सबने गुरुदेव का आकर दर्शन किया तथा कृतकृत्य होकर अपने-अपने घरों को चले गये।

महाप्रभु के नियम की अटलता—जिस समय प्रभु ने गंगा में प्रवास करने का नियम लिया था, उसी समय साथ-साथ में मन में किसी से न मिलने का भी विचार उत्पन्न हो गया था। प्रभु को समझना बड़ा ही दुस्तर है। स्वप्न में भी यदि वह किसी को कुछ देते देख लेते हैं तो जाग्रित में अवश्य देते हैं। जो मन में विचार उठ गया, वह संकल्प रूप बन जाता है। अनुष्ठान के दो ही चार दिन व्यतीत हुये थे कि कलकत्ते की एक सेठानी अपने परिवार के सहित गुरु-मंत्र लेने के लिये आ पहुँचीं। हम लोगों ने समझाया कि श्री गुरुदेव जी तो अनुष्ठान में हैं, वह किसी से वार्तालाप नहीं करते न अनुष्ठान के मध्य में मंत्र देंगे, अतः मंत्र तो मिलेगा नहीं, दूर से दर्शन कर सकती हैं। गुरु महाराज की सिद्धपीठ का दर्शन हो गया। ऐसे अवसर तो दुर्लभता से प्राप्त होते हैं। फिर कभी अवसर देखकर आप आ जाइयेगा एवं अपनी शुभेच्छा पूर्ण करियेगा, लेकिन वह इतनी अधिक मंत्र लेने के लिये लालायित थीं कि उन्होंने हम लोगों की कही हुई बातों पर ध्यान न देकर गंगा जी के किनारे मंत्र की इच्छा से चली गईं कि शायद उनको देखकर गुरुदेव जी मंत्र दे दें। आत्माराम पुरुष किसके अधीन रहते हैं ? वह तो लोक-कल्याण के लिये नर-तन धारण करके सांसारिक जीवों को मोह बन्धन से छुड़ाने के लिये स्वतंत्र रूप से रमण करते हैं।

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन"

वह एक अद्वैत ब्रह्म में स्थित रहता है, उसमें नानात्व किंचित भी नहीं है इसीलिये वह त्रिकालातीत अद्वितीय ब्रह्म में राजा रंक का लेश मात्र भी अन्तर नहीं रखते। उनको तो जो करना है सो करना है, जो कहना है सो कहना है।

दूर से ही सेठानी को देखकर प्रभु ने नौका के मल्लाह को दूसरी नाव पर दौड़ाया कि जाकर कह दो कि इस ओर न आवें। उस समय सेवा में कुँवरानी

साहब भद्री (रुक्मणी जी) थीं। उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र नाव वाले को तट की ओर भेजा। सेठानी जी ने अपना परिचय देते हुये एवं परिस्थिति बतलाते हुये कहा कि बार-बार घर से निकलना मुश्किल है, हम लोग कलकत्ते से कैसे आयेंगे? श्री गुरुदेव जी ने धर्म को निवाहते हुये कहलवाया कि आपके आने की पहले से कोई सूचना नहीं थी और आपके आने के पूर्व ही हम इस नियम को ले चुके हैं, अतः गुरु की आज्ञा मानकर संतोष के साथ परम खुशी से लौट जाना चाहिये। गुरु सब प्रकार से कल्याण करेगा। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी को कभी भी किसी कठिन परिस्थिति के आने पर भी नियम भंग करते नहीं देखा गया।

हमको कुछ वर्षों तक बहुत अधिक नजला रहता था। हर समय नाक से इतना पानी बहता था कि बड़े-बड़े तौलिये भीग जाते थे। चिकित्सकों ने कहा कि आप केवल एक बार फल खाकर रहती हैं, इससे नाक का पानी बहना बन्द नहीं हो सकता। इनको कम से कम फलाहार खाने की आज्ञा दे दीजिये। श्री गुरुदेव जी अपने इस दास को जानते थे कि गुरुदेव की आज्ञा देने पर तो कठिनता से डाक्टर को दिखलाया है, इस नश्वर शरीर के लिये नियम भंग करके भोजन कौन करेगा, अतः भगवान गुरुदेव ने कभी भी नियम तोड़ने की आज्ञा नहीं दी। अंत में उन्हीं की कृपा से रोग की निवृत्ति हुई।

जमुना बहन जी को एक बार कैन्सर का आपरेशन परिवार वालों ने जबरदस्ती करवाया था। श्री गुरुदेव जी ने पहले से ही कह दिया था कि कैन्सर नहीं है। लेकिन डाक्टर, संसारी जीव एवं साथ में धन ने मिलकर आपरेशन करा ही दिया। उस समय चिकित्सक ने एवं परिवार ने कलकत्ते से बार-बार भोजन करा देने को अथवा दो बार फल खिलाने की आज्ञा माँगी, लेकिन गुरुदेव जी ने यही कह दिया कि हम किसी के लिए हुये नियम को भंग नहीं करेंगे। शरीर की तो क्या है, यदि जीवन की अवधि शेष है तो वह कुछ न खाकर भी बचा रहेगा। एक मास में ही पूर्ण स्वस्थ होकर, गुरु सेवा में उपस्थित हो गईं।

जहाँ अपनी दृढ़ता, नियम और विश्वास है वहाँ आपत्ति आकर भी चली जाती है। सिंह के ऊपर शासन करने से वह भी लोमड़ी के सदृश सीधा बन जाता है। लोमड़ी से डरने पर लोमड़ी भी शेर बन जाती है। यह जीवन संग्राम-क्षेत्र है। शरीर के साथ अनुकूलता, प्रतिकूलता, योग, वियोग चलता ही रहेगा। ज्ञानी को प्रत्येक परिस्थिति में सम्यक् भाव रखना चाहिए। सम्यक् भाव रखने के कारण ही वह श्रामक कहलाता है। ब्रह्म भाव रखने से वह ब्राह्मण कहलाता है।

एक मास के लिए भूतों की नगरी में निवास :—वैशाख मास प्रारम्भ होने वाला था, भगवान गुरुदेव ने कहा—"हम तो एक मास तक गंगा के उस पार नाव में ही रहेंगे।" गुरुदेव जी, रुक्मणी जी तथा एक अन्य सेविका गुरुदेव जी के साथ नौका में रहते थे। यह सेवक, मुआ जी तथा जमुनाजी आश्रम के नित्य नियम को सम्पन्न करके दस बजे तक गुरुदेव जी के पास ही चले जाते थे। सायंकाल सूर्य अस्त होने तक लौट आते थे। यद्यपि कि जाते समय १ मील बालू की रेती पार करना महाकठिन था, ग्रीष्म की ऋतु, नंगे पैर, जलती बालू, छाता भी नहीं लगाते थे, लेकिन ठीक ही कहा है, प्रेम मनुष्य को अंधा बना देता है। दु:ख, सुख, गर्मी, सर्दी की अनुभूति ही नहीं होती। हमें आश्चर्य होता है स्मरण करके कि जिस समय गुरुदेव की शरण ग्रहण करी थी, घर से छिपकर एक वस्त्र पहने हुये आ गये थे। कैसे गीले वस्त्रों से बरसात कटी, माघ पूस की सर्दी एक सूती चादर से कट गई, न जुकाम न खांसी न बुखार न जरा सा बदन में दर्द होता था, न आलस्य आता था। धन्य है गुरुदेव की कृपा रूपी कवच।

श्री गुरुदेव जी बजरा में रहते थे। साथ में एक छोटी नाव और एक बड़ी लगी रहती थी। रुक्मणी जी ने ही वह नाव और बजरा गुरु सेवा में अर्पण किया था। किसी को यह नहीं मालूम था कि गंगाजी की इस पवित्र बालू में भूत लोग भी आते हैं। श्री गुरुदेव जी ने तो बजरे में ही विश्राम किया। रक्षा के हेतु दो सेवक भी रहते थे, क्योंकि वह स्थान एकदम एकांत में था। उन लोगों ने अपने रहने के लिए बालू के तट पर एक छोलदारी डाल रखी थी।

वारी-वारी से एक जने जागता था। पहले दिन ही ननकू नाम के मल्लाह ने अर्धरात्रि में वारह वजे देखा, वालू की रेत में वहुत सी लालटेन जल रही हैं तथा कुछ लोग परस्पर में वार्तालाप कर रहे हैं। पहले तो वह सोचने लगा शायद ग्राम के कोई लोग आये होंगे। अतः वह समझने की कोशिश करने लगा, लेकिन उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया। थोड़ी देर पश्चात लालटेनों की जगह में एक गैस का प्रकाश हो गया। अव उसका दिल कांपने लगा—"हे भगवान, यह क्या मुसीबत आ गई।" वह तो डर के मारे चुपचाप पड़ा रहा। दूसरे दिन उसने अपने दूसरे साथी रामसेवक से कहा—"रात को तो हमको वड़ा भ्रम हुआ था। आज तुम भी जागते रहना, देखें कल की बात ठीक थी या गलत। रामसेवक बड़े अक्खड़ किस्म का था, उसने कहा—"अरे जाओ, मूर्खों की सी वात करते हो। आज देखना हम जागेंगे, तुम सोना।" रामसेवक उसी अपनी कुटिया में लालटेन जला कर वैठा था। रात्रि को लगभग साढ़े वारह का समय रहा होगा, अपने आप विना हवा के लालटेन बुझ गई। फिर उसने दुवारा जलाने को चेष्टा की, लेकिन लालटेन जली ही नहीं। उसने गुरुदेव भगवान से मंत्र ले रखा था। अतः चुपचाप वैठकर मन्त्र का जाप करने लगा। थोड़ी देर में देखा कि वालू में उसकी कुटिया के पास कुछ लोग बैठे बात कर रहे हैं। वह बड़े उद्दंड तरह का व्यक्ति था। अतः सुनने की चेष्टा करने लगा। उनमें से एक वड़ी जोर से कुछ वोला, जो रामसेवक की समझ में नहीं आया। वीच वालुका में वड़ी जोर से आग लग गई जैसी मालूम पड़ी। थोड़ी देर में कुछ नहीं मालूम पड़ा। उसको नींद भी आ गई।

भूतों की मुक्ति :—प्रातःकाल उन लोगों ने श्री महाप्रभु से रात्रि की घटना का निवेदन किया जो दो दिन से हो रही थीं और कहा—"गुरुदेव, हम लोग तो अव वालू पर नहीं सोयेंगे। दो दिन हो गये, रात्रि भर नये-नये कौतुक होते हैं, भूतों की जमात देखकर हम लोगों को बड़ा डर लगता है।" श्री गुरुदेव ने कहा—"मूर्ख ! डरने की क्या वात है ? वह लोग भी तो अपनी ही आत्मा हैं। जिन्दों से डरा नहीं जाता, मरे लोगों से क्या डर ? आज देखना वह लोग नहीं आयेंगे, आयेंगे भी तो चले जायेंगे।" मध्यान्ह में गीता का पाठ

वालुका पर कराकर हवन करवा दिया। रात्रि को कीर्तन रख दिया। अर्द्ध-रात्रि तक कीर्तन होता रहा। अपने कर-कमलों से वालुका पर गंगा-जल छिड़क दिया। प्रभु ने सब भक्तों से कहा—"हमारी भूली भटकी सभी आत्माओं को मुक्ति मिले।" दूसरे दिन से किसी भी रात्रि को ऐसी घटना नहीं घटी।

गया में प्रेत-मुक्ति :—एक बार श्री गुरुदेव जी १५ दिन के लिए गया जी पधारे थे। मन्दिर में ठहरे हुये थे। मन्दिर बिल्कुल एकांत और जंगल में था। पूजा पाठ करते शयन करने को ग्यारह तो योंही बज जाते थे। ज्यों रात्रि बारह बजे तो ऐसा प्रतीत हो, किसी ने आकर हिला कर उठा दिया। फिर ३ बजे तक बिल्कुल नींद न आये। इसी प्रकार नित्य की क्रिया हो गई। कभी ऐसा प्रतीत हो जैसे कोई बात कर रहा है। चारों ओर देखा जाय तो कुछ नहीं। गुरुदेव जी की कुटी के साथ दूसरा कमरा था। उसमें यह सेवक सोया करता था। रात्रि १ बजे हमें भी दिखाई पड़ा कि सामने से कोई जा रहा है। स्वास्थ्य दोनों का ही गड़बड़ हो गया। एक दिन रात्रि को ठीक बारह बजे चर्म जलने की गंध आने लगी। गुरुदेव जी ने चारों ओर दिखलाया, कुछ भी नहीं था। एक दिन दो दाँत मट्ठे के पास रखे दिखाई दिये। तब गुरुदेव जी ने ध्यान दिया कि शायद यहाँ कोई ऐसी प्रेतात्मा है जिसका उद्धार नहीं हुआ और वह उद्धार चाहती है।

प्रभु ने वहाँ के पुजारी और अन्य मन्दिर सम्बन्धित लोगों से पूछा कि यहाँ पर कभी कुछ ऐसी घटना घटी है क्या, जिससे कोई जीवात्मा अधोगति को प्राप्त हुआ हैं और वह शान्ति चाहता है। उन लोगों ने बतलाया कि आप तो अन्तर्यामी हैं, यहाँ पर कभी हवन हुआ ही नहीं और कई ऐसी घटना भी घटी हैं जिसके फलस्वरूप यहाँ पर अशान्त जीवात्मा मंडराती हैं। श्री गुरुदेव जी ने वहाँ पर हवन करवाया। श्री सत्य नारायण भगवान की कथा, अखंड कीर्तन एवं गीता का पाठ आदि करवाया। उसके पश्चात् रात्रि की निद्रा भी आने लगी और समस्त उपद्रव भी शान्त हो गये।

रामेश्वर-यात्रा में प्रेत-मुक्ति :—जब श्री गुरुदेव जी दक्षिण की यात्रा में थे तब भी इसी प्रकार की घटना घटी थी। प्रेतात्मा ने स्पष्ट श्री गुरुदेव जी से कहा कि आप अनेकों का उद्धार करते हैं, फिर हमारा क्यों नहीं कष्ट हरते। आप जैसे महापुरुषों की कृपा-प्रसाद से हम लोगों का उद्धार नहीं होगा तो कौन करेगा। प्रातःकाल होते ही उस प्रेतात्मा के नाम से आश्रम की ब्रह्मचारिणी साधिका के द्वारा विधिवत अखंड गीता का पाठ करवाया। तत्पश्चात् वह प्रेतात्मा कभी नहीं दिखलाई पड़ी।

एक बार सत्संग में किसी भक्त ने श्री महाप्रभु से पूछा—"महाराज! आप जैसे महापुरुषों के समीप प्रेतात्मा कैसे आती है! उन लोगों को तो आप जैसे महान आत्माओं के पास नहीं आना चाहिये।" श्री गुरुदेव जी ने कहा—"भिखमंगा जिसको धन सम्पन्न देखता है उसी से विशेष वस्तु की आकांक्षा रख कर उसके पास जाता है। भिखमंगा भीखमंगे के पास नहीं जाता। धुंधकारी गोकर्ण के पास ही मुक्ति की इच्छा से गये। इसी प्रकार प्रेतात्मा क्या है, पहले इसी तत्व को समझना चाहिये। संसार की विषय आसक्ति में फंसे हुये मन वालों की असमय में जो अधोगति हो जाती है उन्हीं की जीवात्मा वासनायुक्त होकर इधर-उधर भटकती है, लेकिन उनको शान्ति नहीं मिलती। जब कोई ब्रह्मज्ञ, आत्मज्ञ संतो को वह लोग देखते हैं तब अपनी मुक्ति की इच्छा से उनके समीप जाते हैं। बन्दर स्वभाव वाला उछल-कूद ही करेगा। वासना-युक्त मोहासक्त अज्ञानी प्रेतात्मा कहाँ से नम्रता जानेगा जो शान्ति से जाकर याचना करेगा। जैसी उनकी बुद्धि होती है, उसी प्रकार से वह अपनी मुक्ति की मांग करते हैं। महान पुरुष उदार, दयालु एवं कल्याणकारी होते हैं, इसीलिये वह प्रत्येक में अपने स्वरूप का अनुभव करके सबको सन्तुष्ट करते हैं। इस प्रकार की अनेक गाथायें गीता माहात्म्य में आती हैं।"

श्री गुरुदेव जी की ग्यारह वर्षीय मौन साधना :—ग्यारह वर्ष तक श्री महाप्रभु मौन रहे। केवल भगवान के नामों का उच्चारण करते थे। लिखते भी नहीं थे। सांकेतिक भाषा थी, सीता राम, गोविन्द गोपाल, राधे-

श्याम, हरी ओम, भगवान। इन्हीं नामों के द्वारा आश्रम का सम्पूर्ण कार्य संचालन होता था। शरणागत भक्त जन इन भगवान के नामों के द्वारा ही प्रभु के समस्त आशयों को समझ जाते थे। इसी मौन साधना के समय में ही कई यज्ञ सम्पादित किये गये, लेकिन प्रभु ने सब पूर्ण किया, ग्यारह वर्ष पश्चात मौन अनुष्ठान की समाप्ति हुई। जिस दिन मुख्य मौन उत्सव समारोह था उस दिन भक्तों में विशेष उमंग और उत्साह था। सुदूर नगरों के भक्तगण भी उपस्थित हुये थे। भक्तों की खुशी का वारापार नहीं था। गरीब, अनाथ, दीनों को वस्त्र अन्न और द्रव्य बँटवाया गया। भगवान गुरु की पूजा बड़े धूम-धाम से महाप्रभु ने करी एवं सार्वजनिक भंडारा हुआ।

पूजा की झांकी अद्भुत थी—भगवान गुरुदेव की समाधि के प्रांगण में बहुत ऊँचा मंच भक्तों ने स्वयं बनाया था। उसको पुष्पक विमान के सदृश सुसज्जित किया गया था। श्री महाप्रभु जी को उसी पर विराजित करके सर्वप्रथम समस्त भक्तों ने बड़े ही आह्लाद के साथ वेद मंत्रों के द्वारा पूजन किया। बैंड एवं शहनाई का प्रबन्ध था। वृक्षों पर कागज की कंडीलो में पुष्प भरे हुये थे। बीच में वह झरते जा रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश से पुष्प-वृष्टि हो रही हो। चारों ओर जयजयकार की गुंजार थी।

आश्रम-वासियों ने प्रार्थना गाई—

मेरे सुहृदय पावन प्रभो, तुम्हें बारम्वार प्रणाम हो।
बने रहो तुम हम सबों के,
नित्य जग कल्याण हो॥
आज कैसी सुन्दर सुख घड़ी है,
मन में भरा अति मोद है।
युग-युग जियो तुम दीनबन्धु,
हमें यही वरदान हो॥ मेरे॥
साथ बीते हर घड़ी,
जग की कमी न याद हो।

वर्षा सदा तव ज्ञान की हो,
जीवन भरा अनुराग हो ।। मेरे ।।
रहे सदा चरणों में मस्तक,
विरदावली तव हस्त हो ।।
नारायण मुख में नाम पल-पल आपका गुण गान हो ।

श्री गुरुदेव जी ने प्रथम शब्द बोला—

भगवान गुरुदेव की जय !
त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

आज आप समस्त भक्तों को परम प्रसन्नता हो रही है । सब खुशियाँ मना रहे हैं, इसीलिये पहले सब हँसो । सब हँसने लगते हैं ।

पुनः महाप्रभु ने कहा—जोरों से हँसो । सब जोरों से हँसने लग जाते हैं ।

अब आपका प्रवचन प्रारम्भ हुआ

यह अनमोल मानव जीवन पुण्यों की अनेक कमाई और ईश्वर की अहेतुकी कृपा के फलस्वरूप मेरी समस्त आत्माओं को मिला है । यह जीवन कर्मों का पुंज है । जिस प्रकार आत्मा शाश्वत है उसी प्रकार यह शरीर तब तक शाश्वत है, जब तक कर्म पुंज का क्षय नहीं होता । कर्मानुसार नाना योनियाँ एक के पश्चात् एक मिलती ही जायेंगी । इसीलिये आज आनन्द के दिन हम यही कहते हैं कि आप लोग सदैव आनन्द मग्न रहो, पूर्ण शान्त रहो । क्योंकि तुम तो परमात्मा हो, परम तत्व हो, उस परम तत्व को तुम लोगों को नहीं भूलना चाहिये, उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये । वह तत्व,

तत्वज्ञानी गुरु ही दे सकता है, बतला सकता है। उस तत्वज्ञानी गुरु के ज्ञान के प्रकाश में अपने निज स्वरूप को पहचानने की चेष्टा करना चाहिये। यह कार्य एक दिन की चेष्टा से नहीं होगा, अनवरत चेष्टा करते रहना चाहिये। आज के शुभ एवं पावन दिवस के दिन हम अपने भगवान गुरुदेव से बार-बार प्रार्थना करते हैं कि सबको विशुद्ध बुद्धि प्रदान करें, अनात्म वृत्ति को ब्रह्म वृत्ति की ओर मोड़ दें। सबको अपने निज स्वरूप का साक्षात्कार हो—

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री ज्ञान महायज्ञ :—दो बार महाप्रभु के कर-कमलों द्वारा किया गया। प्रथम ज्ञान महायज्ञ १९६७ में त्रिवेणी क्षेत्र में इकतीस दिन का हुआ था, जिसमें प्रातःकाल १०८ विद्वान पंडितों द्वारा भागवत सप्ताह का पारायण चलता था। सायंकाल श्रीमद्भागवत पर अनुष्ठानिक विद्वान के द्वारा प्रवचन होता था। अंतिम सप्ताह में हवन का भी आयोजन था। समाप्ति में एक विशाल जलूस निकला, लोग बतलाते थे कि वैसा जलूस कभी भी कहीं भी नहीं निकला। अखाड़ों की स्याहियाँ कुम्भ के पर्व पर निकलती हैं, लेकिन वह भी कई अखाड़े मिलकर निकालते हैं, तब भी ऐसी शोभायुक्त नहीं होतीं। जलूस में भगवान के सजे हुये स्वरूप भी हाथी घोड़ों पर सुशोभित थे। एक ट्रक को विमान के सदृश सजाकर उसमें करोड़ों लाल स्याही से लिखित राम-राम के ढेर थे। कई कीर्तन मंडलियाँ साथ में राम-नाम कीर्तन करने वाली थीं। एक हजार लाल पीले हरे झंडों को लिये हुये भक्तगण थे। सभी ने त्रिवेणी मय्या की परिक्रमा की। यह यात्रा अद्भुत थी। गुरुदेव महाप्रभु का सदा से यही विचार रहता है कि किसी प्रकार से भी जनता सद्कर्मों की ओर प्रवृत्त हो। दान धर्म पुण्य करे, इसी से जीवों का कल्याण होता है।

यज्ञदान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ गीता १८।५

ये यज्ञ दान और तपरूप वैदिक कर्म चित्त शुद्धि तथा मोक्ष के हेतु होने के कारण कर्तृत्वाभिनिवेश शून्य होकर फल का त्याग करके ईश्वरार्पण बुद्धि से

गुरु के आदेशानुसार करने से अवश्य करणीय हैं। भगवान कहते हैं, यह मुझ सर्वलोक महेश्वर का निश्चित किया हुआ उत्कृष्टतम मत है।

महाप्रभु कहते हैं कि शास्त्र द्वारा नियत कर्मों का त्याग करना उचित नहीं है, क्योंकि अज्ञानी अथवा रागी पुरुषों के लिए नियत कर्म सत्व शुद्धि तथा मोक्ष का कारण है। इसीलिये अज्ञान से ग्रसित जीवों के द्वारा शुभ कर्मों का त्याग तामस कहा जाता है।

'न सुखाल्लभ्यते सुखम्'

साधन से ही साध्य की प्राप्ति होती है। सुख से सुख की प्राप्ति नहीं होती। जो सम्पूर्ण कर्मों को दुःख रूप समझकर आलस्य के कारण, परिश्रम करने के क्लेश के भय से सद्कर्मों का त्याग कर देता है वह त्याग राजस है, उसके त्याग से सुख नहीं प्राप्त होता। पूर्व जन्म का संचित पुण्य समाप्त होता जायेगा। आगे कष्ट ही कष्ट शेष भोगना बचेगा।

श्रीमद्‌भगवतगीता में भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है—

"न हि कश्चित्क्षणपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत्"

(गीता ३।५)

कोई भी पुरुष क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। इसलिए जो आत्मज्ञान-शून्य हैं, उनको तो सत्य प्राप्ति के लिए अवश्य ही गुरु के आदेशानुसार कर्म करना चाहिये। यों भी जब तक शरीर के साथ कर्तव्य का भान है, आत्मा में निष्क्रियत्व, निर्विकार्यत्व एवं असंगत्व नहीं प्राप्त होता तब तक कर्म करना अनिवार्य है।

सम्यग्ज्ञाननिष्ठा से युक्त कर्म होना चाहिये। उसका ज्ञान वही गुरु दे सकता है जो स्वयं मेघावी एवं स्थितप्रज्ञ हो जाता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

मु० उ० २।२।८

भगवान गुरुदेव अपने उपदेश में यह बतलाते हैं कि मानव जीवन कर्मो का बंधन मत समझो। यह जीवन अनमोल है। तुम लोगों को तो—

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः"

(ई० उ०)

इस लोक में कर्म करते हुये सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। शास्त्र कहता है—

सत्यं वद। धर्मं चर। (तै० उ०)

सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्॥

सत्य बोलो, धर्म करो। सत्य से प्रमाद नहीं करना चाहिये, धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। अर्थात् ऐसा कभी मत सोचो कि सत्य बोलने से क्या होगा? सत्याचरण करने से क्या होता है? मनमौजी आचरण कब तक जीवों का साथ दे सकता है। एक दिन पाप भर कर ऐसा समय आ जायेगा जब कि असद् आचरण तुमको कष्ट में डाल देगा। उस समय धर्म ही साथ देता है। अतः धर्म की उपेक्षा करना महामूर्खता है। धर्म के द्वारा पाप का नाश होता है। धर्म में ही सब प्रतिष्ठित हैं। धर्म सर्वश्रेष्ठ है। धर्म न होगा तो समाज ढह जायेगा। लोग एक दूसरों को जीवित नहीं रहने देंगे। समाज में अशान्ति और कलह की वृद्धि हो जायेगी। कौरवों के द्वारा धर्म का त्याग हो जाने के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ। अन्त में धर्म पक्ष की विजय हुई। राजसत्ता धर्मराज युधिष्ठिर के ही हाथ में आई, लेकिन एक दुर्बुद्धि दुर्योधन के कारण कितनी अशान्ति तथा कलह रही, अंत में युद्ध हुआ। ज्ञान महायज्ञ करने का मुख्य आशय यही था कि किसी न किसी प्रकार सद्पुरुष की प्रेरणा हो तथा जीव यथार्थ सद्मार्ग की ओर प्रवृत्त हो।

१९७२ में द्वितीय ज्ञान महायज्ञ के आयोजन में श्री गुरुदेव जी ने शुद्ध अद्वैत ज्ञान का प्रवचन एवं कुछ हवन की प्रक्रिया वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा करवाई थी। प्रवचन करते हुये प्रभु ने बतलाया—यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। उनका वेदों में बहुत ही विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। वेदों में जो बाह्य क्रिया प्रधान यज्ञ बतलाये गये हैं, उनके करने का फल स्वर्ग-सुख है। इन यज्ञों में केवल जड़ द्रव्यों का हवन होता है। इसलिये जिस प्रकार सूर्य के समक्ष तारागणों का तेज मन्द पड़ जाता है, उसी प्रकार ज्ञान यज्ञ के सामने

द्रव्य यज्ञ फीके पड़ जाते हैं। क्योंकि ज्ञान यज्ञ शाश्वत आत्मपद प्रदान करता है।

श्रीमद्भगवतगीता के चौथे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञ: परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थं ज्ञाने परिसमाप्यते॥

ज्ञान यज्ञ के द्वारा जिज्ञासु को परमात्म सुख का गुप्त भंडार प्राप्त हो जाता है। योगी ज्ञान के गुप्त भंडार को सदा अपने हृदय रूपी प्रांगण में धरोहर के रूप में रखे रहता है। उस गुप्त भंडार को अंत.करण की शुद्धि, सत्संग तथा निरन्तर स्वाध्याय के द्वारा बढ़ाता रहता है। इस ज्ञान में परम शक्ति निहित है। यह जीवों के जीवत्व को जड़ से नष्ट कर देता है। कर्मों की आसक्ति से छुड़ाकर, निस्पृह कर्म में परोपकार हेतु जो किया जाता है, प्रवृत्त कर देता है। सच्चे तत्वज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर वाद-विवाद की बुद्धि नष्ट हो जाती है। इन्द्रियों में जो सदा विषय-सेवन की इच्छा बनी रहती है, वह ज्ञान के द्वारा छूट जाती है। सच्चा तत्वज्ञान सच्चे गुरु के द्वारा ही प्राप्त होता है। यदि अच्छी तरह विचार किया जाय तो अनुभव में आ जाता है कि ज्ञान से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है। जिस महान तत्व के द्वारा मन का मनत्व ही नष्ट हो जाता है, शान्ति भरे गागर की प्राप्ति हो जाती है, फिर शेष ढूंढ़ना ही क्या बाकी रह जाता है।

मानव का मन ही अशान्ति की जड़ है। मन ही संसार के चक्र में घुमाता रहता है। अत: जिसके मन में ज्ञान-प्राप्ति की लालसा न हो उसका जीना भी बन्दर के जीने के सदृश है। क्योंकि बन्दर सदा नाचता ही रहता है। वह स्थिर होकर बैठ नहीं सकता। इसी प्रकार जिसका मन चंचल है, ज्ञान का जिज्ञासु नहीं है, वह अनेकों जन्म में भटकता रहता है और जब तक जगत में जीवित रहता है तब तक वह भटकता ही रहता है। अत: जीते हुये भी इच्छा और संशय अग्नि में भस्म होता रहता है। संशयात्मक बुद्धि के प्राणी का न ऐहिक न पारलौकिक ही बन पाता है। जिस प्रकार जन्मान्ध को रात और

दिन का भेद नहीं पता चल पाता , इसी प्रकार ज्ञानहीन संशयात्मक बुद्धि वाले अपने भले और बुरे का भेद न समझ कर मनमानी प्रक्रिया करते हुये दिखाई पड़ते हैं । जिसके फलस्वरूप ऐसे प्राणियों को जीवन में कभी भी विश्राम नहीं प्राप्त होता ।

सच्चा ज्ञान वही है जिसके द्वारा आत्मा और परमात्मा का एकीकरण हो जाय ।

ज्ञान ज्ञान सब कोई कहे, ज्ञान न चीन्हे कोय ।
जिस ज्ञान से मैं एक हूँ, ज्ञान कहावे सोय ।।

सच्चा ज्ञानी वही है, जो हाथ से निकल जाने वाली वस्तु का स्मरण करके दुःखी नहीं होता, जो न प्राप्त होने वाली वस्तु के लिए लालायित होता है, जिसका मन मेरु पर्वत के समान निश्चल रहता है, मेरे और तेरे की भावनायें नष्ट हो जाती हैं, वही ज्ञानी कहलाने के योग्य होता है ।

प्रभु के मुखारविन्द की एक-एक वाणी भक्तों के हृदय का स्पर्श करती जा रही थी । सभी सच्चे आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन कर रहे थे, क्योंकि जैसा प्रभु कहते जा रहे थे, भक्त लोग वैसा ही अनुभव करते जा रहे थे । प्रभु का ज्ञान केवल वचन का ही नहीं था, वह तो जो कुछ कहते जा रहे थे वह स्वयं उसी स्वरूप में ढले हुये थे । जो त्यागी होता है, वह अगर त्याग की बात कहता है तो उसका वचन हृदय में लगता जाता है । जो कहता है और करता कुछ नहीं, उसके वचन हृदय को स्पर्श नहीं करते ।

श्री भगवती महायज्ञ १९६८ में हुआ था । आश्रम में जो अष्टभुजी मनोकामना सिद्ध भगवती का मन्दिर है, उसी समय स्थापित किया गया था । चौंसठ फिट का चौकोण यज्ञ-मंडप भी उसी यज्ञ के लिए निर्मित किया गया था जो अभी तक वर्तमान है । यह पक्की यज्ञशाला है । बहुत से वेदज्ञ विद्वान इस यज्ञ-मंडप का दर्शन करने आते हैं । इतना विशाल पक्का यज्ञ-मंडप कहीं भी नहीं है । इस महायज्ञ में अन्न-दान की विशेष महत्ता थी । यह इकतीस दिवसीय यज्ञ था । १०८ पंडितों का वरण था । शीतकाल का मौसम था ।

अतः गरम वस्त्रों का भी वितरण किया गया था। यज्ञ का कार्यक्रम प्रातः-काल ६ वजे से ही प्रारम्भ हो जाता था।

प्रातःकाल ६ वजे से दुर्गास्तोत्र का सामूहिक पाठ होता था। ७ वजे वेद-मन्त्रों के द्वारा यज्ञ पुरुष की तथा अन्य समस्त देवताओं की पूजा होती थी। तत्पश्चात् ८ वजे से १ वजे तक हवन होता था। सायंकाल २ वजे से ही संतों के प्रवचन होते थे। तीन दिन तक वटुक पाठ का कार्यक्रम, तीन दिन हिन्दू धर्म सम्मेलन, तीन दिन विद्वत सम्मेलन, तीन दिन वाल सम्मेलन, तीन दिन मानस सम्मेलन, तीन दिन महिला सम्मेलन, इस प्रकार का विशेप कार्य-क्रम वीच-वीच में होता रहता था। रात्रि को भक्तों में भक्ति की लीलाओं के द्वारा ही कुछ जागरण हो, इसीलिए एक मास तक नित्य चैतन्य महाप्रभु की लीला होती रही। इस प्रकार से वहुत ही सुन्दर रूप से यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। प्रयाग राज के आस-पास तथा अन्य नगरों के वहुत से आये हुये भक्त-गण आश्रम में ही निवास किये थे। सौ वीघे के क्षेत्रफल में वसे हुये आश्रम को देखने से ऐसा प्रतीत होता था मानो त्रिवेणी क्षेत्र का मेला लगा हो।

श्री महाप्रभु के इक्कीस वर्षीय अनुष्ठान की पूर्णाहुति समारोह सन् १९६९ :—यों तो श्री नारायण महाप्रभु ने १९४७ में ही सन्यास ले लिया था। इक्कीस वाइस वर्ष की अल्प आयु में आपने संसार के समस्त सुख को तिलाञ्जलि देकर, प्रभु की शरणागति ग्रहण कर ली थी। वाइस वर्ष तक पूर्ण तापसी जीवन व्यतीत किया। आपके तापसी जीवन का दर्शन करके पाषाणवत हृदय के व्यक्ति भी जल की दो बूंद गिरा ही देते थे, लेकिन साथ-साथ आपका विलक्षण दिव्य प्रेमोन्माद, अलौकिक कांति की महान प्रभा को देखकर सभी आश्चर्य-चकित हो जाते थे। आपकी इन्द्रियाँ, मन, वुद्धि एवं चित्त की अन्तर्मुखी अवस्था को देखकर एवं उनके दर्शन मात्र से अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती थी। यह तो आपके प्रारम्भ की साधना अवस्था की बात है। जब तक आपके अनुष्ठान का विसर्जन नहीं हुआ, तब तक आपने कहीं वाहर चरण नहीं धरा। वनवासी राम के सदृश, प्रयाग राज

जिले के अन्तर्गत ही जंगलों एवं कन्दराओं में अथवा नौका में ही कभी-कभी आश्रम छोड़ कर जाते थे, अन्यत्र नगर के बाहर, काली सड़क, मोटर, रेल या हवाई जहाज आदि की सवारी बिल्कुल ही नहीं करते थे।

जनता की पुकार, गुरु की प्रेरणा, भक्तों के संस्कार से इन नियमों को बाइसवें वर्ष प्रभु ने पूर्ण कर दिया। पूर्णाहुति के उपलक्ष में विशेष यज्ञ सम्पन्न हुआ एवं भक्तों के द्वारा बड़ा भारी समारोह मनाया गया था। श्री गुरुदेव जी का भक्तों ने षोडषोपचार से पूजन किया। तोरण पताकाओं से सुसज्जित मन्दिर में श्री गुरुदेव जी विराजमान थे। पीत वस्त्रों को धारण कराया गया। इक्कीस वर्षों तक जिन अनेक नियमों का प्रतिबन्ध लगा रखा था वह सभी खुल गये।

श्री गुरुदेव जी की प्रथम तीर्थ-यात्रा ६ मार्च १९६९ :—

आज तक श्री गुरुदेव जी प्रयाग क्षेत्र से कहीं भी बाहर नहीं गये थे। नवम्बर में श्री महाप्रभु जी का अनुष्ठान विसर्जन हुआ था। अनुष्ठान समाप्त होने के पश्चात् ही चारों ओर से भक्तों का बहुत अधिक आग्रह होने लगा कि अब प्रभु को बाहर के भक्तों का भी उद्धार करना चाहिये। सबकी आत्मा की प्रार्थना एवं श्री प्रभु की स्वयं तीर्थ-यात्रा जाने की जिज्ञासा की प्रेरणा से होली के पश्चात् ही प्रभु ने वाराणसी पधारने का निश्चय कर ही लिया। प्रयाग-राज के भक्तों में खलबली मच गई। सभी उदास हो गये, प्रभु से अनुनय-विनय भी उन लोगों ने किया। लेकिन प्रभु ने कहा—"हमारे चारों ओर अमृत ही अमृत बरस रहा है, इस अमृत का पान सभी को कराना है। हमको तो कुछ नहीं, जहाँ बैठेंगे वहाँ अमृत ही हिलोरें मारता है, सर्वत्र अमृत की सत्ता लहरा रही है। लेकिन यह अमृत एक देशीय नहीं है। सभी को इसका मधुमय रस मिलना चाहिये, क्योंकि हम सभी के हैं। हम इतने वर्षों तक प्रयाग राज में रहे, तुम लोगों ने अपने संस्कारानुसार आनन्द लूटा। अब तुम लोगों को खुशी के साथ हमको विदा करना चाहिये, दुःख नहीं मानना चाहिये, न उदास ही होना चाहिये। गुरुदेव ज्ञानी हैं, सामर्थ्यवान हैं, सब प्रकार से

मद्रास के भक्तों द्वारा पूजन की अनुपम झाँकी

भक्तों को समझाया। भक्तों का हृदय क्या मानता? सभी में उदासी छा गयी, लेकिन जिस दिन गुरुदेव जी के जाने का दिन था, उस दिन भक्तों ने अवर्णनीय शोभा यात्रा की तैयारी करी थी।

सर्वप्रथम गुरुदेव जी की वाराणसी यात्रा :—अनेक रथ, घोड़े, हाथी, बैंड, कीर्तन मंडली आदि की सजावट आश्रम से दुर्गा मन्दिर तक थी। झंडे लिए हुये सैकड़ों बच्चे जयकारा लगा रहे थे। प्रभु जी ने सर्वप्रथम, परम हंस, तत्वज्ञ, ब्रह्म स्वरूप, ब्रह्मलीन गुरुदेव श्री केशवानन्द महाराज की सिद्ध समाधि की पूजा करी, तत्पश्चात् शंकर पार्वती, हनुमान जी, गंगा जी, दुर्गा मय्या आदि के जितने मन्दिर हैं, सबका विधिवत पूजन किया। पंडित वर्ग वेद-ध्वनि कर रहे थे, भक्तगण अश्रुओं की गंगा बहा रहे थे। प्रभु उन लोगों को हँस-हँस कर समझा रहे थे। कोई मोटर पकड़े खड़ा था, कोई मोटर रोक रहा था। आश्रम से भरद्वाज के मन्दिर तक आने में छह घंटे लग गये। भरद्वाज मन्दिर में उतर कर भरद्वाज मुनि का दर्शन एवं पूजन किया। तत्पश्चात जार्जटाऊन तक मोटर कुछ तेज गति से गई। फिर जार्जटाऊन में, सुरेन्द्र नारायण एडवोकेट के घर में भक्तों की अपार भीड़ खड़ी थी। भव्य स्वागत की तैयारी थी, वहाँ पर स्वागत हुआ। झूंसी में भक्त लोग भीड़ लगाकर खड़े थे। चारों ओर नभ-वृष्टि के स्थान पर नेत्र-वृष्टि हो रही थी। इसके पश्चात् कुछ भक्त हंडिया में जमघट लगाकर स्वागत के लिये बैठे हुये थे। इस प्रकार से २ घटे में प्रयाग से वाराणसी पहुँचने वाली मोटर दस घंटे में पहुँची।

यह सेवक और साथ में अन्य चार गुरु बहनें एक सप्ताह पूर्व ही वाराणसी श्री गुरुदेव जी का प्रबन्ध करने के लिये पहुँच गये थे। क्योंकि प्रभु न तो किसी गृहस्थ के घर में ही निवास करते हैं, न किसी के रहे हुये कमरों में। अन्न फल का सेवन करते नहीं, निवास-स्थान में ही गाय का दूध दुहे जाने पर, दिन में उसी दूध के दही का मट्ठा एवं रात्रि को चाय लेते हैं। आज के युग में गायों की समस्या, कुटिया बनाने की समस्या, खुला हुआ स्थान, बाग-बगीचों

की समस्या ? मेरे भगवान गुरुदेव का ऐसा असीम अनुग्रह कि उनकी लगाई हुई सेवा वह स्वयं पूर्ण कर लेते हैं ।

इतनी समस्या होने पर भी प्रभु को योग क्षेम करने की ऐसी आदत पड़ गई है कि भक्त के समक्ष समस्या आई नहीं कि तत्काल निराकरण हो जाता है । हम लोग वाराणसी पहुँच गये ।अन्नपूर्णा मिल के बगीचे का नाम सुना था, लेकिन कहाँ पर है, यह कुछ नहीं मालूम था । वाराणसी में एक अपने भक्त थे, उनको पहुँचने की सूचना दे दी थी । वह अपनी मोटर लेकर स्टेशन पर आ गये थे । उन्होंने भी बहुत बड़ा खुला स्थान ढूँढ़ा था, लेकिन वह श्री गुरुदेव जी के अनुकूल का नहीं था, अतः ढूंढ़ते-ढाँढ़ते हम लोग विश्वविद्यालय के भी आगे अन्नपूर्णा मिल के बगीचे में सायंकाल ६ बजे पहुँचे । २ बजे ट्रेन वाराणसी स्टेशन पर पहुँच गयी थी । ४ घंटे केवल स्थान खोजने में ही लग गया । गुरुदेव की परम कृपा हुई, स्थान अनुकूल था ।

भगवान कितने भक्तवत्सल हैं, यह कहा नहीं जा सकता और सेठ जी तो अपने मिल के भवन में रहते थे, लेकिन सेठानी जी को १५ दिन पूर्व ही बीमार बनाकर बगीचे में रख दिया था । हम लोग सेठानी जी से मिले । सब बातें बतलायीं । सज्जन धर्मात्मा थीं, अवस्था तो बहुत अल्प थी लेकिन बुद्धि विशेष सत्संगी जैसी थी । सेठ जी का नाम आत्माराम ढांढनियाँ था । सरल सज्जन आत्माराम ही जैसे थे । पूर्व का कोई भी परिचय नहीं था, लेकिन निसन्देह पूर्व जन्म का परिचय था । दो आत्माओं का एकीकरण तभी होता है जब पूर्व जन्म का संयोग होता है ।

श्री गुरुदेव जी की कुटिया, गाय एवं प्रवचन के स्थान का प्रबन्ध हो गया । इधर श्री गुरुदेव जी के भव्य स्वागत का ५ बजे का प्रबन्ध किया गया था । श्री अनन्त शास्त्री फड़के, आचार्य वामदेव मिश्र एवं अन्य पंडित वर्ग, तथा सैकड़ों दर्शकों की भीड़ लगी थी । रात्रि दस बजे तक श्री गुरुदेव जी के लिये दर्शनार्थ भक्तों ने प्रतीक्षा की, तत्पश्चात् भीड़ छंट गई, कुछ भक्त और पंडित वर्ग ही शेष रह गये ।

वाराणसी के कार्य-क्रम :—वाराणसी में प्रभु का इक्कीस दिन का कार्य-क्रम रखा गया था। प्रातःकाल अन्नपूर्णा मिल के बगीचे में जिज्ञासु वर्ग आते थे एवं अपनी शंकाओं का समाधान करवाते थे। सायंकाल ३ बजे से ५ बजे तक बगीचे में ही भजन, कीर्तन एवं प्रवचन होता था एवं सायंकाल ६ बजे से तुलसी मानस मन्दिर के प्रांगण में प्रवचन का कार्य-क्रम रहता था। मानस मन्दिर के निर्माता श्रीमान रतन लाला सुरेका एवं उनकी श्रीमती जी के वात्य भाव से बहुत ही प्रभावित हुये एवं उनका अभी तक वात्सल्य स्नेह है तथा वात्सल्य भाव से मानती हैं। प्रभु की उनके ऊपर अहैतुकी कृपा हुई एवं सब प्रकार से उनकी रक्षा करते हुये उनकी हर एक समस्याओं का निवारण किया।

एक दिन श्री विश्वनाथ जी का इक्कीस पंडितों द्वारा रुद्राभिषेक करवाया था। प्रभु ने स्वयं वैदिक रीति से भगवान विश्वनाथ का पूजन किया। प्रभु की पूजा के दर्शन के हेतु अपार भीड़ लगी थी। एक दिन मानस मन्दिर मे भगवान श्रीराम का षोडषोपचार से पूजन किया।

तीन दिन विद्वत् सम्मेलन हुआ। इस प्रकार से इक्कीस दिन में ही वाराणसी के भक्तों के हृदय में स्थान बनाकर वीस मार्च को वायुयान के द्वारा नागपुर पधारे। हम लोग पहले से ही प्रवन्ध हेतु नागपुर पहुँच गये थे। नागपुर में गीता मन्दिर में प्रभु ठहरे थे। सेठ दुर्गा प्रसाद जी की ओर से मुख्य प्रवन्ध था। यों तो अन्य भक्तों ने भी यथायोग्य सेवा अर्पित की थी। हम लोग प्रभु के साथ सेवा हेतु वाइस भक्तजन थे। गीता मंदिर में श्री महामंडलेश्वर सदानन्द जी द्वारा पूर्ण स्वागत एवं स्वतंत्रता थी। इतनी अधिक आत्मीयता थी कि दूसरे का आश्रम जैसा लगता ही नहीं था। हम लोगों के पहुंचने पर ही वह तीन दिन के लिये आश्रम में पधारे थे। वह सदा यही कहते थे कि साक्षात गीता माता पधार गई हैं। आश्रम के सभी भक्तों का परम प्रेम का आत्मीय व्यवहार था। सतरह दिन तक वहाँ पर प्रवचन का कार्यक्रम चलता रहा, यद्यपि कि प्रभु जी का प्रथम ही शुभागमन उस नगर के लिये हुआ था, लेकिन सभी बहुत ही प्रभावित हुए एवं स्वागत किया।

नागपुर में महाप्रभु का प्रवचन

पहली अप्रैल १९६९ को आपने गीता मंदिर के प्रांगण में प्रवचन करते हुये कहा—

प्रत्येक के हृदय रूपी गुहा में परमात्मा का वास है। जिनका अन्त:करण शुद्ध एवं निर्मल है, वह सबके हृदय की बातों का पता लगा लेते हैं क्योंकि वह स्वयं आत्माराम हो जाते हैं अर्थात् प्रभु के रूप ही हो जाते हैं। उनकी दृष्टि में जड़ चैतन्य जगत परमात्म रूप हो जाता है।

"मत्त: परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय"—गीता ७।७

अपने से भिन्न अणुमात्र भी नहीं रह जाता है। वह इस सर्वात्म दर्शन के कारण अपने को भी सर्वगत जानकर जगत से व्यवहार करते हैं। इसीलिये उनसे किसी के हृदय की बात छिपी नहीं रहती। ऐसे गुरु को प्राप्त करके उनके चरण-कमलों में नियम निष्ठा रूपी पुरुषार्थ सदा करते रहना चाहिये, क्योंकि बिना नियम निष्ठा के कोरे ज्ञान से कुछ नहीं होता। सच्चे गुरु की संगत एक पल के लिये भी कल्याणकारी होती है। जैसे पेट भरने के लिये भोजन बना कर खाना पड़ता है, केवल भोजन बनाना है और खाना है कहने मात्र से पेट नहीं भरता, उसी प्रकार केवल कोरी ब्रह्मज्ञान की बात करने से अथवा ब्रह्मास्मि का राग अलापने से कोई ब्रह्मत्व को नहीं प्राप्त कर सकता। जीवन में कर्म प्रधान है।

"कर्म प्रधान विश्व रचि राखा"

कर्म करने से ही लोक तथा परलोक में सफलता मिलती है। जिस प्रकार से एक रजाई बना लेने के पश्चात् कई जाड़ों का काम निकल जाता है उसी प्रकार एक बार आत्म-प्रकाश हो जाने से अनन्त जीवन के लिये आत्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है। आप लोग कोशिश करिये, सच्चा गुरु, अवश्य मिलेगा, वह सच्चा ज्ञान देगा जो आपके अन्त:करण में प्रवेश कर जायेगा और आप ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे।

२ अप्रैल को सर्वप्रथम प्रभु ने एक भजन गाया—

मेरा नाम दिल से जो गाता रहेगा,
मुझे भी वो याद आता रहेगा।
नहीं पूरे होंगे ये दुनिया के धन्धे,
कहाँ तक यहाँ दिल लगाता रहेगा ।। मेरा ।।
यह ज्ञान की बूटी ऐसी निराली,
अगर ध्यान से इसको खाता रहेगा ।
तो आँखों का कानों का बुद्धि का मन का,
मेरे भक्तों सब रोग जाता रहेगा ।। मेरा ।।

जिस प्रकार से जल के बिना नौका नहीं चल सकती उसी प्रकार से बिना ज्ञान के आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"

ज्ञान के समान इस संसार में कोई भी वस्तु नहीं है । "ज्ञानान्मोक्षम् वाप्नुयात्" ज्ञान के द्वारा मनुष्य पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्नि: सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।। गीता ४।३७

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधन अर्थात् काष्ठ को भस्म करके सुन्दर स्वच्छ श्वेत राख बना देती है अर्थात् चाहे टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी हो अथवा कोयला हो, सबको एक सा श्वेत रूप प्रदान कर देती है उसी प्रकार ज्ञानाग्नि प्रारब्ध को छोड़ कर संचित और क्रियमाण समस्त पाप पुण्यात्मक कर्मों को भस्म कर देती है ।

शोक और मोह रूपी अज्ञानता को नष्ट करने के लिये ज्ञान के सदृश इस लोक में तथा वेद में कोई भी साधन पावन नहीं है । मुमुक्षुओं के लिये भी कैवल्य मुक्ति ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती है । इसीलिये ज्ञान के सदृश कोई भी साधन पवित्र नहीं है । अन्य जितने भी साधन हैं, जप तप यज्ञ तीर्थ व्रत

उपासना आदि सब ज्ञान की प्राप्ति के ही साधन हैं और ज्ञान आत्मा की प्राप्ति का साधन है, यह एक चेतन तत्व है जो उसको प्राप्त कर लेता है। उसके लिये कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

३ अप्रैल—मानव सब कुछ छोड़ सकता है लेकिन स्वभाव का त्यागना अति ही दुस्तर है। सद्‌गुरु मस्तिष्क का कारीगर है। वह मस्तिष्क का निर्माण करता है और शरणागत जीवों का स्वभाव छुड़वा सकता है। समस्त प्राणियों के साथ एक न एक स्वभाव लगा हुआ है वह उसी स्वभाव के वशीभूत रहते हैं। कोई लोभी है, कोई क्रोधी है, कोई अहंकारी है, लेकिन यदि गुरु कृपा और आपका प्रयत्न निरन्तर चलता रहेगा तो स्वभाव भी छूट सकता है। आत्मज्ञ गुरु का सत्संग बरावर करते रहना चाहिये, क्योंकि आत्मतुष्ट पुरुष स्वयं आत्मा में रमण करता है और दूसरों को अपने स्वरूप में मिलाने की शक्ति रखता है। उस आत्माराम के लिये भगवान ने निर्भय विलास में कहा है—

वह वन्दे मेरे मैं उनके खुदा हूँ।
वह मुझपर फिदा, और मैं उन पर फिदा हूँ॥

ऐसे महान आत्माओं के चरण-कमल में पराभक्ति रखनी चाहिये। शिष्य साधक नारि स्वरूप है, परमात्म प्राप्त गुरु नर स्वरूप है। नारियों के लिये सबसे प्यारा जीवन-आधार पति होता है, उसी प्रकार शिष्यों के लिये सबसे प्यारा गुरु होना चाहिये। आत्माराम पुरुष ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रियाँ और शब्दादिक विषयों को भस्म कर चुके होते हैं, अतः उन राग द्वेष से मुक्त अनासक्त पुरुष की शरणागति जो लेता है वह भी उसके प्रेम के वशीभूत होकर अपने स्वभाव को त्याग देता है। जीव स्वभाव के छूट जाने से शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। अपने में ही शान्ति और अशान्ति निहित है। शान्ति बाहर कहीं नहीं है। आप अपने को अपने स्वरूप में स्थित कर लोगे तो सब कुछ प्राप्त कर सकोगे।

प्रकाश तुम्हारे अन्दर है, जिस प्रकार से बल्ब में प्रकाश नहीं है, न होल्डर में है, न स्विच में, न तार की फिटिंग में। बल्ब प्रकाश बाहर लाने का साधन

है, स्विच पावर से जोड़ने का साधन है। मुख्य वस्तु पावर हाउस का कनेक्शन है। अतः तुम आत्मज्ञ पुरुष से अपना कनेक्शन जोड़े रहो, उसी के नियम के अनुसार अपने में कर्म रूपी तार की फिटिंग करते रहो, स्वयं तुम शक्ति स्वरूप हो जाओगे। निरुत्साही मत बनिये।

४ अप्रैल:—बाहर की शान्ति क्षणिक है, मायिक है, वह प्राप्त हो या न हो, परन्तु स्थायी शान्ति जो अपने में ही है, प्राप्त होना चाहिये। उस शान्ति के दाता सद्गुरु ही हैं। तुम कुछ साधन कर सको या न कर सको, लेकिन यदि उनका दामन कस कर निरभिमानता के साथ पकड़े रहोगे तो ब्रह्म तक पहुँच ही जाओगे।

ढाका पाता पान के साथा, संगत मिल गयी भूपन हाथा। ज्ञान का केन्द्र सद्गुरु है। यों तो ईश्वर प्रत्येक कण में व्याप्त है, जैसे गौ के प्रत्येक अंग में दूध व्याप्त है, लेकिन मुख्य दूध बाहर आने का केन्द्र गौ का थन है। इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त कराने का केन्द्र आत्म-प्राप्त पुरुष ही है, उसी में वह शक्ति निहित है जो भव में पड़े हुये प्राणियों की जीवन-नौका मझधार से पार लगा देते हैं।

५ अप्रैल :—सब पापों की जड़ मन है। मन ही जगत है। मन के द्वारा समस्त संकल्प उठते हैं चाहे शुभ हों अथवा अशुभ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तयैर्निर्विषयं स्मृतम्॥

मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है इसलिये मनुष्यों को संसारासक्ति से मुक्त होकर विवेक, वैराग्य, शम-दमादि से युक्त होकर श्रवण, मनन, निदिध्यासन से सबमें ईश्वर का दर्शन करके अज्ञान के द्वैत भाव से मुक्त होना चाहिये। मन पर विजय पाने की चेष्टा आप लोग करिये। मन की गति के कारण जन्म मृत्यु की फाँसी लगी रहती है। अतः अपने मन को अपने अधीन रखकर गुरु की महावाणी को हृदय में धारण करके निर्विकार बनने की बुद्धि जाग्रित करनी चाहिये। कामनाओं की पूर्ति करने का उपासक

मत बनो। कामनाओं की शृंखला कम करने से कम होती जायेगी और जितना वासनाओं को बढ़ाओगे दुःख बढ़ता ही जायेगा। मन से ही पुण्य होता है और मन से ही पाप होता है। निर्वासनामय मन होने से पाप और पुण्य की बेड़ी में जीव नहीं फँसता। मेले में जाते समय असंख्यों की भीड़ के कारण अनेक नर-नारि का स्पर्श हो जाता है लेकिन मन में किसी प्रकार की भावना न होने के कारण कोई भी दोष अथवा पाप नहीं लगता। एकांत में मन की भावना से यदि किसी पुरुष या नारि का स्पर्श किया जाता है तो पाप का भागी बनता है। प्रभु ने एक पद सुनाया—

वासना विसार डार, यही बड़ी बात रे !
हठ धर्म मन से त्याग, मूढ़न से दूर भाग।
संतन के चरन लाग ।। यही बड़ी ।।
सर्व ठौर सब काल, राम नाम न टाल।
हरि के चरन लाग ।। यही बड़ी ।।

इसी प्रकार से पद को गाते हुये बतलाया कि आसक्ति को त्याग दीजिये। आपकी आसक्ति के कारण बच्चे बिगड़ जाते हैं। आपके मिथ्या आचरण से बच्चे भी मिथ्या आचरण करने लग जाते हैं। आप दूरदर्शी नहीं हैं। दूर तक की नहीं सोचते, माया में जकड़े हुये संसार के व्यवहार करते हैं। इसीलिये वास्तविक कल्याण का साधन नहीं हो पाता।

इस प्रकार से प्रभु का नित्य सायंकाल प्रवचन होता था। प्रभु के आत्मिक प्रेम और सद्व्यवहार से सभी बहुत ही आनन्दित थे। समाप्ति के दिन भगवान गुरुदेव ने विधिवत रूप से श्री गीता माता का पूजन किया। खूब पुष्पों की वर्षा हुई। सहस्रों जनता प्रांगण में एकत्रित थी। गुप्त प्रसाद का वितरण हुआ। वहाँ के ट्रस्टियों ने तथा पंडित जी ने गुरुदेव जी का पूजन किया। अभिनन्दन पत्र दिया, और पुनः पधारने के लिये बहुत प्रार्थना करी। सब आँसू बहाते ही रहे। १९ अप्रैल को प्रभु ने वायुयान के द्वारा मद्रास के लिये प्रस्थान कर दिया।

मद्रास में श्री गुरुदेव जी:—हम लोग श्री प्रभु के पहुंचने के तीन दिन पूर्व ही मद्रास पहुंच गये थे। रामनाथ मोचन्दका एक्सप्रेस स्टेट के कम्पाउन्ड में हम लोगों ने निवास किया, क्योंकि मद्रास में कोई भी इस प्रकार का मंदिर नहीं था जिसके उद्यान में श्री प्रभु की कुटिया बनाई जाती, अतः पूर्व परिचय होने के कारण उन्हीं के कम्पाउन्ड में उनकी कन्या कृष्णा खेतान के आतिथ्य में श्री गुरुदेव जी के विश्राम का प्रबन्ध किया गया। प्रभु के साथ में बाइस भक्तगण भी थे। वह लोग उन्हीं के अतिथि निवास में ठहरे। दो मास तक निरन्तर वहां पर सत्संग चलता रहा। कृष्णा खेतान की ओर से बिना किराये की प्राइवेट बसें एवं मोटरों का भी प्रबन्ध था जिससे कि दूर-दूर के भक्त लोग सुविधापूर्वक श्री महाप्रभु के दर्शन एवं प्रवचन का लाभ उठा सकें।

मद्रास में श्री महाप्रभु का स्वागत :—मद्रास में श्री गुरुदेव जी का अभूतपूर्व स्वागत किया गया। सभी भक्तों ने परम श्रद्धा और प्रेम का परिचय दिया। प्रवचन में अपार भीड़ होती थी। गुरुदेव जी के प्रवचन करने का मंच बहुत ही सुन्दर सजाया गया था। नित्य नवीन सुगन्धित पुष्पों से सुसज्जित कर दिया जाता था। दूर से देखने में ऐसा प्रतीत होता था मानो बैकुंठ से एक विमान इस मृत्युलोक के बगीचे में उतर आया है और उस विमान में साक्षात नारायण ही विराज कर जनता की तृष्णा को शान्त करने के लिये ज्ञानामृत का पान करा रहे हैं। प्रातःकाल ८ बजे से १० बजे तक प्रभु भक्तों की समस्याओं को श्रवण करते थे। विशेष तौर से आर्त्ती और अर्थार्थी भक्तों की भीड़ लगी रहती थी। दक्षिण में यह बहुत सुन्दर प्रथा देखी गई कि कोई भी भक्त खाली हाथ नहीं आता था। शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, गरीब हो अथवा अमीर, ऊँचे हो अथवा नीचे, सभी काली सुपारी, सिंदूर, पान और एक नारियल प्रभु के समक्ष रखकर नमस्कार करते तब अपनी समस्या का निवेदन करते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो इनको शास्त्रीय ज्ञान हो। हमारे शास्त्रों में बतलाया गया है कि (१) गुरु के यहाँ (२) राजा के यहाँ, (३) मन्दिर में, (४) कन्या के घर खाली हाथ कभी भी नहीं जाना

चाहिये । यथा-शक्ति कुछ न कुछ लेकर ही जाना चाहिये । यह नियम शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत है ।

प्रभु में देवी का आवाहन एवं राजराजेश्वरी पूजनः— मद्रास की प्रधान भक्त जिसके आतिथ्य में श्री गुरुदेव जी का स्वागत सेवा थी, देवी की उपासिका थी । वह प्रभु में या तो गोपाल भावना रखती थी या देवी भावना । दोनों स्वरूपों में उसको प्रभु का दर्शन होता था । अपनी तीव्र भावना से प्रेरित होकर उसने षोडशोपचार से वैदिक विद्वानों द्वारा गुरुदेव में देवी स्वरूप की प्राण-प्रतिष्ठा करके पूजन किया था । केवल पूजन में पूरे छह घंटे लगे थे, पुष्प अर्चन भी किया गया था, जिससे पुष्पों का एक विशाल पर्वत ही बन गया था । प्रभु छह घंटे तक समाधिस्थ बैठे रहे । दर्शक लोग सभी काष्ठ की पुतली के सदृश बैठे दर्शन का आनन्द लेते रहे । सभी तन, मन की सुध-बुध खो बैठे थे । मंडप के ऊपर भी कैन्डीलों में पुष्पों को भर कर टांग रक्खा था । ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश मंडल से देवता गण पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं । उस दिन का आनन्द एवं शोभा अवर्णनीय है ।

विद्वत सम्मेलन :—पांच मई १९६९ से सात मई १९६९ तक इसका कार्यक्रम सम्पादित किया गया । मद्रास के माननीय सभी विद्वान एकत्रित हुये थे । सभी विद्वानों ने अपने मतानुसार अद्वय ब्रह्म की व्याख्या करी । तीन दिन के प्रवचन का सारांश यही था कि जो कुछ विद्वान जन अथवा महापुरुष लोग बतलाते हैं उन वचनों को कर्म में ढालना चाहिये । यदि उन वचनों को कर्म में नहीं ढाला जायेगा तो कहना और सुनना दोनों ही व्यर्थ रहेगा । यह सारा विश्व प्रभु में ही है या वही है । इसमें कोई भेद-भावना नहीं होनी चाहिये । जो भेदों की कल्पना करता है, वह मक्खन निकाले मट्ठे को मथता है । समस्त भेद-भाव को त्यागकर जो सम बुद्धि से ब्रह्म की उपासना करता है, वही वास्तविक उपासना करता है । ब्रह्म तत्व की उपासना के लिए ब्रह्मनिष्ठ गुरु की आवश्यकता है । बिना ब्रह्मज्ञ गुरु के ब्रह्म-प्राप्ति नहीं हो सकती ।

संसार में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो मार्ग हैं। यह विश्व अनादि है और ईश्वर इसका नियमन करने वाला सत्ताधीश है। मानव को सुख प्राप्त करने के लिए पुण्य कृत्यों में प्रवृत्त होना चाहिये। अज्ञान के कारण मन में अन्धकार छाया रहता है। जिस प्रकार से कोये में रेशम का कीड़ा न तो उसके बाहर निकलने का ही विचार करता है न अन्दर जाने का ही, बल्कि जहाँ का तहाँ बन्द पड़ा रहता है, उसी प्रकार आसुरी वृत्ति वाले न अंधकार से निकलने के लिए, न शुभ कर्मों में प्रवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करते हैं न निवृत्ति का ही। यह विश्व अनादि है और ईश्वर इसका नियमन करने वाला सत्ताधीश है। वेद जिन नियमों का पालन करने को कहता है, प्रत्येक प्राणी को न्यायानुसार उन कर्मों को करना चाहिये। जो उन नियमों का पालन नहीं करते, वही पापी हैं और नरक भोग के अधिकारी होते हैं। अतः प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है कि वेदों के बनाये नियमों पर चल कर जीवन को सुखी बनाये और दरिद्री जीव स्वभाव का त्याग करना चाहिये। जीवों के ऊपर कभी-कभी अचानक हीं दुःख-सुख आ जाते हैं। ऐसी जब प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है तब यही समझना चाहिये कि यह मेरे कर्मों का प्रतिफल है। जिस प्रकार बिजली का पंखा हवा का सुख प्राप्त करने के लिए लगाया जाता है, लेकिन कभी अचानक करेन्ट लग जाने से दुःख भी आ जाता है, इसका यह तात्पर्य नहीं कि बिजली दोषी है। वह तो जो है सो रहेगी ही, आपके कोई दुष्कर्म का फल है जिसके कारण आपको सुख के साथ-साथ दुःख भी मिल गया।

वाचक ज्ञानी से जीवों का उद्धार कदापि नहीं हो सकता। कर्मज्ञानी अपना भी उद्धार करता है, साथ में अपने आश्रय वालों का भी उद्धार करके मुक्ति-मार्ग का जिज्ञासु बना देते हैं। सत्, रज और तम तीन गुण जीवों में मुख्य होते हैं। सतोगुणी ही आत्म-बुद्धि का पथिक बन सकता है। तत्वज्ञ गुरु कृपा की का हाथ पड़ते ही जीव की अज्ञान-निद्रा भंग होकर अभेद भाव उत्पन्न हो जाता है। अभेद तत्व दर्शन ही जीवन का मुख्य सिद्धान्त है। इसी की प्राप्ति के लिए जीवों को प्रयास करना चाहिये।

मद्रास में महाप्रभु का सत्संग :—यों तो मद्रास में प्रभु का दो मास तक निरन्तर सत्संग चलता रहा। उन सभी प्रवचनों को यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है। उनमें से दिये हुये कुछ प्रवचनों को लिखा जा रहा है।

६–५–६९ को विद्वत् परिषद की सभा समाप्त होने के पश्चात् श्री गुरुदेव जी को प्रवचन करने के लिए निवेदन किया गया।

श्री गुरुदेव जी ने कहा :—यह मानव जीवन का प्रवाह अनादि और अनन्त है, न तो उसके प्रारम्भ का पता है न अन्त का। जिस प्रकार एक गोल वृत्त के सम्वन्ध में यह नहीं वतलाया जा सकता कि उसका प्रारम्भ कहाँ से हुआ और अन्त कहाँ से हुआ। जन्म और लय के मध्य में जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह सोये हुये आदमी के स्वप्न की भाँति माया के प्रभाव से सत् स्वरूप आत्म-तत्व में भासित होने वाला रूप है। जिस प्रकार से हवा के चलने पर उठती हुई तरंगों का भिन्न स्वरूप दिखाई देता है उसी प्रकार कर्मानुसार शरीरधारी प्राणियों में अलग-अलग रूप दिखाई पड़ता है। वास्तव में सव में एक ही तत्व विद्यमान है। आप लोगों को निश्चित रूप से यह समझ लेना चाहिए कि जो निश्चित एक चैतन्य व्रह्म तत्व है वह सब में सदा एक रूप से रहता है। जीवों के निजी कर्मानुसार शरीर का स्वरूप और कर्मों की रूप-रेखा वदलती रहती है। उसी एक चैतन्य व्रह्म तत्व को प्राप्त करने के लिए बड़े-वड़े ऋषि-महर्षियों ने अनेक साधनायें की हैं। कितने लोग इस सत्य तत्व के सत्य स्वरूप को समझ लेने पर अद्वय व्रह्म में स्वयं लीन हो जाते हैं। उन लोगों की वासना और आसक्ति पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और वह शाश्वत तत्व को प्राप्त करके स्वयं शाश्वत वन जाते हैं। कितने लोग इस व्रह्म के विषय की वार्ता सुनते-सुनते स्वयं देहातीत हो जाते हैं और संसार के प्रवाह में लौटकर नहीं जाते।

यह धर्म सवका है। धर्म एकदेशीय नहीं, सर्वदेशीय व्यापक सत्ता है। विवेकानन्द जी ने तथा हमारे गाँधी जी ने सभी धर्मों को अच्छी प्रकार देखा

और यही तत्व निकाला कि सब धर्मों का सार एक ही है। सभी धर्मों के प्रधान प्रवर्तकों ने उसी अद्वय तत्व को प्राप्त करने के लिए सर्वस्व का त्याग किया है। मुख्य धर्म जिसको सनातन धर्म कहा जाता है, सब धर्मों की मूल जड़ है, अन्य धर्म उसके निकले हुये डाल पत्ते हैं। हमारे देश का जीवन, सुख एवं समृद्धि धर्म पर अवलम्बित है। संकट-ग्रस्त भारत को धर्म संकट से उबार लेता है। हमारा तो अपने सन्मुख आये हुये सभी भक्तों से यही कहना है कि आप लोग भगवान हो। भगवान से भिन्न नहीं हो। लेकिन जिस प्रकार सभी लकड़ियों में अग्नि व्याप्त है, जिन लकड़ियों में अग्नि प्रज्वलित है, उसमें सभी लाभ उठा लेते हैं और उसकी अग्नि दिखाई पड़ती है एवं जिसके सहारे से दूसरी बिना जली हुई लकड़ियों को भी जलाया जा सकता है और उससे लाभ उठाया जा सकता है, उसी प्रकार आप सभी भगवान हो, परन्तु आप इस तत्व को जानते नहीं हो। जो जानते भी हैं, उनको अपनी शक्ति और तत्व पर दृढ़ विश्वास नहीं है। अतः यथार्थ लाभ नहीं उठा सकते। यदि आप उस ब्रह्म का लाभ उठाना चाहते हैं तो कर्म करिये। कर्मयोग के बिना ज्ञान योग की सिद्धि नहीं। ज्ञानयोग और कर्मयोग सिद्धान्ततः एक ही हैं, लेकिन जब तक तत्व का बोध नहीं होता तब तक द्वैत बुद्धि बनी ही रहती है। कर्मयोग के साधक एक दिन ब्रह्मतत्व की सिद्धि अवश्य प्राप्त कर लेते हैं। परिणाम दोनों का एक ही है, जिस प्रकार कच्चे अन्न अथवा पके अन्न दोनों का लक्ष्य मानव की क्षुधा की शान्ति है। अन्न दोनों ही हैं। ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों एक ही परमार्थ का साधन कराने वाले हैं। केवल अधिकारी के विचार से उनकी उपासना का तरीका अलग-अलग है। जब तक जीव अज्ञानी रहता है तभी तक कर्म-बन्धन कारक है। ज्ञान हो जाने पर कर्म-बन्धन कारक नहीं है। पूर्व जन्म के पुण्यों के फल से मनुष्य के अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश होता है।

जिस प्रकार दीपक की ज्योति छोटी होने से भी अन्धकार को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार सद्बुद्धि एवं एक निष्ठा का फल महान होता है। सद्-भावना का होना बहुत ही दुर्लभ है। जिस प्रकार पत्थरों के ढेर में पारस

पत्थर की प्राप्ति नहीं होती, जिसका भाग्य उत्तम होता है उसको अचानक ही पारस पत्थर मिल जाता है। इसी प्रकार सद्विचार ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता है। मनुष्य-जीवन प्राप्त करके अपने में सद्विचार जाग्रित करने की चेष्टा करनी चाहिये। निश्चयात्मक बुद्धि की उत्पत्ति सद्विचार के द्वारा ही उत्पन्न होती है। मोक्ष मार्ग के जिज्ञासु के लिए निश्चयात्मक बुद्धि का होना परम अनिवार्य है। जब तक निश्चयात्मक बुद्धि की जाग्रिति नहीं होगी तब तक सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का होना भी दुर्लभ है। जिसकी एक निष्ठा बुद्धि है उसकी भक्ति में कर्म के फलस्वरूप भले ही विघ्न उपस्थित हो जाय, पर वह भक्त अपनी निष्ठा के फलस्वरूप नाश को नहीं प्राप्त होता। एक निष्ठा के द्वारा ही ज्ञान की सिद्धि होती है और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है।

आत्म-जिज्ञासुओं को चाहिये कि स्वर्गादि की प्राप्ति रूप कर्म में न रत होकर, कैवल्य प्राप्ति के लिये सद्गुरु के आदेशानुसार उपासना करें। अविवेकी, वैराग्य-शून्य, स्वर्ग को सब कुछ मानने वाले का कदापि संग नहीं करें, क्योंकि यह लोग स्वयं भी जन्म-मरण की रहट में घूमते हैं और दूसरों को भी बांध देते हैं। राग द्वेषादि दोषों को मन से त्याग देना चाहिए। सर्व-भूत प्राणियों पर दया करना चाहिये। उनको ईश्वर का स्वरूप समझोगे तो राग द्वेष का शमन हो जावेगा। सद्गुरु ही भगवान से मिलाने की जंजीर है। यदि वह तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो भगवान की प्राप्ति तुम्हारे हाथ में हो जायेगी और तुम भी त्रिगुण से मुक्त होकर निर्वाण पद को प्राप्त कर सकोगे।

इस प्रकार से दो मास तक ज्ञान की धारा बराबर बहती रही, जिसमें से एक दिन का प्रवचन यहाँ पर उद्धृत कर दिया गया है। एक दिन किसी भक्त ने श्री गुरुदेव जी से पूछा कि प्रभो ! भक्ति में लगने के पूर्व भी तो कुछ पूर्वाभास हो जाता होगा कि अब जीवन की नाव किस ओर जाने वाली है ?

श्री गुरुदेव जी ने उनके प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा कि जैसे जब भगवान श्रीराम का वन गमन और दशरथ का मरण होने वाला था, तब श्री

भरत लाल को अपने ननिहाल में पूर्वाभास हो गया था। सांसारिक जीवों को भी शुभ-अशुभ का आभास हो जाता है। इसी प्रकार भगवान के मार्ग में आने वाले भक्तों को भी शुभ जीवन का पूर्वाभास हो जाता है। हम अपनी बीती बात आपको बतलाते हैं। यों तो हमको बचपन से ही ईश्वरीय अनुराग था। संसार में रहते हुये भी संसार में न रहने के समान ही था। सन्यास लेने के तीन मास पूर्व हमको स्वप्न दिखाई पड़ने लगा था। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश में असंख्य सूर्य उदय हो गये हैं और उनमें से अद्‌भुत प्रकाश निकल रहा है। उसकी ज्योत्स्ना से एक अद्‌भुत शांति की रश्मि निकल कर हमारे में प्रवेश करती जा रही है। कभी-कभी देखते थे कि हमारे चारों ओर सूर्य ही सूर्य मँडरा रहा है। यह सब देखकर हमको बड़ा आश्चर्य होता था। दो-तीन बार हमने स्वप्न में देखा कि शंकर जी पार्वती जी को दौड़ा रहे हैं एवं पार्वती जी शंकर को दौड़ा रही हैं और दोनों परस्पर में खेल रहे हैं। एक दिन हमने देखा कि दोनों मिलकर हमको दौड़ा रहे हैं। दौड़ते-दौड़ते जब हम बहुत थक गये तब एक एकांत स्थान में बैठ गये। हमारे बैठ जाने के पश्चात्, शंकर पार्वती भी वहाँ पर आ गये और कह रहे हैं कि बस लीला समाप्त हो चुकी, बहुत खेल खेला, अब विश्राम करो। थोड़ी देर पश्चात् वही शंकर पार्वती का मूर्त्त स्वरूप जड़वत् हो गया और उनके दायीं ओर से शान्तिदायक शीतल सूर्य की रश्मि आकर हमारे में प्रवेश करती जा रही है।

दो-तीन बार देखा कि हमारी पूजा करी हुई लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा चैतन्य हो गई, लक्ष्मी जी ने आकर हमको बहुत प्यार किया और श्री नारायण जी ने मस्तक पर हाथ फेर कर एक माला दी और मुस्कराते हुये कहा— इसको सम्भाल कर रखना। हमने उस माला को अपने गले में पहन लिया। थोड़ी देर में वह माला गले से उतार कर बिस्तर पर अपने सिराहने रख ली। इतने में हमारी नींद खुल गई और देखते हैं कि जिस माला को स्वप्न में देखा था ठीक वैसी ही माला सिराहने पर रखी हुई है। हमको बड़ा आश्चर्य लगा। इस स्वप्न को देखने के पश्चात् ही हमने सन्यास ले ही लिया। परिवार

वाले देह के सम्बन्धी रोते ही रहे, माया के जाल में बांधने की चेष्टा करते रहे. लेकिन अब रोने तथा चीत्कार करने से क्या हो सकता था ?

फिर उस भक्त ने पूछा—"प्रभो ! क्या उत्कट वैराग्य होते ही ईश्वर का दर्शन हो जाता है ?"

गुरुदेव भगवान ने कहा—"वैराग्य के कारण संसार की आसक्ति, मोह, ममता बड़ी ही सुगमता से छूट जाती है, संसार के बन्धन को त्यागने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। महात्मा बुद्ध ने विशाल राज्य वैभव को पल में त्याग दिया। सब कुछ त्याग देने पर भी विना साधना किये लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हुई। उस आत्म-तत्व के परम प्रकाश को प्राप्त करने के लिए, ज्ञान एवं भक्ति दोनों ही अनिवार्य है। ज्ञान के द्वारा साधक ईश्वर को पहिचानता है। जैसा कि गीता में भगवान ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है—

न तु मां शक्यते द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।। गीता ११।८

तू मुझे इस विश्वरूप धारी को इस चर्म चक्षु के द्वारा नहीं देख सकता। इसलिए मैं तुझे दिव्य-अलौकिक ज्ञान-चक्षु प्रदान करता हूँ, जिसके द्वारा तू मुझ विष्णु के अनन्त-अनन्त योग ऐश्वर्य से युक्त रूप को देखने में समर्थ होगा। जिस प्रकार विना जमीन जोते बीज बोने से बीज की कीमत, पानी की सिंचाई और हरवाई का मूल्य वृथा जाता है उसी प्रकार विना ज्ञान के विश्व रूप ईश्वर का देखा जाना कठिन है। उस ज्ञान-दृष्टि को प्राप्त करने के लिए भी गुरु के आदेशानुसार साधना करना अनिवार्य है। साधना करना भूमि को खेती के अनुकूल बनाना है। हृदय रूपी भूमि योग्य बन जाने पर स्वप्रकाश शीघ्र ही हो जाता है और जगत में आत्मा ही आत्मा भासने लगती है।

भक्ति द्वारा ईश्वर के चरणों में अनन्य अनुराग हो जाता है। जो भगवान के चरण-कमलों में द्रुत चित्त हो जाता है वह रात दिन समय-वेसमय का विचार न करके उन्हीं के प्रेमामृत का पान करने में तन्मय रहते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तों का प्रेम प्रभु से विलग नहीं कर सकता। समस्त इन्द्रियों सहित अपना मनोभाव सब ओर से हटा कर उन्हीं के चरणों में लय हो जाते हैं।

इसीलिए प्रेमाभक्ति की सर्वोच्च महत्ता है । प्रेमीं भक्तों को संसार-सागर की लहरों से बचाने के लिए ही प्रभु सद्गुरु रूप अवतार धारण करके शिष्यों को तारक मंत्र के द्वारा तार देते हैं।

समवर्ती कैसे हो :—प्रातःकाल का समय था। भक्तों की भीड़ लगी थी। आर्ती अर्थार्थी तो सदा विशेष संख्या में रहते हैं। १० मई १९६९ को एक सज्जन गृहस्थ ज्ञानी भक्त भी आ पहुँचे। उन्होंने प्रभु से कहा—"मैं प्रकांड पंडित अवश्य हूँ, लेकिन कोरा किताबी ज्ञान है। मूर्ख अज्ञानी बल्कि सुखी रहता है, मैं सब कुछ जानकर कुछ नहीं कर पाता। इसीलिए मन बड़ा अशान्त रहता है। आप कृपा करके मुझको यह बतलाइये कि जब संसार में ब्रह्म ही ब्रह्म है, ब्रह्म से रिक्त एक-एक कण भी नहीं है, परन्तु मैं यह भावना सब के साथ कैसे बरत सकता हूँ। आप कोई ऐसा साधन बतलाइये जिससे मेरे मन को शान्ति मिले।"

प्रभु ने कहा—"हम तो सबके बालक हैं और सदा बालक ही रहेंगे, लेकिन फिर भी गुरु प्रसाद से जो कुछ शास्त्र कहता है और साथ में हमने अनुभव किया है उसको बतलाते हैं।

हमारे शास्त्रों में बतलाया है कि भेद दृष्टि को अविद्या जानो।

"दृष्टि ज्ञानमयी कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत"

ज्ञानमयी दृष्टि से संपूर्ण विश्व को ब्रह्ममय देखो। भगवत्गीता में भी कहा है—

विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ।। गीता ५।१८

संसार में समदर्शन और समवर्तन दो प्रकार का व्यवहार होता है। सर्वात्मदर्शी महात्मा जन विद्या विनय संपन्न ब्राह्मण, गौ में, श्रेष्ठ हाथी में तथा निकृष्ट कुत्ते और चांडाल में अधिष्ठान भूत सम परमात्म तत्व को ही देखते हैं। वे विषम गुणों को नहीं देखते। स्थूल भौतिक जगत में समवर्तन होना दुर्लभ है। समदर्शी होना ही महान कठिन है, लेकिन अद्वय ब्रह्मवेत्ता महा-

पुरुष समदर्शी होते हैं। दृष्टि सम कर सकते हैं। जैसे कुत्ते को हम भोजन दे सकते हैं, सर्दी गर्मी से रक्षा कर सकते हैं लेकिन कुत्ते का दूध गौ की तरह नहीं पिया जा सकता। जल की दृष्टि से गंगा जल और नाले का जल समान ही है, परन्तु व्यवहार समान नहीं हो सकता। गंगा जल पिया जायेगा, नाले का जल पिया नहीं जा सकता। दृष्टि से दोनों जल ही देखा जायेगा, स्त्री की दृष्टि से स्त्री, कन्या और माता सब समान ही हैं, परन्तु उनका व्यवहार समान नहीं हो सकता अथवा यों कहिये इन्द्रियों की दृष्टि से सब इन्द्रियाँ समान ही प्रिय हैं, परन्तु उनका व्यवहार समान नहीं है। नाना प्रमाणों से समदर्शन हो सकता है। यदि समदर्शन का ही अभ्यास कर लिया जाय कि आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है, यह अमृतमय ब्रह्म ही आगे पीछे, दायें बायें, बाहर भीतर व्याप्त है या मैं ही मैं हूँ। फलस्वरूप चक्षु आदि इंद्रियों के बाह्य प्रपञ्च से आप उपराम हो जायेंगे और राग द्वेष आदि प्रपंच से रहित होने पर आत्मा में स्वत: शान्ति की अनुभूति होगी। इष्ट अनिष्ट सब समान से प्रतीत होने लगेंगे। जब आप ही आप हैं तो वैरभाव किससे किया जाय? यदि कोई कुछ विगाड़ भी देता है तब भी मन में किसी के प्रति दुर्भावना या उत्तेजना नहीं आती, मन में शान्ति रहती है। पूर्ण परात्पर स्थिति पर पहुँच जाने पर योगी समदर्शी एवं समवर्ती दोनों ही हो सकता है, लेकिन व्यवहार जगत में कर्त्ता नहीं।"

हर पल भगवान को कैसे याद करें :—एक सिंधी भक्त ने प्रभु से पूछा—"मुझे तो कोई ऐसा साधन बता दीजिये जिससे काम धंधा करते हुये भी प्रभु को हर पल याद किया करूँ।"

श्री गुरुदेव जी ने कहा—"आप अपने बेटे को कैसे याद करते हैं? आप अपने समधी दामाद को कैसे याद करते हैं? एक नाता जोड़ लेने के कारण उनकी आपको समय-समय पर बराबर याद आती ही रहती है। इसी प्रकार उस ईश्वर की याद करने के लिये उससे किसी भी भाव का नाता जोड़ लीजिये। सच्चा नाता जुड़ जाने पर अपने आप बिना याद करे ही उनकी याद आती

रहेगी और जितना समय उनकी याद में जायेगा वह सब भजन ही है।" इस पर प्रभु ने एक दृष्टान्त वतलाया—किसी महात्मा के पास एक भक्त गया और कहने लगा, भगवान की याद कैसे हुआ करे ? हमको तो काम-धंधे से फुरसत ही नहीं मिलती। महात्मा जी ने कहा—"ठीक है, हम तुमको वतलायेंगे कि कैसे उनकी याद आया करेगी। महात्मा जी ने दस रुपये देते हुये कहा—"वेटा, इन दस रुपयों की तुम हरी सब्जी लेते आना, क्योंकि हरी सब्जी मुझको फायदा करती है।" शिष्य ने कहा—ठीक है, अवश्य लाऊँगा। रास्ते भर वह गुरुदेव की याद करते हुये गया कि गुरुदेव के लिये हरी सब्जी लेकर जानी है, कहीं भूल न जाऊँ। रात्रि भर याद करता रहा कि प्रातःकाल श्री गुरुदेव जी के लिये हरी भाजी लेकर जाना है। प्रातःकाल उठते ही वह भक्त बाजार से हरी भाजी लेकर गुरुदेव के यहाँ पहुँच गया। उसको देखते ही गुरुदेव ने पूछा—"कहो वेटा ! तुमने हमें कितनी वार याद किया ?" उसने कहा, "गुरुदेव, हर पल आपको ही याद करता रहा।" कहने का तात्पर्य यह है कि किसी तत्वज्ञ गुरु की शरण लेकर उनसे अपना सम्वन्ध जोड़ लो। स्वतः ही उनकी कृपा से हृदय भगवान के चरणों में लग जायेगा। उनकी स्मृति वरावर वनी रहेगी।

एक्सप्रेस के समाचार पत्र में नित्य श्री गुरुदेव जी के प्रवचन का सार निकलता था, फलतः दक्षिण प्रदेश में काफी ख्याति फैल गई।

कैन्सर का मरीज ठीकः—समाचार पत्र में श्री प्रभु की कीर्ति का सन्देश सुनकर एक कैन्सर के मरीज ने हास्पिटल से दर्दनाक पत्र लिखा कि वह वहुत ही साधारण स्थिति का व्यक्ति है। सारे परिवार का भार उसी के ऊपर निर्भर है। यदि वह काल का ग्रास हो जायेगा तो उसके माता पिता, स्त्री और दो छोटे वच्चों को भोजन देने वाला भी कोई नहीं रहेगा। अतः वह अपने आशीर्वाद और प्रसाद से उसे जीवन दान दें। उसके निवेदन पत्र को सुनते ही श्री गुरुदेव जी के नेत्रों से अश्रु वहने लगा और उन्होंने रामदेव भय्या (जो साथ में ही थे) के हाथ प्रसाद, चरणामृत अस्पताल में ही भिजवाया। जब

तक मद्रास में श्री गुरुदेव जी रहे तब तक उसको प्रसाद एवं चरणामृत भेजते रहते थे। बंगलोर पहुँचने के पश्चात् उसका पत्र आया था कि गुरुदेव, मैंने आपका दर्शन नहीं किया, लेकिन आपकी समाचार पत्र से निकाली हुई फोटो मेरे पास है जिससे मैं आपका दर्शन पाता रहता हूँ। मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर घर पर आ गया हूँ। आपकी कृपा के लिये मैं जीवन भर आभारी रहूँगा।

इसी प्रकार कई अनेक असम्भव कार्य लोगों के सम्भव हुये, जिसका वर्णन कहाँ तक किया जाय। प्रयाग राज में तो नित्य ही नवीन-नवीन ऐसी चमत्कारिक घटनाओं का दिग्दर्शन होता ही रहता है, जिनको श्री गुरुदेव जी खेल मात्र समझते हैं। अभी हीरामणि जी जो श्री गुरुदेव जी की शिष्या एवं कलकत्ते की सेठानी हैं, डाक्टर के द्वारा गलत दवा दे देने के कारण उनके पैरों ने काम करने से जवाब दे दिया। जब पैर ने ही जवाब दे दिया तब बिचारी क्या करती। उनको बहुत कष्ट हुआ एवं मानसिक पीड़ा भी हुई। जब श्री गुरुदेव जी को इनके इस कष्ट का पता चला तब आपने अपने भक्त को आश्रम में बुलवाया और भगवान केशवानन्द जी महाराज की सिद्ध पीठ का दर्शन तथा परिक्रमा करने का साधन लगा दिया। सभी कहने लगे, वह पैर से एक कदम भी नहीं चल सकती, फिर दर्शन एवं परिक्रमा कैसे करेगी? महाप्रभु ने कहा, "हीरामणी ठीक है, उसको कोई बीमारी नहीं है।" लगभग बीस दिन तक तो वह अपने कनिष्ठ पुत्र या बहन का हाथ पकड़ कर किसी प्रकार धीरे-धीरे नियम पूर्ण करती थी। एक दिन तो हम लोगों ने देखा, वह बिना सहारे के चल कर आ रही है। यह देख कर सभी लोग कहने लगे, धन्य है प्रभो आपकी महान शक्ति को।

गुरुदेव भगवान की शक्ति महान है—शुभकान्ति जी एक दिन आश्रम आई थीं। उनका इकलौता पुत्र तीन मंजिल से गिर पड़ा। बालक मूर्छित हो गया। डाक्टर आया. उसने कहा—"या तो बालक बचेगा नहीं, बचेगा भी तो पागल रहेगा।" भगवान गुरुदेव की ऐसी शक्ति, शुभकान्ति जी

ने आश्रम का तुलसी प्रसाद एवं चरणामृत बालक के मुँह में डाल दिया और कहा, गुरुदेव का दिया हुआ यह प्रसाद है, इसीलिए इसका नाम भी गुरु प्रसाद है, भगवान गुरुदेव ही मेरे इष्ट हैं, उनकी जो इच्छा होगी वही होगा। दस मिनट में बालक उठ गया और भोजन माँग कर खाया। भोजन करने के थोड़ी देर पश्चात् आनन्द से खेलने लगा। सब लोग देखकर अवाक् रह गये। धन्य है प्रभु की अद्‌भुत शक्ति और भक्त के विश्वास का फल।

इसी प्रकार जब वह गुरुदेव भगवान के शरण में आई थीं, उनके केवल एक कन्या थी। लेडी डाक्टर बरार ने कहा था कि इनके दूसरी सन्तान हो नहीं सकती, यदि होगी भी तो इनका बचना मुश्किल होगा। एक दिन उनकी सास ने हमसे कहा—"हमारे पोता नहीं है, गुरुदेव भगवान की हमारे ऊपर कृपा हो जाय। हमारे एक ही पुत्र है, उसके भी पुत्र नहीं। सब कुछ होने पर भी मन बड़ा खिन्न रहता है।" इतने में श्री गुरुदेव भगवान पधार गये और पूछा, "क्या बात हो रही है?" हमने समस्त वृत्तांत बतला दिया। उन्हीं के चढ़ाये हुये वहाँ पर अनार रखे हुये थे। प्रभु ने उसमें से एक अनार उठा कर दे दिया। ठीक दस मास पश्चात् पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गुरु प्रसाद रखा गया।

सन्तोष भाभी गुरुदेव की भक्त हैं। उनके यहाँ पुत्र ही पुत्र होते थे। कन्या उनके पीढ़ी दर पीढ़ी नहीं हुई थी। उनको कन्या की बहुत इच्छा रहती थी। जब वह गर्भवती हुई, महाप्रभु ने उनसे कहा—"सन्तोष, अबकी तुम्हें मेरे भगवान गुरुदेव कन्या ही देंगे, क्योंकि तुम्हें कन्या की अभिलाषा है। उसका नाम तुम नीला रख देना।" महाप्रभु के इतना आश्वासन देने पर भी उनको मन में भय हो जाता था कि कहीं पुत्र न हो जाय। अस्पताल में जाते समय अपने पति को भेजा कि गुरुदेव से पुनः प्रार्थना कर दीजिये। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा—"हमने कह तो दिया कि कन्या का नाम नीला रखना। नामकरण संस्कार भी हो गया।" जैसे दस मास पूर्व ही प्रभु ने कहा था, वैसे ही कन्या हुई।

राजलक्ष्मी के साथ भी इसी प्रकार की घटना घटी।

काल के मुख से बचाया :—एक बार प्रेम मोहनी जी की देवरानी प्रेम को अचानक ही सीने में दर्द हुआ, डाक्टरों ने कह दिया, रोग असाध्य है। कुछ पता नहीं चल रहा है कि किस कारण से यह दर्द हुआ है। वह मूर्छित पड़ी थी। डाक्टर सब चले गये। प्रेम मोहनी जी की निष्ठा प्रवल है ही। उन्होंने कहा—"डाक्टरों के हिसाव से इनका वचना दुर्लभ है, इनके नन्हें-नन्हें बच्चे हैं, सबका क्या होगा?" एम्बुलेन्स मंगाकर आश्रम में ले आईं। श्री गुरुदेव जी से समस्त घटना का वृतांत वतलाया। प्रभु ने कहा—"भगवान गुरु के चरण के नीचे इसको सुला दो। उनको जो इच्छा होगी वही करेंगे।" उनके परिवार वालों को हटा दिया। आश्रम की साधिका देवी के द्वारा भगवान गुरु का चरणामृत पिलवाया। आधे घंटे में मूर्छा भंग हो गई। दूसरे दिन खिचड़ी खिलवायी गई। तीसरे दिन उठ कर सत्संग भवन में झाड़ू लगाने लगी। सायंकाल घर पहुँचा दी गई। उनके जीजा स्वयं डाक्टर थे, देखकर अवाक् हो गये।

आश्रम की साधिका कल्यानी वहन ने पेचिश वन्द करने के लिये अपने मन से पूजा के लिए रखे हुये कपूर में से १ छटांक के लगभग कपूर खा लिया। कपूर खाते ही आँख उलट गई, साथ-साथ कुछ सनक सी चढ़ गई, हाथ-पैर पीटने लगीं। यह सूचना शीघ्र ही गुरुदेव भगवान के पास पहुँची। उन्होंने सब भक्तों को बाहर कर दिया। हमको गीता का पाठ करने को कहा और स्वयं उसके माथे पर हाथ फेरा और कहा, कल्यानी, क्या हुआ, उठो, गुरु सेवा नहीं करनी है क्या? इतना कहते ही उसने आँख खोल दी और बोली, कपूर ज्यादा खा लिया था। प्रभु ने शरबत मंगवा कर पिलाया, इतने में वह ठीक हो गई।

मद्रास की ही घटना स्मरण में आ गई। संतों में तो महान शक्ति होती ही है, साथ-साथ भक्तों में भी वैसा ही विश्वास होना चाहिये। एक भक्त को सफेद रोग का होना ही शुरू हुआ था, वह रोती हुई भगवान गुरुदेव के पास आई और बोली, प्रभो मेरी कन्या क्वारी है और उसे सफेद रोग का एक छोटा सा निशान माथे में ही हो गया है, आप कृपा करिये, वह रोग-मुक्त हो जाय।

अविवाहित कन्या को कैसे घर में रखेंगे। श्री गुरुदेव भगवान ने भगवान विष्णु के सहस्र नाम पर सहस्र तुलसी पत्र चढ़वा कर प्रसाद रूप में दिया और उसके लगाने की विधि भी बतलाई। कुछ दिन में उसका सफेद दाग बिल्कुल मिट गया।

वर्षा रुक गई :—१७–५–१९६९ से गुरु गीता का सात दिन का अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। लगभग दो सौ भक्तों का गुरु गीता श्रवण करने का अनुष्ठान चल रहा था। २१–५–६९ को अचानक मध्यान्ह बारह बजे से बड़े जोरों से वर्षा होने लगी। तीन बजे तक तो प्रभु कुछ भी नहीं बोले, चुप रहे। तीन बजे पश्चात् वहाँ की प्रमुख भक्त ने आकर प्रार्थना की कि प्रभो, इस तरह वर्षा होगी तो भक्त लोग कैसे आयेंगे ? दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मील की दूरी से भक्त लोग आपके प्रवचन के लिये तथा अनुष्ठान में सम्मिलित होने के लिए आते हैं। उन लोगों में इतना नियम और निष्ठा नहीं है कि वह भीग कर भी आयें और नियम को पूर्ण करें। कुछ लोग तो केवल आपके ही आकर्षण से आते हैं। इसीलिए आपसे प्रार्थना है कि आप वर्षा को रोक दीजिये। पहले तो प्रभु ने यही कहा कि हम क्या करें ? भगवान से कहो, वह वर्षा बन्द कर दें। परन्तु वह बार-बार प्रार्थना करने लगी और कहने लगी कि हम तो आपको ही लड्डू गोपाल मानते हैं, वर्षा बन्द कर दीजिए, आपको लड्डू का भोग लगायेंगे। आप तो लड्डू खाते नहीं, आपके ग्वाल-बाल हम लोग हैं। हम लोग लड्डू का भोग लगाकर खा लेंगे। पाँच मिनट के पश्चात् ही सब लोगों ने देखा कि आकाश में जल भरे मेघ मंडरा रहे हैं। लेकिन पृथ्वी पर एक बूंद नहीं बरस रहा है, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो आकाश का पानी किसी ने आकाश में ही रोक लिया हो। सायंकाल ५ बजे से सत्संग का कार्य-क्रम प्रारम्भ हो जाता था। सायंकाल ४॥ बजे बादल एकदम साफ हो गये और चारों ओर धूप निकल आई। सत्संग के समय नित्य प्रति के सदृश ही भक्तगण उपस्थित हुये।

कृष्ण स्वरूप का दर्शन :—राधा सन्थोलिया को एक दिन ऐसा प्रतीत हुआ, मानो गुरुदेव के स्थान पर भगवान कृष्ण बैठे हैं। अब जैसा उसने

दर्शन किया था, उसी प्रकार के स्वरूप का शृंगार करके प्रभु का पूजन किया। वह भी दर्शनीय स्वरूप था।

सर्वत्र व्याप्त :—एक दिन गुरुदेव की परम भक्त एक सिंधी भक्त रानी ने कहा—"भगवान ! आपका ऐसा कैसा कठोर नियम है कि आप किसी के घर नहीं जाते। हम लोगों को भी तो इच्छा होती है कि आप हम लोगों के यहाँ पधारें और हम लोग अपने हृदय की श्रद्धा अर्पण करें।" प्रभु ने कहा, "तुम्हें क्या मालूम कि हम तुम्हारे यहाँ आते हैं ? हम तुम्हारे यहाँ कल गये थे।" रानी बोली—"प्रभु ! हमें तो नहीं मालूम।" गुरुदेव बोले—"कल रात्रि ८ बजे हम तुम्हारे यहाँ गये, लेकिन तुमको तो अपने तन-बदन की भी होश नहीं थी। तुम सत्संग के पश्चात जाकर अपनी धोती को उतार कर बेहोश की तरह सो रही थीं। हम तुम्हारे कमरे तक जाकर लौट आये।" वह मुँह में अंगुली दबाते हुये बोली—"हाय भगवान ! आप ऐसे क्यों पहुँच गये। मैं कभी इस प्रकार नहीं सोती। कल ही मुझको बहुत थकावट तथा गर्मी लग रही थी। इसीलिए मैं इस प्रकार सो गई।"

इसी प्रकार की एक घटना राधा सन्थोलिया को भी बतलाया।

कन्या का लकवा ठीक :—सावित्री बचानी नाम की एक कन्या थी। उसको बचपन में ही लकवा मार गया था। बीस बरस की हो चुकी थी, लेकिन छह महीने के बच्चे की तरह उसके माता-पिता या भाई गोद में लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते थे। शरीर से कन्या युवा हो चुकी थी, लेकिन हाथ पैर काम नहीं करते थे। इसीलिए माता-पिता को भी बहुत परेशानी रहती थी। युवा कन्या को नौकर के सहारे भी छोड़ना अनुचित समझते थे। कन्या के माता-पिता श्री गुरुदेव जी के पास आये और बहुत दुःखित होकर कहने लगे—कुछ भी ऐसा आशीर्वाद दीजिए जिससे कन्या किसी के सहारे से चलने लगे, इतनी बड़ी कन्या को उठा-उठा कर नित्य की शारीरिक क्रिया कराना भी कठिन, अन्यत्र इसको ले जाना भी कठिन और अकेले छोड़ना भी कठिन। पहले तो श्री गुरुदेव जी विचारते रहे, बाद में उसको गुरु

मन्त्र लेने की आज्ञा दी और कहा कि इसी मन्त्र को यह अधिक से अधिक जपे तथा कुछ मालिश करावे। बिल्कुल ठीक के लिये तो हम नहीं कहते, लेकिन अवश्य अपने सहारे से चलने लगेगी। दस-पन्द्रह दिन के अन्दर ही उस कन्या में जमीन आसमान का अन्तर हो गया। अपनी मोटर से वह अपने आप उतरने लगी थी, माता का हाथ पकड़ कर गुरुदेव भगवान के समीप आती एवं प्रणाम करती।

२५ मई से दक्षिण के तीर्थों का दर्शन :—२२ मई को लगभग डेढ़ सौ भक्त श्री प्रभु के साथ दक्षिण यात्रा के लिए पहुँच गये। कृष्णा खेतान के आतिथ्य में एक्सप्रेस स्टेट के आतिथ्य भवन में उन लोगों के निवास का प्रबन्ध किया गया था। २५ मई को दो बस और तीन मोटरें भरकर तिरुपति बाला जी का दर्शन करने के लिए गये, रात्रि को वहाँ पर अतिथि भवन के बगीचे में ठहरे, दूसरे दिन निवास-स्थान में वापिस आ गये। २७ ता० को शिवकांची, विष्णुकांची गये। वहाँ पर चतुरवेद आम्र वृक्ष का दर्शन किया। एक आम्र का वृक्ष ऐसा है जो बारहों मास फला रहता है। उसकी चार शाखायें हैं जो चतुरवेद शाखायें कहलाती हैं। चितम्बरम, तंजावर, त्रिचनापली, मदुराई, त्रिचन्दूर, रामेश्वरम, कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रम, गुरुर्वायु होते हुये बैंगलोर पधारे। बीच-बीच में अन्य पूज्यनीय स्थानों का दर्शन किया। साथ में कृष्णा खेतान के मैनेजर हरी हरन भय्या गये थे, क्योंकि उन्हीं लोगों की ओर से मार्ग में ठहरने और प्रत्येक मन्दिर की पूजा की व्यवस्था थी। मार्ग में चितम्बरम, तंजावर, त्रिचनापली, रामेश्वरम, मदुराई, त्रिचन्दूर, कन्याकुमारी, त्रिवेन्द्रम एवं गुरुर्वायु में ठहरे थे। प्रत्येक स्थान पर पहुँचने के पूर्व ही श्री गुरुदेव जी के निवास के लिए कुटी, दूध मट्ठा के लिए गौ, फल खाने वाले भक्तों के लिये फल, अनाज वालों के लिए अनाज की पूर्ण व्यवस्था रहती थी। इन्हीं स्थानों में विश्राम करके अन्य समीपवर्ती मन्दिरों का दर्शन किया गया। त्रिचनापली में श्रीरंगम का बहुत सुन्दर और विशाल मन्दिर है। निकट में ही कावेरी नदी का प्रवाह है। इस मन्दिर का एक प्राचीन इतिहास

बतलाया जाता है। त्रेता युग में भगवान श्री राम वनवास से लौटने के पश्चात जब साथ में आये हुये सभी भक्तों की विदाई कर रहे थे तब विभीषण जी ने अयोध्या जी के प्रसिद्ध मन्दिर की सुप्रसिद्ध मूर्ति नारायण को साथ में ले जाने के लिये मांगा। भगवान श्री राम नित्य प्रति अपने उस निजी मन्दिर का दर्शन करने जाया करते थे। भक्तराज विभीषण के द्वारा उस मूर्ति के मांगने पर उन्होंने कहा—"ठीक है, तुम भगवान को ले जाओ, लेकिन मार्ग में कहीं मत रखना। जिस जगह इस मूर्ति को भूमि पर रख दोगे उसी स्थान पर मूर्ति विश्राम कर लेगी और लंकापुरी नहीं जायेगी।" दूसरी ओर श्री कावेरी जी प्रभु के दर्शन के लिए तरस रही थीं कि उत्तर भारत में भगवान ने अनेक अवतारों को धारण करके गंगा, जमुना, गोदावरी को आनन्दित किया, लेकिन मैं आज तक उनके प्रेम और दर्शन से वंचित हूँ। भगवत प्रेरणा, जब विभीषण लंकापुरी के समीप पहुँचने लगा, केवल समुद्र पार करना ही अवशेष रह गया, उसको जोर से लघु शंका लगी, जिसको उसके लिए रोकना दुर्लभ हो गया। मूर्ति भूमि पर रख नहीं सकता। इधर भगवान ने सोचा यदि यह राक्षस मुझे लंका में पहुँचा देगा तो मैं राक्षसों के बन्धन में फँस जाऊँगा। वह अत्याचारी अनर्थ कर्मों में लगे रहते हैं। नित्य प्रति दुष्कर्मों को सिद्ध करने के लिए मुझसे वरदान माँगा करेंगे, अतः प्रभु की प्रबल प्रेरणा से एक छोटा बालक आता हुआ दिखाई पड़ा, विभीषण ने उसको भगवान की मूर्ति देते हुये कहा—"देखो, इस मूर्ति को भूमि पर मत रखना, मैं लघु शंका करके आ रहा हूँ। जब बहुत देर तक विभीषण नहीं आया, तब कावेरी के मध्य टापू में उसने भगवान का विग्रह रख कर चला गया। जब विभीषण आया, देखा, भगवान लेटे हुये हैं, बहुत उठाना चाहा पर वह क्यों उठते? इधर कावेरी के मन की अभिलाषा को पूर्ण किया, उधर राक्षसों के अधीन होने से अपने को बचाया। इसीलिए कहा जाता है कि भगवान की इच्छा से अनहोनी भी होनी हो जाती है और जबरदस्ती उनसे कुछ माँगने पर आ करके भी वस्तु चली जाती है।

कन्याकुमारी में त्रिमूर्ति का मन्दिर प्रसिद्ध है एवं दुर्गा जी ने कन्या स्वरूप में समुद्र तट पर जो तपस्या करी थी उसका भी एक विशाल आकर्षक मंदिर

है। किसी तपःस्थली में पहुँच कर जिस प्रकार शान्ति मिलती है उसी प्रकार कन्याकुमारी के मन्दिर में बैठने से परम शान्ति मिलती है। प्रभु की ओर से कन्याकुमारी देवी की पूजा अर्चना हुई थी। देवी की मूर्ति श्याम वर्ण की है। नित्य पंचामृत से स्नान कराकर सम्पूर्ण मूर्ति में चन्दन का लेप करके शृंगार किया जाता है। सायंकाल का दीप-दर्शन अद्‌भुत ही शोभनीय प्रतीत होता है। कन्याकुमारी में तीन समुद्र का संगम है। जिस संगम में स्वामी विवेकानन्द ने सदा के लिए संसार से विश्राम ले लिया था, आज भी उस तट पर उनका शान्तिदायक स्मारक बना हुआ है।

त्रिचन्दूर में समुद्र के किनारे बहुत विशाल अद्वितीय कार्तिकेय जी का मंदिर है जहाँ पर बारहो मास दर्शकों की अपार भीड़ लगी रहती है, लेकिन मंदिर इतना बड़ा है कि सहस्रों लोगों के भर जाने पर भी विशेष कुछ पता नहीं चलता। समुद्र-तट भी खुला हुआ है। त्रिवेन्द्रम में पद्‌मनाभ जी का प्राचीन मन्दिर है, वह भी दर्शनीय है।

तनजावर में देवी जी का विशाल मंदिर है। वहाँ पर श्री गुरुदेव जी का स्वागत मंदिर के ट्रस्ट की ओर से हुआ था। जितने भक्त थे उन सभी का पुंगम (मद्रासी भात दही में डालकर बनाया जाता है) तथा चाय से स्वागत किया गया।

दक्षिणी भक्तों की अपार भीड़ श्री गुरुदेव जी के स्वागत के लिये उपस्थित थी। सर्वप्रथम उन लोगों ने महाप्रभु का पूजन किया। प्रवचन के लिये मंच तैयार था। बहन जगदम्बिका एवं शिवाजी ने श्री प्रभु के आदेश से मय्या का भजन गाया। थोड़ी देर कीर्तन हुआ। उन लोगों के बहुत आग्रह करने पर श्री गुरुदेव जी ने हिन्दी में प्रवचन किया। उसको हरीहरन भय्या ने तामिल भाषा में अनुवाद करके सबको समझाया।

मदुराई में स्वागत :—मदुराई में श्री गुरुदेव जी का प्रबन्ध मीनाक्षी रोलर मिल में था। मीनाक्षी मिल के मालिक गुप्ता जी की ओर से दो सौ भक्तों के निवास करने तथा प्रभु के निवास का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध तथा

स्वागत हुआ। गृहस्थ भक्तों के लिये बरातियों जैसा उन लोगों ने स्वागत किया। वहाँ पर श्री गुरुदेव जी का प्रवचन भी हुआ। मदुराई में मीनाक्षी देवी का विशाल मंदिर है।

गुरुवायु में श्रीकृष्ण का मंदिर है। इस प्रकार से इन स्थानों के अतिरिक्त अन्य अनेक अद्भुत मंदिरों का दर्शन किया। रंगनाथ में शंकर जी का विशाल मंदिर है। वहाँ पर जम्बू वृक्ष का दर्शन किया। जम्बू वृक्ष के इतिहास से ज्ञात होता है कि यह वृक्ष सृष्टि के आदि काल से चला आ रहा है। बहुत नीचे गुफा जैसे स्थान में जाकर एक छोटा सा शंकर जी का मंदिर है। उस मंदिर में जल भरा रहता है। स्वयं पाताल से जल महीन धारा के द्वारा फूट कर शंकर जी की जलहरी को भरे रहता है। कई वर्ष व्यतीत हो जाने के कारण यात्रा का समस्त विवरण अब स्मरण नहीं है।

मद्रास से कुछ ही दूर पर एकान्त स्थान में बहुत विशाल, भूतनाथ जी का मंदिर है। इन मंदिरों के गुम्बज आकाश से बातें करते हैं। कहते हैं कि यह मंदिर शंकर जी द्वारा विश्वकर्मा को आदेश देने पर भूतों के द्वारा एक रात्रि में बनाया गया था। मंदिर बनाते-बनाते ही प्रातः हो जाने के कारण सब भूत तो अदृश्य हो गये थे। जो कुछ शेष रह गये थे वह खम्भों में प्रवेश कर गये। अतः मंदिर के खम्भों में कान लगाने से अब भी कुछ आवाज आती है।

मार्ग में ही एक मंदिर ऐसा था जिसका नाम स्मरण नहीं है। उस मंदिर में जितने खम्भे हैं सभी में संगीत के विभिन्न साजों की बहुत ही मधुर आवाज आती है।

दक्षिण के मंदिरों का स्वागत :— दक्षिण में प्रायः जितने भी विशाल मंदिर हैं सभी में मंदिर के मूल फाटक पर मंदिर की ओर से शहनाई बाजा बजा कर, साथ में मशाल जलाकर, माला पुष्प धारण करा कर, वह लोग मंदिर की परिक्रमा कराते हुये श्री गुरुदेव जी को देव-स्थान में ले जाते थे। बहुत से मंदिर वाले ऐसा कहते थे कि हम लोगों को मन में ऐसी प्रेरणा होती है मानो शंकराचार्य जी पधारे हैं।

रामेश्वरम् दर्शन :— रामायण जितना प्राचीन है उतना ही प्राचीन रामेश्वरम भगवान का मंदिर है। रामेश्वरम से तात्पर्य राम का ईश्वर अर्थात् वह पवित्र स्थान जहाँ भगवान श्री राम के द्वारा स्वयं ईश्वर की प्रतिष्ठा की गई। कहा जाता है कि रावण का वध करने से लगे ब्रह्महत्या के दोष से निवृत्त होने के लिये श्रीराम ने ऋषि मुनियों की सलाह से श्री माता सीता एवं श्री लखनलाल जी सहित यहाँ पर शिवलिंग की स्थापना कर पूजा की थी। (रावण ब्रह्मा का पौत्र था इसलिये ब्राह्मण था)। शिव जी की मूर्ति की स्थापना करने के लिये विशेष मुहुर्त निकाला गया था और शिवलिंग को लाने के लिये श्री हनुमान जी को कैलाश भेजा गया था, लेकिन सुदूर कैलाश से मूर्ति लाने में विलम्ब होने के कारण जगतमाता ने बालू का ही शिवलिंग बनाकर मूर्ति प्रतिष्ठा कर दी। हनुमान जी के आने पर भगवान ने उनको सन्तुष्ट करने के लिये उनके लाये हुये शिवलिंग को भी पास में ही स्थापित करते हुये आदेश दिया कि पहले हनुमान के लाये हुये शिवलिंग की ही पूजा अर्चा करनी होगी। बारह ज्योतिर्लिंगों में यह भी एक लिंग गिना जाता है जिसको राम लिंग कहते हैं।

मंदिर के अन्दर बाइस तीर्थ कुओं के रूप में हैं :— मंदिर के बाहर भी इक्कीस तीर्थ हैं जो भग्न रूप में यत्र-तत्र हैं जहाँ यात्रियों का पहुँचना दुष्कर है। सेतु तीर्थ का स्नान और रामेश्वरम का दर्शन अपने लिये विशेष महत्ता रखता है। भारत के मुख्य चार धामों में रामेश्वरम एक मुख्य धाम है। कहते हैं राज्याभिषेक होने के पश्चात् भी भगवान श्री राम ने एक बार इसकी पूजा आकर की थी। भगवान बलराम भी यहाँ पर पधारे थे। पाँचों पांडव पूजा करने के हेतु यहाँ पर आये थे। रामेश्वरम का रामनाथ मंदिर ही शिवस्थल है। रामेश्वरम में श्री रामनाथ मंदिर के साथ अन्य छोटे-छोटे कई मंदिरों के दर्शन पुजारियों द्वारा कराये जाते हैं। उन मंदिरों के दर्शन करने का भी महान पुण्य है।

महाप्रभु के पूजन करने का विशेष प्रबन्ध पहले से ही किया गया था। पुजारी लोग स्वयं स्वागत के साथ प्रभु को मंदिर में ले गये। साथ में आये हुये सभी भक्तों ने सुविधापूर्वक भगवान का दर्शन किया और उनकी भेंट सामग्री के द्वारा अर्चा पूजा हुई।

अग्नि से रक्षा :—भगवान रामेश्वरम की आरती करने के लिये एक बड़े थाल में आरती सजा कर आरती उतारी जा रही थी। साथ में कई भक्त लोग भी अपनी-अपनी आरती सजाकर आरती उतार रहे थे। भीड़ के धक्के से पता नहीं किस भक्त की समस्त आरती की बत्ती हमारी गोद में आकर गिर पड़ी। प्रभु की ऐसी अपार कृपा हुई कि आग लगनी तो दूर रही, धोती लाल तक नहीं हुई।

इस प्रकार से सकुशल परम आनन्द के साथ दक्षिण के तीर्थों का दर्शन करते हुये महाप्रभु भक्तों के साथ बैंगलोर पधार गये।

बैंगलोर में प्रभु का अधिक मास और वर्षा का रुकना :— चौदह जून से अधिक मास प्रारम्भ होने वाला था। १२ जून को प्रभु त्रिवेन्द्रम होते हुये मोटर के द्वारा बैंगलोर पहुँचे। बैंगलोर में कृष्णलाल पोद्दार की ओर से प्रभु के स्वागत एवं आतिथ्य का प्रबन्ध था। जमुना बहन जी वहाँ पर पहले से ही पहुँच चुकी थीं। कनिंघम् रोड पर श्री राम मंदिर में प्रभु विराजे थे। प्रभु के पहुँचते ही नवीन-नवीन दर्शकों का आना जाना प्रारम्भ हो गया। सत्संग का कार्य-क्रम बाहर मंडप में रखा गया। पूजन, कीर्तन एवं अनुष्ठानिक कार्यक्रम मंदिर के हाल में रक्खा गया था। जेष्ठ का मास था। इस मास में प्रयाग में भीषण गर्मी पड़ती है। सरोवरों एवं कूपों के जल तक सूख जाते हैं लेकिन बैंगलोर में उस समय वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो चुकी थी। हर समय निर्झर वर्षा होती रहती थी। ठीक सत्संग के समय वर्षा बन्द हो जाती और प्रातः से ही वर्षा प्रारम्भ हो जाती। अधिक मास के निर्विघ्न अनुष्ठान की पूर्ति के लिये बड़ी भारी समस्या उपस्थित हो गई। भक्तों ने प्रभु से विनय किया कि हम लोगों का अनुष्ठान कैसे पूरा होगा। आप

जैसे महापुरुषों का दर्शन ही महान दुर्लभ है, फिर उनके संरक्षण में शुभ कर्मों को करना, सत्संग में भाग लेना आदि और भी दुर्लभ है। गुरुदेव भगवान ने कहा, अच्छा ठीक है, इक्कीस दिन के लिये पानी देवता कृपा कर देंगे। वह भी तो भक्तों की जिज्ञासा को समझते हैं अतः पानी नहीं बरसायेंगे। इक्कीस दिन तक आकाश मंडल बिल्कुल निर्मल रहा, ठीक से बादल तक नहीं लगा। इक्कीस दिन समाप्त होते ही बाइसवें दिन ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि भक्तों को घर से निकलना दुर्लभ हो गया। फिर सब भक्तों ने मिलकर प्रभु से प्रार्थना की कि भगवान् आप वर्षा को रोकिये। इस प्रकार वर्षा होती रहेगी तो हम लोगों को आपके बैंगलोर पधारने का क्या लाभ मिलेगा। उन लोगों की प्रार्थना पर पुनः जब तक प्रभु ने बैंगलोर में निवास किया वर्षा रुकी रही। इस पर वत्तन लाल पिता जी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा—"हमने आज तक ऐसी दिव्य विभूति का दर्शन नहीं किया था। मुझे अपने भाग्य पर बड़ा ही गर्व है कि मैंने कोई महान पुण्य किया था जिसके फल-स्वरूप ऐसी त्यागी, तपस्वी एवं ज्ञान से ओत-प्रोत मूर्ति का दर्शन पाया।"

महारानी मैसूर ने प्रभु को अपने राजमहल के मंदिर में ले जाने के लिये बहुत आग्रह किया, परन्तु इस प्रकार से प्रभु का कहीं जाने का नियम न होने के कारण नहीं पधारे।

बैंगलोर से थोड़ी दूर पर मैसूर स्टेट में चामुंडा देवी का प्राचीन मंदिर है, वहाँ पर दर्शन करने के लिये पधारे थे।

बैंगलोर के कुछ प्रवचनों का सार

मानव वृथा में अज्ञान के वशीभूत होकर संसार के सम्बन्धियों को तथा प्रत्येक परिस्थितियों को सत्य मान कर उसके वास्तविक स्वरूप को भूल कर शोक और मोह के गड्ढे में गिर जाता है। आत्मतत्व में द्वैत की कल्पना करके जन्म-मरण के घेरे में बंधा रहता है। परमार्थ तत्व का सच्चा ज्ञान न होने के कारण असत्य मरने जीने वाले शरीर को अमर समझता है। इसी

कारण से जीव अपने सम्बन्धियों के दुख-सुख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु को देखकर हर्ष अमर्ष को प्राप्त होते हैं। प्राणी मात्र का दुख-सुख प्राप्त होना प्रारब्धाधीन है। देहाभिमानी पुरुष संग्रह-परिग्रह के चक्कर में पड़कर वस्तुओं की आसक्ति के कारण परमात्म तत्व की खोज करना भूल जाता है। मस्तिष्क में यह विचार नहीं आ पाता कि मैं देह नहीं आत्मा हूँ। मुझको आत्मवान होना चाहिये। इस प्रकार की आत्म-भावना को तत्वज्ञ गुरु ही शिष्य में जाग्रित कर सकता है। गीता के दूसरे अध्याय के ७ वें श्लोक में देखिये।

कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढ चेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

अर्जुन का दिल व मस्तिष्क जब कर्तव्य और अकर्तव्य के भ्रम में भ्रमित सा हो गया तब भगवान कृष्ण जो स्वयं साक्षात ब्रह्मगुरु थे उनकी शरणागति ली और उन्होंने उनकी शंकाओं का समाधान किया।

मानव के मन को जब मोह ग्रस लेता है तब उसकी समझ में अच्छा बुरा तथा कुछ दिखाई नहीं पड़ता, वह विवेकहीन हो जाता है, जिस प्रकार अन्धकार के छा जाने पर दृष्टि का तेज भी नष्ट हो जाता है और पास में रखी हुई वस्तु भी नहीं दिखाई पड़ती। संसार के सारे कार्य का संचालक मन है। मोह के कारण मन रूपी भँवरा, भ्रम के भंवर में पड़ जाता है और वह स्वयं यह निर्णय नहीं कर पाता कि किस काम को करने से उसका वास्तविक हित होगा। इसीलिये ऐसे समय में यदि सच्चा गुरु मिल जाता है तो भ्रम में पड़े हुये मन का समस्त अज्ञान ज्ञान रूपी छुरी से काट देता है। सच्चा गुरु कभी अपने शिष्य की उपेक्षा नहीं करता, जिस प्रकार समुद्र नाला हो अथवा नदी, सबके गुण अवगुण को अपने में समाहित कर लेता है और शरणागतों को शरणार्गति दे देता है।

गुरु ही ऐसे मार्ग का दिग्दर्शन कराते हैं जिससे धर्म की मर्यादा सदा जीवित रहे। सांसारिक प्राणियों में तो ज्ञान का अभाव रहता है, वह अज्ञान के अन्धकार में अमर्यादित कर्म भी कर देते हैं, लेकिन गुरु अपने वचन और

कर्म के द्वारा उन सब बातों को मिटा कर ज्ञान की जाग्रिति करके जीवों का मन हरि चरणों में लगा देते हैं। गुरु की कृपा से ही जीवों की बुद्धि सुप्लवित होती है, उनकी दया मरते हुओं को संजीवन बूटी देती है। मन भ्रान्ति की लहर एवं महामोह के सर्प से जब ग्रसित कर लिया जाता है उस समय करुणा रस से ओत-प्रोत गुरु का ज्ञान ही समस्त दुखों से छुटकारा दिलाता है।

जब गुरु शिष्य की अज्ञानता में प्रावल्यता देखता है तब वह पारी-पारी से शाम, दाम, दंड, भेद की चारों युक्ति प्रयोग में लाकर शिष्य को सतपथ का अनुकरण कराता है। जिस प्रकार माता के क्रोध में भी वात्सल्यता छिपी रहती है, औषधि के कड़ुआहट में भी निरोगता छिपी रहती है उसी प्रकार गुरु यदि सच्चा हितैषी है तो कभी-कभी उसका व्यवहार अपमानजनक अवश्य प्रतीत होता है, लेकिन उसमें शिष्य का वास्तविक हित छिपा रहता है। कभी-कभी शिष्य में मिथ्या अहं की जाग्रिति हो जाती है, उस समय गुरु बड़ी ही युक्ति से उसके अहं को मारकर सत्य की ओर लगाता है।

असत्य संसार जो सत्य भासता है वह माया की प्रबलता के कारण। माया उस प्रबल वायु की तरह है जो जल का दो भाग कर देती है। पवन के वेग के कारण ही जल के दो नाम पड़ गये हैं—जल और तरंग। यदि वायु न रहे तो जल स्वयं शान्त और शीतल होकर एक स्वरूप में बहता रहता है। इसी प्रकार शाश्वत चैतन्य आत्मा एक ही है जो प्रत्येक शरीर में वही रहती है, केवल शरीर का रूपान्तर होता है। इसके सच्चे भेद का ज्ञान और अनुभुति गुरु के द्वारा ही प्राप्त होती है।

गुरु नानक जी ने कहा है—

शब्द ही कुंजी, शब्द ही ताला।
शब्द ही शब्द, भयो उजियाला॥

गुरु की महावाणी ही शास्त्रों की कुंजी है। वेदों के शब्दों में जो ताला पड़ा हुआ है, उसके गूढ़ तत्व का खोलनहारा श्री सद्गुरु ही है। जिस तत्व से भगवान की प्राप्ति होती है उस तत्व को जानने वाला स्वयं भगवान हो

जाता है। मूढ़ लोग इस रहस्य को नहीं जान सकते। गुरु को कोई पुन्यवान ही पहिचान पाता है। क्योंकि वह जगत में बहुरूपिया वेष बना कर रहता है। वह ज्ञान स्वरूप होते हुये भी सद्कर्मों का भूषण पहन कर चलता है। सद्कर्मों के द्वारा ही जीव का अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण में ही ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

मानव विशेष कर्म न भी कर सके तो उसे नित्य कर्म में निस्पृह भाव से सदा प्रवृत्त रहना चाहिये। नियम में वड़ी भारी शक्ति है। नियम एक प्रकार की सिद्धि है। किसी भी शुभ कर्म को कुछ दिनों तक नियमपूर्वक करते रहने से वह किसी वड़े अनुष्ठान की सिद्धि के सदृश फल देने वाला हो जाता है। यद्यपि नियम निभाना अति ही दुस्तर है, जिस प्रकार रास्ते की सुविधा के लिये भोजन की गठरी बांध कर चलना तो कठिन मालूम पड़ता है, लेकिन भूख लगने पर कितनी सुविधा से क्षुधा की निवृत्ति होकर आगे जाने के लिए वल मिल जाता है। लोक और परलोक को शुभ वनाने के लिए मनुष्यों को कुछ न कुछ नियम अवश्य वनाना चाहिए। वहुत से मनुष्य शारीरिक कष्टों के भय से शुभ कर्मों को करना छोड़ देते हैं और कुछ लोग अपने जीवन में किसी भी नियम का बन्धन नहीं लेना चाहते। वहुत से लोग कर्मों में प्रवृत्त रहना साधकों का काम बतलाते हैं, लेकिन ऐसा कहने वाले महामूर्ख जड़ बुद्धि के हैं, क्योंकि मानव जब तक जीवित है तब तक उसकी शारीरिक क्रिया चलती ही रहती है। विना भोजन करे वह रह नहीं सकता, बिना सोये वह रह नहीं सकता, शरीर के द्वारा होने वाली जितनी भी क्रियायें हैं, चाहे आँखों का पलक मारना ही हो, वह सब कर्म के अन्तर्गत आता है। जिस समय आत्म-ज्ञान रूपी सूर्य पूर्ण रूप से उदय हो जाता है और क्रियाओं का स्वतः ही लोप हो जाये, वह सच्चा कर्म-त्याग है। जो अज्ञान के कारण आलस्य के वशीभूत होकर, अपने को महान बतलाने के लिए कर्म का त्याग करता है, वह राजस त्याग है, जिस त्याग को शास्त्र में निषेध किया गया है। देव, मनुष्य और स्थावर का ही नाम संसार है। और ये तीनों ही कर्म-फल के प्रकार हैं। ये कर्म-फल तीन प्रकार के होते हैं--१. अनिष्ट, २. इष्ट, ३. इष्टानिष्ट।

१–जब बुद्धि विषयों में लिप्त हो जाती है और जीव अधर्म में प्रवृत्त होकर नीच कर्म करने लगता है तब वह कीड़े मकोड़े, मिट्टी, पत्थर, वृक्ष आदि की योनियाँ प्राप्त करता है। यह अनिष्ट कर्मों का फल है।

२–जब जीव स्वधर्म का सम्मान करते हुए अपने कर्तव्य एवं अधिकार की ओर दृष्टि रखते हुए वेद शास्त्रानुसार पुण्य कर्मों का आचरण करता है तब इन्द्रादि देव शरीर की प्राप्ति होती है और सुख-भोग तथा ज्ञान मिलता है। यह इष्ट कर्मों का फल है।

३–जब सत्य और असत्य के मिश्रण से अथवा शुभ एवं अशुभ फल के मिश्रण से कर्म की सृष्टि होती है, उसी के योग से मनुष्य देह की प्राप्ति होती है। इसी को कर्मों का इष्टानिष्ट फल कहा जाता है।

जगत में कोई भी किसी का नहीं है, केवल कर्मों के संयोग से परस्पर में एक दूसरे का सम्बन्ध जुटा हुआ है। जिस समय कर्म का खेल समाप्त हो जाता है, एक दूसरे से जीव पृथक हो जाता है, इसीलिये कर्मों के आचरण पर सदा कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए। किये हुये कर्मों का फल जीवों को अवश्य भोगना पड़ेगा, उसे किसी प्रकार नहीं टाला जा सकता। जिस प्रकार कोई सत्ताधारी साहूकार किसी कर्जदार के पास उसके वादे पर अपना कर्ज वसूल करने के लिए आता है और उस समय कर्जदार बिना उसे रुपये दिये किसी तरह अपना बचाव नहीं कर सकता। जिस प्रकार ज्वार बाजरा की बाल में से निकल कर जमीन में गिरे हुए दाने फिर भी वही अन्न उत्पन्न करते हैं, जो बालों से गिर चुका है। पुनः उन अनाज की बालों से जो दाने गिरते हैं, वे फिर वही अन्न उत्पन्न करते हैं। ठीक उसी प्रकार जीव जिस समय एक फल भोगता है, तब वह साथ ही दूसरे अनेक कर्म-फल उत्पन्न करता रहता है। इसीलिए कर्म करत समय कर्म-फल की इच्छा नहीं रखनो चाहिए। कर्म-फल की इच्छा न रखने से भी फल तो शुभ मिल ही जायेगा, लेकिन स्वयं कर्त्ता अकर्त्ता बना रहना है और किसी प्रकार का दोष नहीं लगता। जिस प्रकार से विषाक्त वनस्पतियों की खेती करने वाला वनस्पतियाँ दूसरे के हाथ बेचकर

धन प्राप्त करके सुख भोगता है, जो लोग मूल्य देकर उन वनस्पतियों को खरीदते हैं और उनका सेवन करते हैं वही अपने जीवन से हाथ धोते हैं।

गुरु-कृपा ही जगत के भ्रम और अज्ञान के तुषार से बचा सकती है। ज्ञान प्रधान सन्यास सर्वश्रेष्ठ है। जैसे नींद खुल जाने से स्वप्न स्वयं नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान प्रधान सन्यास से मूल अविद्या के जीवन का अन्त हो जाता है, तब उसका कार्य जो कर्म-फल का लेन-देन है स्वतः ही नष्ट हो जाता है, इसीलिए सब लोगों को गुरु की शरण में आकर अविद्या की गाँठ खोलनी चाहिये।

राम नाम का इतना महत्व क्यों :—किसी भक्त ने एक दिन श्री गुरुदेव भगवान से पूछा कि प्रभो ! राम के नाम की इतनी महिमा क्यों कही गई है ? राम के नाम में ऐसी कौन सी शक्ति निहित है, आप कृपा करके मेरी जिज्ञासा को शांत करिये।

प्रभु ने कहा—"आपने बहुत सुन्दर प्रश्न किया। एक की जिज्ञासा रहती है, अनेकों का उससे लाभ हो जाता है। यों तो भगवान के नाम की अनन्त महिमा है। नाम महिमा का वर्णन सहस्त्र जिह्वा के शेषनाग भी नहीं गा सके। फिर अन्यों की तो बात ही नहीं कही जा सकती। राम शब्द में तीन अक्षरों का समावेश है।

र+आ+म

र—अक्षर सूर्य की शक्ति रखता है।

आ—अक्षर अग्नि की शक्ति रखता है।

म—अक्षर चन्द्रमा की शक्ति रखता है।

अर्थात् राम शब्द के अन्दर सूर्य, चन्द्र और अग्नि की शक्ति निहित है। राम नाम के जापक को तीनों शक्तियों का महान तत्व प्राप्त होता है। सूर्य ज्ञान को उत्पन्न करता है, अग्नि पाप का नाश करती है, चन्द्रमा अमरत्व प्रदान करता है। इसीलिए राम नाम की इतनी बड़ी महिमा है। एक ही नाम के द्वारा अनन्त तत्व की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार से—

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवा महेश्वरः ।
गुरुस्साक्षात परः ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

गुरु ब्रह्मा—गुरु ब्रह्मा क्यों कहलाता है ? वह जीवों में सद्वृत्ति की सृष्टि करता है । नास्तिक को आस्तिक बनाता है । जीवों को असद् सृष्टि से सद् सृष्टि में लाता है । इस प्रकार से वह ब्रह्मा का कार्य अर्थात् उत्पत्ति का कार्य करता है ।

गुरु विष्णु—गुरु जिज्ञासुओं का योग-क्षेम करता है । उनकी सद्वृत्तियों को बनाये रखता है । हर प्रकार से उनका पालन करते हुये लोक-परलोक बनाने की चेष्टा करता रहता है । विष्णु का कार्य पालन करना है । इस प्रकार से गुरु भक्तों का पालन करता है ।

महेश्वरः—गुरु अवगुणों का संहार करता है । असद् वृत्तियों को जड़ से उखाड़ फेंकता है । इसीलिए वह महेश कहलाता है । महेश सृष्टि का संहार करता है ।

गुरु साक्षात्—ईश्वर अन्तर्यामी रूप से समस्त प्राणियों में है, लेकिन गुरु में प्रत्यक्ष रूप से चैतन्य दिखाई पड़ता है अर्थात् गुरु में प्रत्यक्ष दर्शन होता है ।

परः ब्रह्म—समस्त प्राणी ब्रह्म स्वरूप हैं, लेकिन गुरु उनसे परे है । वह परात्पर और परम है । साधारण प्राणियों से श्रेष्ठ है ।

गुरु के मुख में ब्रह्म का वास है । उसके द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होने पर निज राम रूप की प्राप्ति हो जाती है । गुरु नियम निष्ठा सिखाता है, जिसके आचरण से उसके मुख का ब्रह्म तुम्हारे में समावेश कर जायेगा ।

देह अर्पण करो :—ऐसा लोग कहते हैं । देह अर्पण करने से तात्पर्य अपना आपा गुरु को अर्पण कर दो । गुरु को नम्रता और आज्ञापालन पसन्द है । आपा के साथ-साथ कुल परिवार, जाति पाँति, विद्या, धन का अहं स्वतः चरणों में चढ़ जायेगा अर्थात् मिट जायेगा । सभी भक्तों ने जब अपना सर्वस्व अर्पण किया, तब भगवान प्रत्यक्ष हुआ । ईश्वर से मिलने के लिए कुछ

भी नहीं करना है और सब कुछ करना है। एक साधारण राजा से मिलने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, फिर ईश्वर के साक्षात्कार के लिये क्या नहीं सहना पड़ेगा। नरहरि गुरु का दर्शन मिलने के पश्चात् उनकी आज्ञा पालन करना और आज्ञानुसार परम नम्र भाव से सेवा करनी ही शेष रह जाती है। पतिव्रता नारि के लिये माला हिलाकर एक कोने में बैठने को शास्त्र नहीं कहता, उसकी सेवा करने को कहता है। उसी प्रकार परम-पति रूप ब्रह्म साक्षात गुरु के मिलने पर निस्पृह और पवित्र भाव से युक्त हो कर उसकी सेवा करना ही परम धर्म है। उसकी सेवा से तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्वज्ञान के द्वारा निज स्वरूप का बोध होता है। जिस प्रकार गोद में सर्प गिरते ही पहले उसको हटाना अनिवार्य समझा जाता है, उस समय यह नहीं सोचा जाता कि यह कहाँ से आया, किसने फेंका और कितना लम्बा चौड़ा है ? इसी प्रकार साधनों को, तत्वज्ञ गुरु को प्राप्त करते ही सर्वप्रथम उससे आत्मवान होने का साधन समझें, सीखें और करने का अभ्यास करें। आत्म-वान हो जाने के पश्चात अर्थात् माया-सर्प से मुक्त हो जाने के पश्चात अन्य धर्मग्रन्थों को धर्म की जानकारी करने के लिये पढ़ना चाहिये। पहले मन को भटकने से स्थिर कर लेना बुद्धिमानी है।

श्री गुरुदेव जी की जगन्नाथ यात्रा एवं कलकत्ते में विष्णु महायज्ञ :— बैंगलोर के कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात प्रभु जगन्नाथ जी की यात्रा के लिये कलकत्ते पधारे। कलकत्ते में प्रभु लगभग डेढ़ मास रहे, कुछ दिन जहाज कोठी सुरेका उद्यान में, कुछ दिन कैमिक स्ट्रीट में। वहीं से वायुयान के द्वारा प्रभु जगन्नाथपुरी के दर्शन के लिये पधारे थे।

कलकत्ते में प्रभु ने लोक-हित के लिये विष्णु महायज्ञ भी किया था।

चोर स्वयं करेन्ट में चिपक गया :— सुरेका उद्यान बैलूर में है। जिस स्थान पर उद्यान है, उस उद्यान की चहारदिवारी के बाहर चारों ओर कुछ असद् वृत्ति वालों का वास है, जिनका काम दिन में शाह बने रहना रात्रि को तारों को काटना है। बहुत से अच्छे सज्जन सत्संगी गुरु के चरणों

में भक्ति रखने वाले भी हैं। यह तो अनादि काल से चला आ रहा है कि जहाँ सद्वृत्ति के सज्जन लोग निवास करते हैं, वहाँ साथ में दुर्जनों का भी वास हो ही जाता है। एक ही तालाब कमल और जोंक दोनों का सृजन करता है। नित्य प्रति सायंकाल में सत्संग के पश्चात अपनी प्रकृति के अनुसार खूब फलों को लुटाया करते थे। साथ में बच्चों को टौफियाँ मँगवा कर बांटा करते थे। एक दिन बाल भोज करवाया। एक दिन सार्वजनिक भंडारा हुआ। इस प्रकार के वैभव को देखकर अधर्मियों ने मन में सोचा कि इन लोगों के पास खजाना भरा है, यह नहीं विचारा कि महापुरुष संग्रह नहीं करते, भक्तों का चढ़ाया हुआ भक्तों में ही लुटा देते हैं।

रात्रि बारह बजे चौकीदार आया और भक्तों को सावधान रहने के लिये प्रार्थना की। भगवान गुरुदेव के कानों में उसकी बातें सुनाई पड़ीं। भगवान गुरुदेव अपनी कुटी से बाहर निकल आये और बोले—"क्या बात है, किस बात का डरना है? जिसको आना हो आये, सब रूपों में मेरे गुरुदेव ही तो हैं।" इतनी बात कहकर ज्योंही श्री गुरुदेव भगवान अपने शयनागार में पधारे त्योंही चारों ओर की बिजली बुझ गई। चौकीदारों ने चारो ओर टार्च लेकर पता लगाना चाहा कि किधर से बिजली बन्द हुई है, परन्तु कुछ भी पता नहीं चला। रात्रि भर सब भक्तजन भगवान का नाम स्मरण करते रहे, प्रातःकाल लोगों ने देखा कि जहाँ से बिजली बुझाने के लिये तार काटा गया था, ठीक उसके नीचे एक आदमी मरा पड़ा है और एक आदमी ऊपर ही मुख्य करेन्ट के खम्भे में चिपका हुआ है। बाद में भोला भय्या ने बतलाया कि प्रसाद बांटते समय यह व्यक्ति नित्य झगड़ा करता था और उस दिन चौकीदार को मारने की भी धमकी दी थी।

महापुरुषों का हृदय महान होता है, गुरुदेव ने कहा—"भले वह पहनने के कपड़े ले जाना चाहता था तो ले जाता, लेकिन बेचारे की जान न जाती और उसका परिवार अनाथ न होता तो ठीक रहता। प्रभु की इच्छा के समक्ष किसी का कुछ भी नहीं चलता।"

प्रभु की द्वारकाधीश की यात्रा :—१९७० में प्रभु श्री द्वारकानाथ के दर्शन के लिये पधारे। द्वारका जी जाने के लिये वायुयान द्वारा बम्बई का मार्ग ही मुख्य मार्ग था। कुछ दिन प्राचीन मार्केश्वर भगवान के मंदिर में निवास किया था। मार्केश्वर भगवान का घी का बहुत सुन्दर शृंगार होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हिमखंड से निर्मित मूर्ति है। एक दिन प्रभु ने भी अपनी ओर से घी का शृंगार और स्वयं विधिवत भगवान की पूजा अर्चना की थी।

बम्बई में दो वार श्री विष्णु महायज्ञ सम्पादित किया गया। प्रथम यज्ञ ग्वालियर पैलेस समुद्र महल के उद्यान में हुआ था। दूसरा यज्ञ अंधेरी लक्ष्मी स्टेट में हुआ। यहाँ पर जन कल्याण हेतु दो वार भागवत सप्ताह भी करवाया था। यज्ञ के द्वारा स्वर्ग सुख मिलता है यह सभी जानते हैं। यज्ञ के प्रति लोगों का आकर्षण भी होता है। धर्म-कर्म में उनकी सम्पत्ति भी लग जाती है। इस प्रकार से उनको पुण्य मिल जाता है। साथ-साथ में प्रवचन सुन लेने से ज्ञान की जाग्रिति होती है। जिस प्रकार से लाटरी का टिकट खरीदते-खरीदते यदि एक दिन लाटरी में नम्बर आ जाता है तो लाटरी खरीदने वाला व्यक्ति मालामाल हो जाता है। सौ वार का खर्चा किया हुआ पैसा एक वार में अनन्त गुना होकर मिल जाता है। उसी प्रकार अनेक सद्कर्मों के फल से कोई भगवान के ज्ञान एवं भक्ति का अधिकारी भक्त बन जाता है तो महापुरुषों को संसार में अवतार लेने का फल मिल जाता है। श्री रामकृष्ण परमहंस के अनेक भक्त थे, उनमें से दस प्रमुख ब्रह्म के अधिकारी उनके योग्य पात्र थे, जिन्होंने सच्ची भक्ति का प्रचार किया, जीवों को सद्प्रेरणा प्रदान किया। उनमें से भी विवेकानन्द प्रधान थे जिन्होंने रामकृष्ण को रामकृष्ण के रूप में ही जगत को दर्शा दिया। इसीलिये सद्कर्मों के द्वारा महापुरुष मोक्ष के अधिकारी पात्र ढूँढ़ लेते हैं। मेरे भगवान गुरुदेव के दरबार में भी इसी प्रकार हमने देखा। यह सेवक, जमुना बहन जी, गौरी जी, घनश्याम जी, गायत्री जी ने त्रिवेणी जी में प्रभु का प्रथम दर्शन किया और कुछ दिन आने जाने के पश्चात ही शरण ग्रहण कर ली थी। हमने १९५३ में माघ मास में प्रथम

दर्शन किया था, वर्ष पूर्ण भी नहीं होने पाया था, तीन हिस्सा पढ़ना और पौने चार हिस्सा माता-पिता का सम्बन्ध छूट गया था। बाल्यावस्था होने के कारण दो चार मास तक कण भर सूत्र भय का रहता था कि वह लोग कुछ कहें न कि पढ़ाई छोड़कर सारा समय शिवकोटी में विताने का क्या मतलब है? अतः उन लोगों से न बतलाकर सत्संग और प्रभु दर्शन के लिये परम वैराग्य से ओत-प्रोत होकर शिवकोटी चले आते थे। प्रथम वार जब माता-पिता की ममता और असीम स्नेह की चहारदिवारी में रहना असम्भव हो गया, पढ़ने से भी मन पूर्ण उचाट हो गया तब बिना बतलाये, शरीर में पहने आभूषणों को उतार कर केवल एक तन का वस्त्र पहने हुये, जब सब लोग प्रातःकाल ५ बजे की निद्रा में सो रहे थे, गुरुदेव भगवान के पास चले आये। चलते समय माँ से कह दिया था कि गुरुदेव का दर्शन करने जाना है। यद्यपि उसके पश्चात एक धोती से पन्द्रह दिन तक व्यतीत करना पड़ा, लेकिन जिसको वह सुख अच्छा नहीं लगता, वह यह दुःख प्रभु का प्रसाद समझकर झेल लेता है। मुआ जी ने भी हमारे आने के एक मास पश्चात ही दर्शन किया था। शनैः-शनैः उनका मन इतना अधिक लग गया कि राजा साहब ने घर में आज्ञा निकाल दी कि उन्हें एक गिलास गर्म पानी भी महल से न दिया जाय, उधर श्री गुरुदेव जी ने भी कह दिया कि पति की सेवा करके तुम्हें घर में रहना ही शोभनीय है। परन्तु राजा साहब ने उसी घर में उनको अलग कर दिया। मुआ जी ने धन दौलत को त्याग दिया और एक दिन ऐसा समय आ गया कि हम दोनों एक साथ बैठकर सिंघाड़े की सूखी रोटी बांट कर खा लेते थे, कभी तो कच्चे पपीतों पर ही बिता लेते थे। पर दिल में परम उल्लास और प्रसन्नता थी। शरीर में अनन्त गुना शक्ति प्रतीत होती थी। जमुना जी ग्यारह दिन तक केवल एक कप चाय पीकर कलकत्ते में रहीं, तब उनके घर वालों ने यहाँ भेजा था। गायत्री जी इतनी डरपोक थीं कि घर वालों से कुछ बोल ही नहीं सकती थीं। माता थी नहीं, बहन ने कहा अभी तो माता का स्वर्गवास हुआ है। कैसे आश्रम में रहने के लिये कह दें, इसीलिये दो दिन कुछ न खाकर बैठी रहीं, तब तीसरे दिन उसके जीजा जी पहुँचा गये। लेकिन गुरुदेव महाप्रभु की

ऐसी शक्ति है कि गूंगे को भी वेद पढ़ा देते हैं। एक बार भगवान गुरुदेव ने गायत्री से कहा--"तुम्हें और गिरधर को दरभंगा धर्म-प्रचार के लिये जाना है, साथ में विष्णु देवी जायेगी। गावत्री और गिरधर प्रवचन करेगी।" गुरुदेव भगवान के सभी भक्तों को मालूम है कि यह दोनों विशेषतः गुरुदेव जी की निजी सेवा में रहती हैं। उन लोगों को इतना भी अवकाश नहीं मिलता कि कभी प्रवचन आदि में वैठ सकें। दोनों बहुत ही परेशान हुईं कि क्या करें, कैसे बोलेंगे ? गिरधर जो के तो आँसू वहने लगे। प्रथम तो प्रवचन की बात थी ही, साथ में दूसरा कारण यह भी था कि जव से प्रभु की शरण ग्रहण करी थी तब से पहली बार ही प्रभु से अलग हो रही थीं। हम लोगों ने बहुत समझा-बुझाकर उन लोगों को भेजा, क्योंकि प्रभु जव कोई कठिन आदेश देते हैं और उस आदेश का पालन करवाना जरूरी होता है तब वह विशेष बेरुखी एवं कठोर भाव दर्शाते हैं, जिससे कोई भी उनके समक्ष कुछ भी प्रार्थना न कर सके। विष्णु जी ने वतलाया कि दोनों ने अच्छी प्रकार से दो घंटे का कार्यक्रम चलाते हुये प्रवचन किया। गायत्री जी वहुत अच्छा उपदेश देती थीं जिससे लोग प्रभावित होते थे।

कभी-कभी यह सोच कर हमें स्वतः ही आश्चर्य होता है कि प्रभु अपना कार्य पूर्ण कराने के लिये भैंस को भी कैसे वेद पढ़ा लेते हैं। आश्रम में दो-तीन साधिकाओं के अतिरिक्त कोई भी हारमोनियम के सरगमों तक का ज्ञान नहीं रखता, लेकिन हारमोनियम पर प्रत्येक कीर्तन एवं भजनों की राग सब लोग स्वतः ही निकालते एवं वजाते हैं।

हमें भी अच्छी तरह याद है, १९५८ में श्री राम नाम महायज्ञ चल रहा था। लगभग दस हजार श्रोताओं की भीड़ रही होगी। प्रभु ने अचानक इस सेवक को आदेश दिया कि तुम गुरु महिमा पर कुछ बोलो। यह सुनते ही हमारे शरीर का आधा रक्त सूख गया। हमने कहा—"हम कैसे वोलें, आज तक न कभी कुछ बोला ही है, न कभी कुछ सुना ही है, केवल सेवा करना ही अपना धर्म समझते हैं। हम नहीं वोल सकेंगे। आज्ञा है तो माइक पर खड़े होकर जयकारा लगवा देंगे।" महाप्रभु ने कहा—यदि आज तुम नहीं बोलोगी

तो हम प्रसाद में जो भाजी पाते हैं वह भी नहीं पायेंगे। वड़ा भारी धर्म-संकट आ पड़ा। कुछ समझ में नहीं आये कि क्या करें? मन में सोचा, ओखली में सिर दे ही रखा है, नहीं बोल पायेंगे तो लोग हँसेंगे ही तो, लेकिन गुरुदेव भगवान तो प्रसाद पा लेंगे। ऐसा सोच कर माइक के सन्मुख जाकर खड़े हो गये। भगवान गुरुदेव का जयकारा लगवा कर जब बोलना प्रारम्भ किया तो पूरे एक घंटे तक बोलते चले गये। अन्त में श्री गुरुदेव भगवान को कहना पड़ा कि बस हो गया। प्रवचन के पश्चात् अन्य भक्त लोग कहने लगे, हम लोग यह समझे कि आप किसी किताब को पढ़ कर बोल रही हैं। कहीं पर जरा सा भी नहीं रुकीं। हमने कहा, यह गुरुदेव की कृपा है, वही हृदय के अन्दर बैठ कर बोल रहे थे।

भगवान गुरुदेव की शिष्या डाक्टर प्रेम मोहनी सिन्हा को जब भगवान गुरुदेव ने माइक पर बोलने को कहा तो उनके शरीर से पसीना छटने लगा। हमसे बोली, बतलाइये क्या करें। कैसे बोलें? हमारे में किताबी ज्ञान है, प्रवचन करने की शक्ति नहीं है। हमने कहा--"गुरु आज्ञा का पालन करना है, आपको गाना आता ही है, रामायण के एक दोहे को लेकर कुछ बोल दीजिये।" प्रभु की कृपा से ही परदे वाले परिवार में घूंघट निकाल कर चलने वाली महिला में इतना साहस आया कि पी० एच० डी० की डिग्री लेकर लेक्चरार बन गईं। यह साहस और सफल होने की शक्ति उनको श्री गुरुदेव जी से ही प्राप्त हुई।

आश्रम में एक देहाती कृष्णा नाम की शिष्या है जिसको क ख ग घ भी पढ़ना नहीं आता था, आज गुरु कृपा से उसको छह अध्याय भाषा गीता कंठाग्र हो गई एवं संस्कृत की गुरु गीता का पाठ करती है। आश्रम में अनाड़ी से अनाड़ी आते हैं परन्तु गुरु की ऐसी कृपा हो जाती है कि जिससे जो सेवा लेनी होती है, उसको वैसी ही शक्ति देकर सेवा पूरी करा लेते हैं। भोला भय्या तथा भैरव आदि ग्रामीण भक्तों ने गुरु शरण ग्रहण की थी, लेकिन आज बिना ट्रेनिंग के बड़े-बड़े बिजली के पारंगत मिस्त्री को भी मात कर देते हैं।

यदि आवश्यकता पड़ जाय तो सारी बिजली की फिटिंग एवं पम्पिग सेट फिट कर लेते हैं ।

भारतीय इतिहासों एवं पुराणों में जो घटनायें आती हैं कि अमुक महा-पुरुष की कृपा से ऐसा हुआ था, परन्तु हम लोग उन सब बातों का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि भगवान गुरुदेव सर्व सामर्थ्यवान हैं, जिससे जिस समय जैसा चाहें वैसा करा लेते हैं । हमको स्मरण है हम स्वयं एक दिन में १८ मील पैदल चले हैं । इतना पैदल चलाने का श्रेय श्री गुरुदेव जी की शक्ति को ही है । जिस वर्ष हम गुरुदेव जी की शरण में लगे थे उसी वर्ष की यह घटना है । माघ की पूर्णमासी का दिन था, प्रातःकाल दस बजे गुरुदेव जी के साथ पैदल झूंसी से शिवकोटी गये, किन्तु सामान लेकर पहुँचने वाले भक्त लोग जब मध्यान्ह दो बजे तक शिवकोटी नहीं पहुँचे तब अकेले ही गुरु आज्ञा से शिवकोटी से झूंसी पैदल उनको लेने आये । वह लोग वहाँ से जा चुके थे, अतः झूंसी से शिवकोटी पुनः अकेले पैदल लौटकर आये, लेकिन प्रभु की ऐसी महान शक्ति कि जरा सी भी थकावट नहीं प्रतीत हुई । ऐसा पता ही नहीं चला कि हम इतना चले हैं । यह किसकी शक्ति थी ? भगवान गुरुदेव श्री नारायण प्रभु की ही कृपा थी जो सेवकों से समय पर जैसी सेवा चाहें करा लें ।

पूज्य श्री गुरुदेव की श्री बद्रीनारायण जी की यात्रा १९७१ में :— बद्री नारायण यात्रा में जाने के पन्द्रह दिन पूर्व प्रभु ने इस सेवक को आज्ञा प्रदान करी कि तुम दिल्ली जाओ, वहाँ सत्संग करने तथा निवास करने के स्थान का प्रवन्ध, श्री वृन्दावन में पन्द्रह दिन निवास करने तथा सत्संग करने का प्रबन्ध करना, इसके पश्चात् हमारा प्रवास होगा । दिल्ली जैसे नगर में ऐसे संत महापुरुष के लिये प्रबन्ध करना जो न किसी के घर में निवास करे न घनी-बस्ती में रहे । निवास के लिए खुला स्थान होना चाहिये । मंदिर हो अथवा कोई बगीचा हो, अतः इन सब सुविधाओं का मिलना एक समस्या ही थी ।

सर्वप्रथम अपने ही निवास-स्थान के लिये कोई प्रबन्ध नहीं था। अचानक प्रभु जी की आज्ञा हो गई कि अमुक तारीख को तुम्हें जाना है। गुरु आज्ञा थी, हम लोगों ने वहाँ के एक भक्त डा० सरजू प्रसाद को फोन कर दिया कि अमुक ट्रेन से पहुँच रहे हैं, किसी मंदिर में रहने की व्यवस्था कर दीजियेगा, क्योंकि आपके घर में हम लोग नहीं ठहरेंगे। वह एक दिन की अवधि में कहाँ व्यवस्था करते ? इसके अतिरिक्त वह धार्मिक स्थानों से अनभिज्ञ भी थे। स्टेशन पर उनके सहोदर मोटर लेकर आ गये थे। चार घन्टे तक निवास के लिये स्थान खोजते रहे। सायंकाल ६ बजे एक मंदिर मिला जो पूर्ण रूप से निर्मित भी नहीं हुआ था। एक बड़ा प्रवचन हाल और बरामदा बन चुका था, लेकिन उनमें दरवाजे नहीं लगे थे। गुरु सेवा में आये थे। अपने शरीर की सेवा से तात्पर्य तो था नहीं, उसी मंदिर की शरण हम लोगों ने ली। माघ की पूर्णिमा के दिन हम लोग वहाँ पर पहुँचे थे। रात्रि में शीत की अधिकता एवं पवन का वेग अंग-अंग को हिलाये देता था। रात्रिभर प्रभु का खूब स्मरण होता रहा। माता कुन्ती ने भगवान श्याम सुन्दर से जो वरदान माँगा था, वही मस्तिष्क में घूमता रहा। धन्य है वह संकट जो पल-पल में प्रभु का स्मरण कराता है। जीवन में संसार की असारता का दिग्दर्शन कराता है।

तीन दिन तक अथाह वर्षा होती रही। बाहर निकलना तो पूर्णरूप से ही दुर्लभ था। उस बिना दरवाजे के हाल में ऐसा प्रतीत होता था मानो पवन का वेग हम लोगों को उड़ा देगा। शीत की अधिकता से समस्त शरीर बर्फ जैसा प्रतीत होता था, लेकिन मेरे भगवान गुरुदेव की अनन्य कृपा एवं वरद हस्त सदा साथ देता है। हम लोग सब आनन्द से उनके नाम का जप करते रहे, न सुख ही था, न दुख ही था, प्रभु की लीला का अनुभव हो रहा था। मन में दृढ़ विश्वास था कि प्रभु अवश्य ही अपने कार्य को पूर्ण करवायेंगे।

तीन दिन पश्चात वर्षा बन्द हो गई। बादल खुल गये। सरला जी को पता लगा कि हम लोग देहली में श्री गुरुदेव के प्रबन्ध के लिये आये हुये हैं। वह अपनी मोटर लेकर सेवा पूछने के लिये आईं। हम लोग श्री गुरुदेव के निवास के लिये दिन भर स्थान ढूँढ़ते रहे, लेकिन कोई भी स्थान नहीं मिला।

पाँच दिन तक प्रातःकाल दस वजे से सायंकाल चार वजे तक दिल्ली की सड़कों को छानते रहे। जहाँ पर जो जिस स्थान को वतला देता था उसी स्थान पर तत्काल देखने के लिये जाते, लेकिन कुछ भी न हो सका। सात दिन व्यतीत हो गये, मन में गुरु के चरणों पर अटल विश्वास होते हुये भी मन में वड़ी ही चिन्ता और ग्लानि हुई कि क्या करें कहाँ जायें? निवास-स्थान का प्रवन्ध होने के पश्चात ही गौ की व्यवस्था की जाय। यहाँ की पूर्ण व्यवस्था हो जाने पर ही वृन्दावन की व्यवस्था मिलाई जाय। रात्रि आठ वज रहे थे, मन खिन्न एवं चिन्तित था कि किस प्रकार से गुरु की सेवा पूर्ण की जाय। इतने में अचानक श्यामलाल पिता जी (झूँसी के) आ पहुँचे। उनको देख कर वड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वह झूँसी से यहाँ पर कैसे आ पहुँचे?

उन्होंने देखते ही कहा—"आप लोगों को तो वहुत ठंढ लगती होगी? विल्कुल खुला हुआ स्थान है।" हम लोगों ने कहा—"प्रभु के सेवकों को सेवा दिखाई पड़ती है, उनको सर्दी गर्मी से क्या मतलव?" तत्काल उन्होंने चारों ओर दरवाजों एवं खिड़कियों में पर्दे लगवाये। सर्वप्रथम हवा रुकने की पूर्ण व्यवस्था की, तत्पश्चात स्थान के विषय में वार्तालाप होते हुये वतलाया कि ग्रेटर कैलाश में पर्वत के ऊपर एक सुन्दर मंदिर वना हुआ है, उसको आप लोग देखिये, क्योंकि मेरे विचार से वह गुरुदेव जी के लिये अनुकूल पड़ेगा। हम लोग उसी समय सरला जी को लेकर उस मंदिर को देखने के लिये गये। वहुत सुन्दर एवं नवनिर्मित मंदिर था। मंदिर के मुख्य ट्रस्टी मलिक जी थे, उनसे वातचीत करके श्री गुरुदेव जी के निवास के लिये पूर्ण व्यवस्था हो गई। प्रभु की कृपा अलौकिक एवं अनन्त है। चतुर्मुख व्रह्मा आदि समस्त देवताओं का भी कार्य विना नारायण की कृपा से नहीं चल सकता। भगवान की दैवी वैष्णवी माया अत्यन्त दुरत्यय है। अतः जो विवेकी भक्त उनके शरणागत होकर उनकी आराधना करता है वह सव प्रकार के कष्टों से पार हो जाता है।

"एहां महामायां तरन्त्येव ये विष्णुमेव भजन्ति वान्येव तरन्ति कदाचन"

भगवान गुरुदेव की ही परम कृपा से वृन्दावन में निवास करने का प्रवन्ध भी सुलभता से हो गया।

वृन्दावन में दो सप्ताह निवास करने के पश्चात दिल्ली पधारे। भक्तों के आग्रह करने पर एकमास तक वहाँ सत्संग चला। तत्पश्चात हरिद्वार पधारे। पन्द्रह दिन हरिद्वार में माँ भागीरथी के तट पर निवास किया।

भगवान गुरुदेव की असीम कृपा— श्री वदरी नारायण धाम में पहुँचने के लिये मार्ग में रुद्रप्रयाग एवं जोशीमठ में एक-एक दिन ठहरने का कार्य-क्रम वना। प्रभु के आदेशानुसार इस सेवक को प्रवन्ध हेतु पहले से जाना पड़ा। प्रभु का अवलम्बन लेकर यह चरणानुरागी सेवक गौरी जी तथा श्री वहन को साथ में लेकर चल दिये। वस रुद्र प्रयाग में रुकी, हम लोग उतर गये। लेकिन अनभिज्ञ स्थान में कहाँ रुका जाय एवं गुरुदेव की कैसे व्यवस्था की जाय? यह समस्या जटिल थी। थोड़ी देर विचार करते रहे। हरिद्वार से श्री गुरुदेव ने एक भाई को साथ में कर दिया था कि कहीं पहाड़ी पर इधर-उधर भेजना पड़ा तो सुविधा रहेगी, लेकिन वह भी उस इलाके के लिये नये थे।

जहाँ पर वस स्टैन्ड था वहीं पर एक व्यक्ति बैठा हुआ मोती की माला बेच रहा था। हमने आगे वढ़ कर उससे पूछा—"भय्या! क्या तुम यहाँ का कोई ऐसा स्थान बतला सकते हो, जहाँ घनी बस्ती भी न हो, मंदिर भी हो, खुला स्थान भी हो, कुछ फूल पत्ती भी हो!" उस बेचने वाले ने कहा, "इस पार तो कोई ऐसा स्थान नहीं है। आप थोड़ा आगे वढ़कर पुल के उस पार जाइये, पुल पार कर लेने के पश्चात चार फर्लांग चलने पर एक पहाड़ी है, उस पहाड़ी पर शंकर जी का प्राचीन मंदिर है जिसको रुद्र भगवान का मंदिर कहा जाता है। पहाड़ी के नीचे मंदाकिनी नदी अपनी तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है। वह स्थान आपके अनुकूल पड़ेगा। वहाँ पर एक महात्मा जी और कुछ संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थी रहते हैं। वह स्थान गुप्त है, वहाँ तक लोग पहुँच नहीं पाते।"

वहाँ पर सवारी का कोई साधन नहीं था। हम लोगों के कहने सुनने से एक पहाड़ी व्यक्ति ने बिस्तर और बक्स को अपने ऊपर लाद लिया, बाकी सामान हम लोगों ने स्वयं ही दोनों हाथों में लेकर किसी प्रकार पहाड़ी तक पहुँचे। लगभग सौ सीढ़ी चढ़ने के पश्चात वह मंदिर था। ऊपर पहुँच कर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। संतजी से वार्तालाप हुआ। पहले तो वह कुछ देर तक मौन धारण करे रहे, शायद उनका यह मतलब था कि इस प्रकार से नवीन आगन्तुकों को किस प्रकार से एकान्तिक स्थान में अपने यहाँ ठहराया जाय। इस भाव को समझ जाने के पश्चात उनको अनेक प्रकार से आश्वासन दिला कर उस स्थान में ठहरा गया। स्थान की समस्या तो हल हो गई। अब गौ को पहाड़ पर नित्य लाकर दूध दुहने की समस्या शेष रह गई। कौन गौ वाला अपनी गौ देता, जो नित्य पर्वत पर चढ़कर दूध देती। लेकिन प्रभु को जब अपनी दी हुई सेवा स्वयं पूर्ण करानी होती है तब वैसा भक्त का मन अपने में तन्मय करा लेते हैं। चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है। मन चारों ओर से शून्य होकर सेवा पूर्ण करने में उत्कंटित रहता है। इसीलिये कहा है। प्रेम भक्ति के सदृश इस भूमंडल में कोई भी सुगम पवित्र एवं श्रेष्ठ साधन नहीं है जो ईश्वर तक पहुँचा सके एवं असम्भव से असम्भव कार्य पूर्ण कर सके। सच में यह सत्य सत्य अनुभव होता है कि प्रेम लक्षणा पराभक्ति सर्वदुहा महा कामधेनु है। इसी से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि होती है। भगवान गुरु परमेश्वर हैं, सच्चिदानन्द विग्रह हैं, अनादि हैं, जिससे जो कार्य चाहते हैं वह स्वयं दूसरा स्वरूप धारण करके कार्य को पूर्ण करा लेते हैं।

हम लोगों ने अनेकों पहाड़ियों पर गौ ढूँढ़ने का प्रयास किया और कराया, लेकिन मंदिर के नीचे ही गुरुदेव स्वयं गौ का रूप धारण करके खड़े हो गये। हम लोग सायंकाल ६ बजे गोधूलि की बेला में निराश होकर लौट रहे थे. मंदिर की सीढ़ी चढ़ने के पूर्व ही एक कच्चे मकान में एक विलायती गौ बंधी हुई थी। माँ और बेटी का झगड़ा हो रहा था। माँ कहती थी, हमारी गौ पहाड़ी के ऊपर जाने से बिगड़ जायेगी। बेटी कहती थी, इतने बड़े महात्मा

आने वाले हैं, वह केवल गौ का दूध एवं मट्ठा लेकर प्राण-रक्षा करते हैं। यदि तुम महात्मा जी के लिये गौ नहीं दोगी तो हम भोजन नहीं करेंगे, और गौ का दुहा हुआ दूध भी मंदाकिनी में डाल देंगे। जो भाई साथ में आये थे, इस झगड़े को सुनकर उस कच्चे मकान में घुस गये और गौ को देने के लिये कहा। घर की मालकिन ने बिगड़ कर कहा, तुम यहाँ से चले जाओ। हम गाय नहीं देंगे। वह बिचारे वापिस चले आये। थोड़ी देर में हम लोगों ने देखा, एक गाय अपने आप ऊपर आकर मंदिर के प्रांगण में खड़ी हुई है। थोड़ी देर पश्चात एक लड़की आई और बोली—साधु बाबा, आपको जितना दूध चाहिये आप दुहा लीजिये। मेरी गाय बहुत सीधी है, बिल्कुल लक्ष्मी है। हम लोगों को मन में बड़ी हंसी आई कि नारायण के लिये लक्ष्मी दौड़ कर नहीं आयेगी तो कौन आयेगी। दूध दुहा कर वह गाय स्वयं नीचे उतर कर चली गई। सब को बड़ा ही आश्चर्य होता था कि वह किस प्रकार से समय पर स्वयं सीढ़ी से चढ़कर ऊपर मंदिर के प्रांगण में आकर खड़ी हो जाती है और दूध दुह लेने के पश्चात चली जाती है।

इसी प्रकार से प्रभु ने जोशी मठ में प्रबन्ध करने के लिये अपने प्रस्थान करने के पूर्व ही भेज दिया था। वहाँ पर भी इसी प्रकार की अद्भुत घटना घटी। निवास का प्रबन्ध भगवान गुरुदेव की परम कृपा से सुलभता से हो गया, लेकिन गौ का मिलना यहाँ भी दुर्लभ ही था। प्रभु के साथ बद्री नारायण की यात्रा के लिये लगभग डेढ़ सौ भक्त आये हुये थे। प्रभु के अनन्य उपासक भक्तगण स्थान-स्थान पर गौ ढूँढ़ने के लिये निकल पड़े। सायंकाल तक एक गाय क्या सात गाय मंदिर के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। कोई गाय एक पाव दूध देने वाली थी कोई आधा पाव कोई एक छटाँक। पर्वतीय प्रान्तों में गौएं स्वतंत्रता से चरती रहती हैं, उनको दाना और भूसा भी भोजन के लिये नहीं दिया जाता, केवल चरती रहती हैं। दुहने के समय स्वतः मालिक के यहाँ जाकर खड़ी हो जाती हैं। दुहा लेने के पश्चात पुनः जंगल में चली जाती हैं।

जोशीमठ से बद्री नारायण का मार्ग केवल तीन या चार घंटे का है। हम लोग वहाँ पर सब एक साथ ही गये थे। पहले से कोई भी प्रबन्धक नहीं

पहुँचा था, अतः वदरी नारायण जी पहुँच जाने पर श्री गुरुदेव जी के निवास के योग्य कोई भी स्थान नहीं प्राप्त हो सका। अन्य साथ में गये हुये गृहस्थ भक्त अतिथि भवन में एवं आश्रमवासी साधकों ने सत्संग भवन में निवास किया। श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के मन्दिर के समक्ष एक खुली पहाड़ी पर जाकर आसीन हो गये, साथ में हम लोग तीन-चार भक्तजन साथ में थे। ठंडी हवा बह रही थी, ऊपर से नन्हे-नन्हे ओस-कण फुहारें दे रहे थे। पहाड़ी के नीचे अलकनन्दा अपनी तीव्रतम गति से कल-कल नाद करती हुई प्रवाहित हो रही थी। दर्शनार्थी तीव्र वायु एवं वर्फीली ठंडक से कांपे जा रहे थे, लेकिन गुरुदेव की परम कृपा से हम लोगों को बिल्कुल भी ठंडक नहीं प्रतीत हो रही थी। यद्यपि कि गाय की व्यवस्था न होने के कारण दिन भर न गुरुदेव जी ने ही मुँह में जल डाला न हम लोगों ने ही।

भगवान वद्रीनाथ के पुजारी जी ने कहा—"आप मन्दिर के बरामदे में निवास करिये, हम वरामदा खाली करवा देते हैं। परन्तु भीड़-भाड़ में श्री प्रभु को वहाँ रहना कुछ पसन्द नहीं आया, अतः एक पर्वत-खंड को ही अपना आश्रय स्थान वनाया था। मध्यान्ह में एक वजे श्री वल्लभाचार्य जी के पुजारी दौड़ते हुये आये और महाप्रभु की ओर देखते हुये बोले—"आप ही प्रयागराज से पधारे हुये दिव्य पुरुष हैं?" श्री गुरुदेव जी शांत मुद्रा में ज्यों के त्यों विराजे रहे, हमने कहा—"हाँ! कहिये क्या बात है?" पुजारी जी ने कहा—"मुझसे बड़ी भारी भूल हो गई, मैं आपको नहीं पहिचानता था। श्री वल्लभाचार्य जी महाराज की गद्दी खोल देता हूँ, उसमें आप विराजिये। मैं घोर निद्रा में सो रहा था। एक साँवले रंग का अवधूत मेरे शयन घर में पहुँच कर मुझको जोर-जोर से हिलाते हुये बोला—"मूर्ख! तुम सो रहे हो, तुम्हारे मन्दिर के सामने एक पर्वत-खंड की शिला पर एक दिव्य पुरुष विराजे हुये हैं। उनके लिये तत्काल मन्दिर खोल दो, उनको ठंड लग जायेगी।" अब वह अवधूत न जाने कहाँ चला गया, मैंने उसको बहुत खोजा लेकिन उसका कुछ पता नहीं चला।

प्रभु श्री गुरुदेव जी ने हँसते हुये कहा—"नहीं-नहीं, आपको कष्ट होता हो तो रहने दीजिये, रात्रि काटनी है, काट लेंगे।" पंडित जी ने कहा—"नहीं-नहीं,

ऐसा नहीं हो सकता।" आप मेरे मन्दिर में विराज कर मुझको कृतार्थ करिये। लोगों ने कहा कि बद्रीनारायण में गाय की व्यवस्था नहीं हो सकती, लेकिन प्रभु की ऐसी कृपा कि एक छोड़ दो-दो गाय का प्रबन्ध हो गया। हम लोगों के लिये कच्चे दूध का भी प्रबन्ध हो गया। किसी बात का कष्ट नहीं हुआ। भगवान गुरुदेव ने खूब धूम-धाम से विधिवत श्री बद्रीनाथ भगवान की अर्चा करी। उस समय गोबिला साहब वहाँ को कमेटी के प्रधान सरकारी अफसर थे। उन्होंने प्रभु को ऊँचे मंच पर आसीन करवा कर विधिवत पूजन करने की व्यवस्था कर दी थी। बड़ा ही आनन्द रहा।

गुरुदेव जी से सब भक्तों ने कहा, आप मट्ठा पीकर रहते हैं, शरीर कमजोर है, अलकनन्दा का जल बहुत ही शीतल होता है, आप स्नान मत करिये, शरीर रह जायेगा। लेकिन भगवान गुरुदेव परम साहसी, कर्मठशील तथा तत्वज्ञ हैं। उन्होंने कहा—"अलकनन्दा मय्या क्या हमसे भिन्न हैं? हमारा शरीर वह क्यों शिथिल कर देंगी।" प्रातःकाल साढ़े तीन बजे आप उठ कर अलकनन्दा जी में स्नान करके पधार गये, किसी को पता भी नहीं चल पाया।

श्री बद्रीनाथ भगवान के दर्शन करके लौटने के पश्चात जोशीमठ में एक नवीन घटना घटी। श्री बद्रीनाथ जी तक पहुँचने तथा वहाँ से लौटने के लिये सवारियों का समय निर्धारित रहता है। एक ही समय पर फाटक खुल जाता है और सब खड़ी हुई सवारियाँ निकाल दी जाती हैं। भक्तों का बस छूट नहीं पायी, श्री गुरुदेव जी की मोटर आगे निकल गई। जब कुछ दूर हम लोग पहुँच गये, तब ज्ञात हुआ कि भक्तों की बस समय से निकल नहीं पाई थी, अतः वह पीछे रुक गई। गुरुदेव जी बार-बार बस वालों का स्मरण करते रहे। हम लोगों के जोशीमठ पहुँचने के दो घंटे पश्चात भक्तों की दोनों बसें और सवाइका जी की मोटर पहुँची। विलम्ब में पहुँचने का कारण पूछने पर ज्ञात हुआ कि भक्तों की एक बस सबसे आगे थी, एक सबसे पीछे। ज्योंही पहली बस आगे बढ़ी त्योंही एक बड़ा पहाड़ आकर गिर पड़ा। सब भक्त-

गण जोर-जोर से कीर्तन करते जा रहे थे एवं भगवान का जयकारा बुलवा रहे थे। समस्या यह थी कि मार्ग से पहाड़ कैसे हटे और अन्य पीछे की सवारियां कैसे उस पर्वतीय मार्ग को पार करें ? हम लोगों की बस के भक्तों ने उतर कर जोर-जोर से सबसे कीर्तन करवाना शुरू कर दिया। दस मिनट भी भगवान का नाम जपते नहीं हुआ होगा कि एक मिलिटरी की जीप आ गई। उन लोगों ने पहाड़ों को औजारों से काट गिराया और इन लोगों को मार्ग पार करवाया। ज्योंही सब सवारियाँ पार हुईं कि कई पहाड़ टूट-टूट कर गिरे एवं अत्यधिक वर्षा होने से अचानक अलकनन्दा में बाढ़ आ गई। आज प्रभु का नाम न जपा जाता तो कहाँ से मिलिटरी जीप आती और कैसे उनकी रक्षा होती। जोशीमठ में पहुँच कर भी गुरुदेव भगवान उन्हीं के योगक्षेम की चिन्ता करते रहे। यदि वह गुरु की शरण में न होते तो कौन उनकी रक्षा करता। उनके साथ-साथ अनेकों की प्राण-रक्षा हो गई। सबसे प्रथम उन्हीं की बस थी, अंत में उन्हीं भक्तों की बस। इसीलिये प्रभु को एक साथ अनेकों का दुःख हरण करना पड़ा।

भगवान का अद्भुत शक्ति की एक घटना और घटी—

श्री बद्रीनाथ जी की यात्रा में जाते समय जोशीमठ में हम लोग नवनिर्मित गुरुद्वारे में एक रात्रि के लिये बसेरा लिया था। गुरुद्वारे के पुजारी ने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ गुरुदेव भगवान का सत्कार किया था। यात्रा से लौटते समय भी हम लोगों ने सोचा कि एक रात्रि की बात है, यहीं पर बसेरा ले लेंगे, क्योंकि यह परिचित स्थान था, परन्तु ज्योंही हम लोग मोटर से उतरे और गुरुद्वारे के बरामदे में प्रवेश किया, पुजारी खड़ा हुआ मिल गया। बड़ी ही बेरुखी से नमस्कार भी न करके बोला—"आप लोग सनातनधर्मी संत हैं, यह नानक साहब का गुरुपंथी गुरुद्वारा है, यहाँ आप लोगों के ठहरने के लिये स्थान नहीं है, आप अपनी दूसरी व्यवस्था कर लीजिये।" महाप्रभु तो महाप्रभु ही हैं, भगवान सीधे भी हैं और बड़े टेढ़े भी। आप जोरों से बोले—"यह स्थान तो हमारा है, हम क्यों दूसरे स्थान की व्यवस्था करें ? गुरु नानक हमारे हैं, हमसे

अलग वह कहाँ हैं ? जाओ तुमको जो कुछ करना हों करो। पुजारी बने हो और तुम्हें धर्म की असलियत का ज्ञान भी नहीं है। बतलाओ नानक गुरु ने कहाँ द्वैत धर्म को बतलाया है।" श्री गुरुदेव महाप्रभु के गूढ़ वचनों को सुनकर वह चुपचाप गुरुद्वारे के बाहर चला गया। थोड़ी देर पश्चात् गुरुद्वारे के प्रधान को लेकर आया। श्री गुरुदेव जी स्नान करके पूजा में विराज चुके थे। प्रधान हमसे वार्तालाप करने लगा। उससे गुरुदेव भगवान के विषय में अनेक बातें हुईं। वार्तालाप करने के पश्चात वह बहुत ही प्रभावित हुआ एवं बाद में श्री गुरुदेव जी को दंडवत किया और कहने लगा, हम लोग तो अज्ञानी जीव हैं, संसार की माया में पड़े रहते हैं। महापुरुषों को समझ नहीं पाते, इसी कारण त्रुटियाँ हो जाती हैं। एक ही तोल में सभी को तोलते हैं।

इसके पश्चात रात्रि को उसने अपने परिचय के बहुत से लोगों को श्री प्रभु के दर्शनों के लिये बुलाया तथा ग्रंथ साहब के उढ़ाये गये दुपट्टे को प्रभु को उढ़ाया और पुनः आने के लिये निमंत्रित किया। पुजारी ने भी दंडवत किया और अपने वचनों पर लज्जित हुआ।

मेरठ में हँसाना :—इसके पश्चात् श्री गुरुदेव जी हरिद्वार होते हुये मेरठ पधारे थे। मेरठ में भक्तों ने गुरुदेव जी के निवास के लिये श्री कृष्ण-बोध आश्रम के बगीचे में प्रबन्ध किया था। मेरठ पधारने के पूर्व भक्तों ने प्रभु से कहा—"वहाँ पधार कर क्या करेंगे। वह तो रावण की ससुराल है।" प्रभु ने कहा—"रावण की ससुराल है तो क्या, मंदोदरी का नैहर भी तो है। मंदोदरी तो ज्ञानी, विवेकी एवं रामभक्त थी।" जब प्रभु वहाँ पधारे, प्रथम दिन के सत्संग में ही भीड़ तो बहुत थी लेकिन सबके मुख उदास थे, कोई हँसता ही नहीं था। गुरुदेव भगवान ने उन लोगों से कहा, भाई देखो, हमको तो हँसना अच्छा लगता है। आप लोगों को बिना हँसने वाला देखकर हमको डर लगता है। पहला सत्संग यही है कि आप लोग सब मिलकर खूब हंसो। पाँच मिनट तक सबको हंसाते रहे। इस प्रकार से सत्संग का नियम ही बन

गया था। पहले लोग आकर हंसते थे तब प्रवचन प्रारम्भ होता था। प्रभु का नवीन-नवीन कौतुक रहता है। आपकी लीला, ज्ञान एवं महिमा सब अलौकिक रहती है।

प्रभु न्यायप्रिय हैं :—मेरठ से प्रभु वायुयान द्वारा इलाहाबाद पधारे। एक दिन एक वृद्ध पिता आये और जोर-जोर से रोने लगे। साथ-साथ कहते जाते थे, प्रभो ! मुझ बुड्ढे को उबारो, नहीं तो मैं मर जाऊंगा। उसके आर्त स्वर से गुरुदेव के नेत्र डबडबा गये एवं चुप कराते हुये पूछा कि रोने का क्या कारण है। वृद्ध ने आंसू पोंछते हुये कहा—"भगवन् ! बड़ी विपदा में फँसा हूँ। मेरे केवल एक ही पुत्र है, जो बुड्ढे की लाठी है, उसको न्यायालय से प्राण-दंड मिला है। आप अपनी कृपा-दृष्टि से उसको प्राण-दंड के अभियोग से मुक्त करा दीजिये।" प्रभु ने कहा—"प्राण-दंड किसी विशेष अभियोग के कारण मिला होगा।" वृद्ध बोला, "नहीं भगवन् ! मेरे बेटे से मेरे कुछ पट्टीदार वैमनस्य रखते थे। एक दिन सायंकाल वह खेत पर से आ रहा था, कुछ लोगों ने मिलकर उसको मारने के लिये गोली चलाई, लेकिन भगवान की इच्छा से उनकी गोली इसको नहीं लगी और इसने अपनी प्राण-रक्षा के लिये जो गोली चलाई वह उनके एक व्यक्ति के लग गई, जिसके फलस्वरूप वह संसार से विदा हो गया। लेकिन भगवान, मैं आपसे बिल्कुल सच कहता हूँ। मेरे पुत्र ने केवल प्राण-रक्षा के हेतु गोली चलाई थी।" गुरुदेव भगवान ने आशीर्वाद रूप में एक पुष्प देते हुये कहा कि हम लोग अन्याय नहीं कर सकते। यदि हम लोग असत्य और अन्याय का आचरण ग्रहण करें तो हमारी ब्रह्म शक्ति अपने स्थान में चली जाय और संत की मर्यादा है कि वह धर्म की रक्षा करें। यदि आपके पुत्र ने अपनी प्राण-रक्षा के लिये गोली चलाई थी तब कानून बदल कर भी बेटे को प्राण-दंड से मुक्ति मिल जायेगी, यदि शत्रुता से चलाई थी तो यह पुष्प कुछ भी काम नहीं करेगा। आप एक प्रार्थना-पत्र न्यायालय में लिखकर भेजें। वृद्ध संतोष की सांस भरता हुआ चला गया। दूसरे दिन हंसता हुआ आया और जयकारा लगाता हुआ कहने लगा—भगवान ! मैं आपके ऋण से

कभी भी उऋण नहीं हो सकता। आपने मेरी लज्जा रख दी। बूढ़े के जीवन की लाठी को बचा दिया। धन्य हो नाथ धन्य हो। जैसा सुना था वैसा ही आपकी शक्ति को देखा। श्री गुरुदेव जी ने कहा—"पिता जी, हमारा न कोई शत्रु है न मित्र। हम लोग एक का पक्ष और दूसरे का विपक्ष नहीं करते। जो बात सत्य और न्याय के पलड़े में ठीक वैठती है उसी को करते हैं।"

गुरुदेव की दयालुता अपार है :—एक दिन ज्योंही गंगा स्नान करके पधारे, एक अधेड़ नारी मंदिर के द्वार पर आकर जोर-जोर से हुंकार मार कर रोने लगी। उसकी करुण रोने की आवाज सुनकर प्रभु द्वार पर पधार गये। प्रभु को देखते ही वह त्वमेव माता कहकर और जोर-जोर से चिल्लाने लगी। हम लोगों ने उससे पूछा कि क्या बात है? सबेरे-सबेरे तुम आकर क्यों रो रही हो? वह बोली—"हे नाथ! मैं आपकी शरण में आई हूँ। पति ने मुझे घर से निकाल दिया। अब मैं कहाँ जाऊँ? मुझे एक लोटा, एक धोती और दस रुपया मिल जाय तो मैं अयोध्या जी चली जाऊँ। वहीं पर अपनी जिन्दगी विताऊँगी।" प्रभु ने दिलवा दिया। थोड़े दिन पश्चात् एक दिन वह स्त्री मंदिर में दिखाई पड़ी। हमने कहा, आप तो अयोध्या जी गई थीं? वह स्त्री हंसती हुई चली गई। एक बार आश्विन मास में प्रभु ने गंगा जी के वीच में रहने का नियम लिया था। सायंकाल टी० वी० के पन्द्रह बीस मरीज नित्य दर्शन के हेतु आते थे। उनको देखकर प्रभु को बड़ी ही दया आती थी। इतना अनमोल मानव जीवन व्यर्थ में ही नष्ट हो रहा है। इन विचारों ने न लौकिक ही सुख भोगा और न पारलौकिक ही। एक दिन गुरुदेव ने उन लोगों से पूछा—"आप लोगों को क्या आशीर्वाद दें?" उन लोगों ने कहा—"भगवन! इस रोग से मुक्त होने का आशीर्वाद दीजिये। हम लोग हास्पिटल के कारागार से ऊब गये हैं। रोग से जब तक मुक्त नहीं होंगे तब तक वहाँ से मुक्ति नहीं मिल सकती।" प्रभु नित्य दयार्द्र होकर उन लोगों को तुलसी तथा फल का प्रसाद देते थे। वह लोग प्रसाद तथा आशीर्वाद के फल

से एक मास के अन्दर ही पूर्ण निरोगी और स्वस्थ हो गये। और लोगों को तो पता नहीं कहाँ चले गये, लेकिन एक भक्त जिसका नाम मिश्रा है, जवलपुर में रहते हैं, इस कृपा को कभी नहीं भूलते।

परोपकार के लिये प्रभु अपना कुछ भी विचार नहीं करते। दूसरे को दुःख नहीं होना चाहिये, ऐसी धारणा रहती है। नेपाल की एक भक्ता की कन्या को अचानक मस्तिष्क की बीमारी हो गई। वह बेचारी बहुत परेशान हुई, गुरुदेव भगवान को पत्र लिखा। अन्त में कुछ उपचार न लगने पर आश्रम में आई। गुरुदेव ने पूर्ण आश्वासन दिया कि वह ठीक हो जायेगी, आप न घबड़ाइये। कन्या को आश्रम में बुलाया, माता-पिता ने लखनऊ में लड़की को दिखलाया। डाक्टर ने कहा, कन्या की मानसिक शक्ति वड़ी तीव्र है, यह ठीक नहीं हो सकती। परन्तु गुरुदेव भगवान पूर्ण आश्वासन देते रहे, तुलसी पत्र, आशीर्वाद भेजते रहे, कन्या को सीताराम की पुस्तक जपने को दिया। मस्तिष्क रोग में जिधर वृत्ति चली जाती है, उधर की ही धुन लग जाती है। वह बालिका हर समय सीताराम का जप करती रहती थी। पन्द्रह दिन में पूर्ण रूप से पूर्ववत्त स्वस्थ हो गई। डाक्टरों को वड़ा ही आश्चर्य लगा कि यह असम्भव घटना कैसे घट गई। कहाँ तक वर्णन किया जाय। एक क्या, अनन्त ऐसी दिव्य एवं अलौकिक लीलाओं का दिग्दर्शन होता ही रहता है।

प्रभु जो कहते हैं अवश्य ही करते हैं—प्रभु का अनुष्ठान चल रहा था। दिन भर जल भी नहीं पीते थे। दिन भर की पूजा समाप्त होने के पश्चात ही कुछ लेते थे। एक दिन पूजा करते-करते गुलाब का पुष्प चढ़ाने का संकल्प उठ गया। रात्रि नौ वज चुके थे। प्रभु ने आदेश दिया, गुलाब का पुष्प चढ़ाने के लिए लाओ। हम लोगों ने कहा, "गुलाब का फूल नहीं है, इस समय यदि कही से मँगवाने की चेष्टा की जाय तब भी नहीं मिलेगा।" गुरु के मुखारविन्द से वाणी निकल गई कि हमको गुलाब का पुष्प चढ़ाना है,

अब जहाँ से भी जैसे भी हो गुलाब का फूल मिलना ही चाहिये। स्थान-स्थान पर भक्तों को दौड़ाया कि यदि एक पुष्प एक रुपये का भी मिले तो ले आओ। ग्यारह बज गया, लेकिन फूल का पता नहीं। बारह बज जाते तो प्रभु जल भी न ले पाते। हम लोगों को बड़ी ही चिन्ता हुई। भगवान गुरुदेव आप कहीं से भी जल्दी पुष्प भेजो। इतने में देखा, इतनी रात्रि को सुरेन्द्र नारायण एडवोकेट सुन्दर बड़ी सी गुलाब की माला लिये हुये आ रहे हैं। हम सब भक्त लोग उनको मामा जी कहते थे। हम लोगों ने पूछा—"आप इतनी रात्रि को कैसे आये ?" उन्होंने कहा, चले तो आठ बजे ही थे, एक घन्टे आने के लग ही जाते हैं। पहले रिक्सा नहीं मिली। रिक्सा मिली भी तो मार्ग में पंचर हो गई, फिर हवा इतनी तेज थी कि रिक्सा आगे ही न बढ़े। हमने सोचा, श्री गुरुदेव का दर्शन नहीं होगा, मंदिर का दर्शन करके आ जायेंगे। हम लोगों ने मन ही मन भगवान को नमन किया कि आपकी कृपा न होती तो सच में भक्तों की गुजर न होती।

इसी प्रकार से एक दिन भगवान गुरु समाधि की पूजा करते-करते प्रभु के मन में आया कि आज भगवान को लीची का भोग लगायेंगे। प्रभु को यह पता रहता नहीं कि किस-किस फल की ऋतु है, जिस समय मन में जो भाव आता है करने का विचार कर लेते हैं। उन्होंने जमुना बहन जी से कहा कि आज लीची मँगाओ, श्री गुरु महाराज को भोग लगायेंगे। जमुना बहन जी ने कहा, भादों का महीना है, आजकल लीची कहाँ मिलती है ? प्रभु ने कहा, हमको तो गुरुदेव भगवान को लीची का भोग लगाना ही है। कहीं से भी मँगवाओ। अब आदमी फल के बाजार में दौड़ाया गया, वहाँ लीची नहीं मिली। किसी ने कहा, बनारस में मिलेगी, किसी ने कहा, दिल्ली में, किसी ने देहरादून में बतलाया। कहीं लीची नहीं मिली। अतः आदमी लौट आये। अंत में यह विचार हुआ शायद बम्बई में मिल जाय। एक आदमी बम्बई गया, फल के बाजार में एक गुच्छा एक ही दुकान में मिला। मानो भगवान ने एक गुच्छे को गढ़ कर रख दिया था कि महाप्रभु का संकल्प पूर्ण हो।

श्री गुरुदेव जी का स्वाभाविक गुण है कि जो कह दें या मन में किसी बात का विचार आ जाय, वह अवश्य ही करते हैं । वे सत्य संकल्प मूर्ति हैं। एक बार प्रभु की एक छोटी सी राधा कृष्ण की अष्टधातु की प्रतिमा कुछ भगवत विरोधियों ने छिपा दी। खोज करने पर उन लोगों ने कहा, हमको दो हजार रुपया दें तब हम मूर्ति देंगे। भगवान गुरुदेव अति ही सरल और मृदुल प्रकृति के हैं। उन्होंने भगवान से कहा--"लोगों में इतना अधर्म बढ़ गया कि भगवान की प्रतिमा चुराने लगे और बदले में रुपया मांगते हैं। अतः उनकी सद् बुद्धि हो।" स्वयं ने अनेक प्रकार से कष्ट उठाया एवं अनेक प्रकार से स्वयं मूर्ति लौटा देने के लिये तपस्या करी। एक बार तेरह दिन तक केवल जल पीकर रहे। परन्तु रुपया देकर मूर्ति वापिस नहीं करवाई।

गीता में भगवान ने कहा है :—

"धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे"

गुरुदेव के चरित्र से यह सत्य सिद्ध होता है। धर्म की रक्षा के हेतु प्राणों की बाजी लगाने में भी कमी नहीं रखते। परम उदार मूर्ति हैं। एक बार नित्य मजदूरी में काम करने वाली लड़कियों से प्रभु ने पूछा, हम बाहर जा रहे हैं। तुम्हारे लिये क्या ला दें। लड़कियों ने कहा, महात्मा से हम क्या बतलायें कि क्या ला दें। प्रभु ने कहा, "भक्तों से कह देंगे। वह तुम्हारे लोगों के लिये चूड़ियाँ और रिबन ला देंगे।" वह लड़कियाँ बोलीं, चूड़ी रिबन नहीं चाहिये, हमको बल्कि पुरानी धोतियाँ दिलवा दीजिये। प्रभु ने जमुना बहन जी से कहा, यह भी तो मेरी आत्मा हैं, इनका खुशी होना गुरु महाराज के खुशी होने के बराबर है। वहां पर एक मुख्य भक्त भी थी। उन्होंने कहा, यह लड़कियाँ दो रुपये रोज पर थोड़े दिन से काम करने लगी हैं और समय से आती हैं व समय पर चली जाती हैं। यह हमेशा काम करने वाली नहीं हैं। गुरुदेव बोले, इससे क्या? उनकी आत्मा

धोती माँग रही है, यह कहते हुये जमुना बहन जी को आदेश दिया कि इनको घोतियाँ मँगा कर दो।

एक दिन प्रभु एक शिष्या को लेकर त्रिवेणी स्नान करने गये थे। सायं-काल का समय था। वह नाव पर बैठ कर संध्या कर रहे थे। ध्यान करते-करते उनके नेत्र खुल गये। उन्होंने देखा, कोई व्यक्ति जल में डुबकियाँ लगा रहा है, उनकी समझ में आ गया कि यह तो कोई डूवा हुआ व्यक्ति है। अपनी नाव का मल्लाह नौका बाँध कर कहीं दूसरी नाव पर चला गया था। प्रभु ने एक व्यक्ति की प्राण-रक्षा करना ही मुख्य धर्म समझ कर मौन में ही ध्यान छोड़कर दूसरे नौके वाले को दौड़ा कर उस व्यक्ति को निकलवाया। अधेड़ उमर का डूवा हुआ व्यक्ति शीत से अकड़ गया था। चारों ओर से पुआल जला कर उस व्यक्ति को गरम करके अपने शरीर की परवाह न करके अपनी चादर उसको ओढ़ा दिया। जब उसको चेतना आ गई तब अपने शिविर में पधारे।

शिवकोटी में आश्रम के समीप वहुत सी ग्रामीण जनता रहती है। उन्हीं लोगों के लिये प्रभु ने धर्मार्थ चिकित्सालय खोला है। जिस प्रकार से भी हो, सार्वजनिक कल्याण का साधन होना चाहिये, यही आपका ध्येय रहता है।

दिल्ली में विष्णु महायज्ञ :—दिल्ली के भक्तों की प्रार्थना से १९७४ मार्च में प्रभु ने एक विशाल यज्ञ किया, जिसमें काशी के इक्कीस वेदज्ञ विद्वान थे, जिन्होंने पूर्ण वैदिक रीति से श्री विष्णु महायज्ञ का सम्पादन किया। यह यज्ञ महावीर मंदिर ग्रेटर कैलाश नई दिल्ली में हुआ। अनेक आर्य समाजी यज्ञ का दर्शन करने के लिये आये और यज्ञ मंडप के विधि विधान की सराहना करते हुये कहने लगे, "इस प्रकार से नियम तथा मर्यादा से किया हुआ यज्ञ का हम लोगों ने दर्शन नहीं किया था।" यहाँ से सहारनपुर होते हुये प्रभु हरिद्वार पधारे।

हरिद्वार का कुम्भ :— हरिद्वार में प्रभु कनखल के बगीचे में ठहरे थे। मुजफ्फरनगर के सेठ का बगीचा था। उनकी ओर से सब प्रबन्ध था। निवास-स्थान के सामने बड़ी नहर अनुपम शोभा से प्रवाहित हो रही थी। अति रमणीक समस्त भौतिक प्रपंचों से रहित वह स्थान था। श्री गुरुदेव भगवान को वह स्थान अति ही पसंद था, लेकिन भक्तों के आग्रह से संतों के मध्य पन्तद्वीप में प्रवचन शिविर लगाया था, जो कनखल से लगभग दस मील पड़ता था। प्रातःकाल गंगा स्नान करने हरि की पैड़ी जाते थे, सायंकाल प्रवचन करने पन्त द्वीप जाते थे। दिन में कई बार स्नान करने के कारण प्रभु को ठंड लग गई। १०४ डिग्री तक बुखार हो जाता था, लेकिन वह अपने नियम में अटल रहे। प्रभु परिश्रम से कभी पीछे नहीं हटते थे। अथक परिश्रम करना आपका स्वाभाविक गुण है। बाइस अप्रैल का अंतिम जलूस गुरुदेव जी की ओर से निकला था, जिसमें लगभग दो हजार व्यक्ति थे। चार घोड़ा, चार हाथी, एक रथ, दो बैंड, चार मोटर और दो सौ झंडे थे। अंत में साधु भंडारा था। हरिद्वार के कुम्भ के पश्चात् नेपाल पधारे।

नेपाल में गुरुदेव एवं रुद्र महायज्ञ :— नेपाल में भव्य स्वागत हुआ। स्वागत के हेतु हवाई अड्डे पर काफी संख्या में भीड़ इकट्ठी थी। सेठ, साहूकार, मिनिस्टर, पाइलेट, कर्नल, सभी के परिवार के लोगों ने हार्दिक उत्साह एवं श्रद्धा दर्शाया। पुष्पों की वर्षा हुई, माला एवं गुलदस्ते का ढेर लग गया। जयजयकार के नाद से हवाई अड्डा गूंज गया। पशुपतिनाथ के मंदिर के समीप वन काली में निवास था। नेपाल में बहुत ज्यादा स्वास्थ्य गिर गया। खाँसी, जुकाम, तीन चार डिग्री बुखार पन्द्रह दिन तक बराबर रहा। प्रातःकाल २ डिग्री था, दिन में ज्यादा तेज हो जाता था। ऐसा स्वास्थ्य होते हुये भी गुरुदेव प्रातःकाल ९ से १० एवं सायंकाल ४ बजे से ६ बजे तक सदुपदेश करते थे। हम लोग उनके इस आत्मबल को देखकर अवाक्

हो जाते थे। जहाँ प्रवचन का समय होता, कितना भी तेज बुखार रहे, विस्तर से उठकर सत्संग में जाने के लिये तैयार हो जाते थे। गुरुदेव कहते थे, वेचारे भक्त जन इतनी दूर से उपदेश श्रवण करने के लिये आये हैं, इनको निराश नहीं करना चाहिये। भूतपूर्व मंत्री सूर्य बहादुर थापा चिकित्सकों को लेकर आये। सबका यही कहना था, आपका आहार बहुत ही सूक्ष्म है। मट्ठा पीते हैं, बुखार कैसे उतरेगा ? गुरुदेव भगवान कहते, "आप लोगों को हमारा पंच तत्व का शरीर अपने जैसा दिखाई पड़ा है। इसीलिये भौतिक जगत की बातें करते हैं और बतलाते हैं। गुरु शरीर नहीं है, आत्मा है। यह शरीर जगत का कल्याण करने का माध्यम है। शरीर न हो तो आप इस आत्मा का दर्शन कैसे करें। इसीलिये गुरु शरीरधारी आत्मा है। आप कहेंगे, जितने भी अन्य शरीर हैं, क्या वह आत्मा रहित हैं। इनमें गुरु नहीं है। आत्मा समस्त शरीरों का अधिष्ठाता है। आत्मा शिव है। यदि वह शरीरों में न रहे तो शरीर शव हो जाय। प्रत्येक शरीर आत्मा होते हुये भी माया रूपी परदा पड़ा रहने के कारण दुख सागर में पड़ा रहता है। जिसका वह परदा हट जाता है वह अपने स्वरूप स्थिति में स्थिर हो जाता है। वह औरों की भी अन्तरात्मा को जाग्रित करके अपने सदृश प्रकाश में ले आता है और भौतिक जगत के बन्धनों से ऊपर उठाकर परोपकार में लगा देता है।"

नेपाल में श्री गुरुदेव जी ने इकतीस वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा श्री रुद्र महायज्ञ करवाया था। आचार्य जी एवं पाँच विद्वान पंडित काशी से लाये गये थे, शेष नेपाल के ही थे। यज्ञ में भी अनेक ऐसी अद्‌भुत घटनायें घटीं जिनको देखकर भक्तों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सर्वप्रथम जब श्री प्रभु ने लोगों के समक्ष यज्ञ करने का विचार रखा, तब अधिकतर लोगों ने यही कहा कि नेपाल में यज्ञ सम्पादन करना बड़ा ही मुश्किल है। सर्वप्रथम यहाँ पर कांसा उपलब्ध नहीं है, दूसरी बात बन्दर बहुत हैं, तीसरी बात वर्षा के मौसम में पानी से किस प्रकार रक्षा की जायेगी। यू०पी० की तरह यहाँ प्रत्येक वस्तु का सरलता से मिलना दुर्लभ है। आजकल तो आसानी से लकड़ी भी

नहीं मिलती। परन्तु सत्य संकल्प श्री गुरुदेव ने कहा—"हम तो विचार कर चुके हैं अतः यज्ञ करना ही है, विघ्न बाधाओं को मेरे गुरुदेव स्वयं हटायेंगे।" भगवान गुरुदेव की ऐसी कृपा कि ३६×३६ का मंडप और पाँच कुंडों का निर्माण चार दिन के अन्दर किया गया। भक्तों के बच्चे, भक्तगण, मजदूर आदि मिलाकर ३०, ४० आदमियों ने लग कर २६ अप्रैल को यज्ञशाला को सुसज्जित करके यज्ञ के लिए तैयार कर दिया। २६ अप्रैल को देवताओं का पूजन वरण आदि हुआ। २८ अप्रैल को अरणि मंथन द्वारा अग्नि को प्रकट किया गया था। अग्नि के प्राकट्य का दर्शन करने के लिये कम से कम एक हजार जनता एकत्रित थी। वर्षा का मौसम था, नेपाल की शीत, पंडित वर्गों को भी मन में यह था कि कैसे अग्नि प्रकट होगी। श्री प्रभु की ऐसी शक्ति और कृपा हुई कि ५ मिनट भी नहीं लगे, अग्नि प्रकट हो गई। जयजयकार की घोष से आकाश गूँज उठा। सब राज्य परिवार से लेकर सर्वसाधारण लोग तक दर्शन हेतु आये थे। सब कहने लगे, धन्य हो, धन्य हो, ऐसे संतों की जयजयकार हो।

ग्यारह दिन के बीच केवल एक दिन रात्रि को थोड़ी वर्षा हुई, लेकिन यज्ञकुंड में जरा सा भी पानी नहीं आया। सब लोग यह सोच रहे थे कि वानरों से कैसे सुरक्षा की जायेगी, किन्तु श्री गुरुदेव ने एक दिन उन लोगों से कहा था कि हनुमान जी, आप लोग ग्यारह दिन तक मंडप में तथा आस-पास में मत आइयेगा। वास्तव में आश्चर्यजनक घटना घटी कि वह लोग एक दिन भी नहीं आये न कोई नुकसान पहुँचाया। यज्ञ करना जैसे ढंग से श्री गुरुदेव भगवान ने चाहा उससे बढ़कर ही श्रेष्ठ और सुन्दर हुआ। कोई ऐसा नहीं था जिसको उस यज्ञ से प्रसन्नता न हुई हो। बहुत से लोग कहते थे कि हम लोगों ने अपने जीवन में कभी यज्ञ का दर्शन नहीं किया था। आपकी परम कृपा एवं लोक कल्याणकारी भावना से इस महान दुर्लभ यज्ञ का दर्शन कर पाये। यज्ञ की समाप्ति में सार्वजनिक भंडारा हुआ, जिसमें सात हजार जनता ने भोजन किया था। सायंकाल ६ बजे के लगभग इतनी अधिक एक घंटे

तक वर्षा हुई कि मालुम पड़ता था ग्यारह दिन से रुका हुआ जल आज ही वरसेगा। उस वर्षा से चारों ओर की धुलाई और सफाई स्वतः ही हो गई। भगवान कितना दयालु है, सब प्रकार से भक्तों का योग क्षेम करता है। लोग कहते हैं कि ईश्वरीय मार्ग बड़ा ही कंटकाकीर्ण है। इसमें फिसलने का बहुत ही भय रहता है। लेकिन हमको ऐसा लगता है कि जिसको सच्चे सद्‌गुरु की प्राप्ति हो जाती है उसके लिये इससे वढ़कर सुगम कोई मार्ग नहीं है।